चिकित्सा



एलोपैथिक पशु-चिकित्सा









लेखक :

डॉ० सुरेशप्रसाद शर्मा

(इन्जेक्शन, एलापैथिक चिकित्सा, एलोपैथिक
पॉकेट गाइड, मिक्श्चर आदि
पुस्तकों के रचयिता)

प्रकाशक और प्राप्ति-स्थान :
मेडिकल पुस्तक भवन,
गोलादीनानाथ, वाराणसी ।

★

★

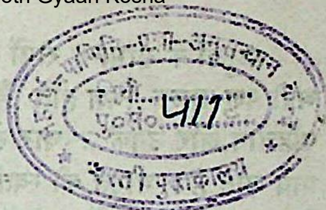
प्रथम संस्करण

★

मूल्य—२५·०० रुपये मात्र

★

मुद्रक :
बैजनाथप्रसाद
कल्पना प्रेस
रामकटोरा रोड, वाराणसी।



भूमिका

पशु-धन हमारे देश की बहुमूल्य राष्ट्रीय सम्पदा और भारतीय किसानों तथा पशुपालकों की अर्थ-व्यवस्था का मेरुदण्ड एवं उनके जीवकोपार्जन का एक प्रमुख और सशक्त साधन है। जहाँ गाय, भैंस आदि दुधारू-पशु दुग्ध-प्राप्ति के एकमात्र आधार हैं, वहीं बैल, भैंसा (डाँगर) कृषि-कार्य के आवश्यक और अनिवार्य अंग हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के किसानों के लिए गाँवों से अपने समीपस्थ कस्बे या नगर की मंडियों, बाजारों में अपनी कृषि-उपज—अनाज, तिलहन, आलू, प्याज आदि लाने के लिए बैलगाड़ी, ऊँट, घोड़े और गधे, जहाँ जैसी स्थानीय परिस्थिति और आवश्यकता है उपयुक्त साधन हैं। बकरे, सुअर और मुर्गियाँ मांसाहार के प्रमुख स्रोत हैं। अतः पशु-पालकों के लिए अपने पशुओं के पालन-पोषण, उनके रख-रखाव, सुरक्षा और उनके रोगाक्रान्त हो जाने पर उनके उपचार का ज्ञान परमावश्यक है।

पशुओं के रुग्ण हो जाने पर उनकी चिकित्सा तथा पशुओं में कोई संक्रामक-स्पर्शात्मक रोग फैलने या प्रसार होने की आशंका होने पर उस रोग के प्रतिरोध के लिए टीका-वैक्सीन लगाने के लिए सरकार की ओर से प्रत्येक नगर और ग्रामीण क्षेत्रों में, प्रत्येक विकास-खण्ड के केन्द्र में एक-एक पशु-चिकित्सालय है, जिसमें प्रशिक्षित पशु-चिकित्सक नियुक्त हैं तथापि पशु-चिकित्सालय से सुदूरवर्ती गाँवों के लोगों के उनके किसी पशु के किसी सांघातिक रोग में आक्रान्त हो जाने या किसी दुर्घटना में पशु के आहत होकर चलने-फिरने में असमर्थ हो जाने पर उन्हें पशु-चिकित्सक की सेवा-सहायता से वंचित रह जाने पर प्रायः बहुत क्षति उठानी पड़ती है।

पशुओं के सामान्य रोगों और उनकी घरेलू चिकित्सा से कुछ अनुभवी पशु-पालक भिज्ञ होते हैं, किन्तु कठिन और सांघातिक रोगों की पहिचान और उनके उपचार से प्रायः अधिकांश पशु-पालक अनभिज्ञ ही पाये जाते हैं। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् अपनी राष्ट्रीय सरकार के सद्प्रयासों से ग्रामीण क्षेत्रों में भी शिक्षा का समुचित विकास और प्रसार हुआ है और अब अधिकांश किसान और उनके पुत्र शिक्षित हैं। अतः अपने पशुओं की सुरक्षा और चिकित्सा का ज्ञान रखना प्रत्येक पशु-पालक के लिए परमावश्यक है।

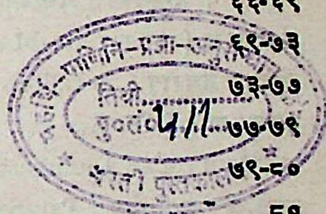
अनेक प्रयोगों, परीक्षणों और अनुभवों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि पशुओं के सामान्य और संक्रामक रोगों में जितनी सद्यः लाभकारी और प्रभावशाली एलोपैथिक औषधियाँ होती हैं, वैसी देशी औषधियाँ नहीं होतीं।

प्रस्तुत पुस्तक गाय, भैंस, बकरी आदि दुधारू पशुओं की अनेक जातियों तथा बैलों, घोड़ों, ऊँटों, गधों, सुअरों तथा मुर्गियों की सामान्य तथा उन्नत जातियों का परिचय देते हुए उनके रख-रखाव, पौष्टिक आहार, रोगों से बचाव के उपाय तथा उनके रोगाक्रान्त होने पर उनके रोगों के लक्षणों का उल्लेख करते हुए उस रोग की पेटेण्ट एलोपैथिक औषधियों और इंजेक्शनों का परिचय-विवरण, उसकी प्रयोग-विधि और मात्रा का समुचित विवेचन किया गया है। मुर्गी-पालन के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालते हुए उनके रोगों की एलोपैथिक औषधियों का अंकन किया गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पशु-पालकों, मुर्गी-पालनकर्ताओं तथा पशु-चिकित्सकों के लिए बहुत उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होगी।

— लेखक

विषय-सूची



एलोपैथिक पशु-चिकित्सा



संसार में अगणित प्रकार के पशु हैं। सामान्यतः पशुओं की दो श्रेणियाँ हैं। एक तो वह वर्ग जो मानव-सम्पर्क से दूर रहकर जंगलों, पर्वतों और खेतों में रहता है और पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर रहता है। इन्हें वन्य-पशु कहते हैं। इनका खान-पान और रहन-सहन पूर्णतः प्रकृति के अनुकूल होता है और ये प्रभु-प्रदत्त सहज स्वाभाविक ज्ञान से अपने को सदैव रोगमुक्त रखते हैं। ये वन्यपशु मनुष्य की भाँति बार-बार प्रतिवर्ष, प्रतिमाह बीमार नहीं होते और न कुढ़-कुढ़कर, घुट-घुटकर अपने प्राण देते हैं। ये जंगली जानवर अपने जीवन में केवल एक बार अन्तिमकाल में बीमार होते हैं और उसी समय अपने प्राण दे देते हैं। किसी दुर्घटना या आक्रमणादि के अतिरिक्त ये कभी बीमार नहीं होते। ये वन्यपशु प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में सर्वथा स्वच्छन्द रहकर प्राकृतिक नियमों का पालन करते और कोई हानिकर वस्तु भूलकर भी ग्रहण नहीं करते। फलतः वे सदैव स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। इसके प्रतिकूल पालतू पशु मानव के पराधीन होने के कारण प्रकृति के नियमों का पालन न कर पाने से अपने पालकों की खान-पान और रहन-सहन की भूलों और प्रमाद का कुफल भोगकर मनुष्य की ही भाँति विविध व्याधियों के शिकार होते रहते हैं। इन निरीह और मूक पशुओं के रोगों की पहचान और चिकित्सा कठिन कार्य है। अतः प्रत्येक पशु-पालक और पशु-चिकित्सक को पशुओं के अंग-प्रत्यंग, उनकी प्रकृति, उनके रख-रखाव, रोगों और उपचार का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए।

अपनी सरकार द्वारा प्रत्येक विकासखंड में पशु-चिकित्सालयों की स्थापना हो चुकी है और वे यथासम्भव अपने क्षेत्र के पशुधन की देख-रेख और पशु-चिकित्सा आदि का कार्य करते हैं। किसी संक्रामक रोग के फैलने या सम्भावित

रोगों के प्रतिरोध के लिए व्यापक रूप से टीका लगाते और उन्हें समुचित परामर्श देते हैं। दुधारू पशुओं के कृत्रिम गर्भाधान की व्यवस्था की जाती है जिससे पशुओं की नस्ल में सुधार हो सके।

हमारे देश में सरकारी, व्यक्तिगत तथा सहकारीरूप के ऐसे वहुत-से पशु-पालन-केन्द्रों का संचालन हो रहा है, जहाँ देश के विभिन्न भागों के विभिन्न जातियों के दुधारू पशु रखे जाते हैं और उनपर वैज्ञानिक प्रयोग किये जाते हैं। इन प्रतिष्ठानों से पशुपालकों को उत्तम नस्ल के पशु सुलभ हो जाते है।

अपने देश में प्रमुख डेरी फार्म इस प्रकार हैं :—

१—भारतीय कृषि-अनुसन्धानशाला, नई दिल्ली।

२—सरकारी गौ-पशुफार्म, झाँसी (उत्तर प्रदेश)

३—सरकारी मिलिटरी डेरी फार्म, फिरोजपुर (पंजाब)

४—पशुधन अनुसन्धान केन्द्र, हिसार (हरियाणा)

५—सरकारी डेरी फार्म, तेलनखेड़ी, नागपुर (मध्यप्रदेश)

६—भारतीय डेरी अनुसन्धानशाला, बंगलौर (मैसूर)

७—एग्रीकलचर कालेज डेरी, किरकी, पूना (महाराष्ट्र)

८—सरकारी कृषि स्टेशन, सूरत (गुजरात)

९—सरकारी गौ-पशु-फार्म, पटना (बिहार)

१०—सरकारी परीक्षण फार्म, कांके, राँची (विहार)

११—भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धानशाला, इज्जतनगर, बरेली (उ० प्र०)

इनके सिवा और भी अनेक पशु-फार्म और अनुसन्धान-केन्द्र हैं, जिनमें कुछ सरकारी, कुछ सहकारी रूप से तथा धर्मार्थ गौशाला के रूप में चल रहे हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में भी एक उन्नत गौपशुफार्म चल रहा है। बम्बई की दुग्ध-योजना के आधीन भी एक बहुत वृहद पशुपालन-केन्द्र का संचालन

हो रहा है और वहाँ भी विभिन्न जातियों के पशुओं की दुग्ध-उत्पादन वृद्धि के विभिन्न वैज्ञानिक यत्न खोजने के प्रयोग किये जाते हैं। अमूल सहकारी संस्थान, खेड़ा (गुजरात) डेरी फार्म का शुष्क दुग्ध चूर्ण तथा मक्खन तो देश के प्रत्येक नगर में ही नहीं, विदेशों में भी अपने उच्चश्रेणी के वैज्ञानिक दुग्ध-पदार्थों के लिए प्रख्यात और लोकप्रिय है। उत्तरप्रदेश कोऑपरेटिव डेरी फेडरेशन लि०, लखनऊ द्वारा उनके इन्फेन्ट मिल्क फूड फैक्टरी, दलपतपुर (मुरादाबाद) से 'पराग' नामक शिशु-दुग्ध-आहार का उत्पादन होता है, जो प्रत्येक नगर में उपलब्ध है। इनके अतिरिक्त और भी कई सरकारी, सहकारी और व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा दुग्ध-चूर्ण, मक्खन और घी का उत्पादन किया जाता है, जो बाजार में उपलब्ध हैं।

पशुधन की महत्ता और उपयोगिता स्वयंसिद्ध और सर्वविदित है। प्राचीन युग से लेकर आधुनिक काल तक पशुओं की उपयोगिता में कोई अन्तर नहीं आया और जबतक मानव-जाति का अस्तित्व इस धराधाम पर शेष है, तबतक पशुओं की उपयोगिता और आवश्यकता बनी ही रहेगी। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक मानव-शरीर का पालक-पोषक और जीवनशक्तिदायी दूध प्राप्त होने का एकमात्र साधन गायें, भैंसें और बकरियाँ ही हैं। कृषि-कार्य के लिए बैल एवं भैंसे तथा भार-वहन के लिए बैलों, भैंसों, घोड़ों, गधों एवं ऊँटों की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त पशुओं के गोबर से कृषि की उपज-वृद्धि करनेवाली खाद तथा ईंधन के लिए उपले बनाये जाते हैं। बकरों और सुअरों का मांस मांसाहारियों के लिए पोषक और रुचिकर खाद्य है। भेंड़ों से ऊन मिलती है। सभी को ज्ञात है कि ऊनी वस्त्रों की ऊष्मा शीतकाल में शरीर की रक्षा करती है। इसके अतिरिक्त मर जानेपर पशुओं के चमड़े से जूते तथा बहुत-सी उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। पशुओं की हड्डियाँ उर्वरक तथा अन्य औद्योगिक कार्यों में प्रयोग की जाती हैं।

अधिक उन्नत नस्ल के स्वस्थ और परिपुष्ट पशु किसान की सम्पन्नता के द्योतक होते हैं। सभी किसान और पशुपालक अपनी सामर्थ्य और साधन-सुविधा

के अनुसार उचित देखभाल और चारा-दाना देकर अपने पशुओं को स्वस्थ, सबल और पुष्ट रखने का प्रयास करते हैं। किन्तु जानकारी के अभाव में उन्हें पर्याप्त पौष्टिक और संतुलित आहार न देने से प्रायः उनके पशु निर्बल हो जाते हैं। निर्बल पशुओं की रोग-प्रतिरोधक्षमता कम हो जाने से वे बहुधा रोगी हो जाते हैं। पशुओं के सभी रोगों और उनके उपचार का ज्ञान भी पशुपालकों को बहुत कम—नहीं के बराबर होता है। जिन स्थानों के समीप पशु-चिकित्सालय हैं, वहाँ के लोग तो अपने बीमार पशुओं को वहाँ ले जाकर या पशु-चिकित्सक को अपने यहाँ बुलाकर उपचार-व्यवस्था कर लेते हैं; किन्तु सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों के किसान उचित चिकित्सा-व्यवस्था से वंचित रह जाते हैं और उचित उपचार के अभाव में प्रायः उनके पशु मर जाते हैं।

शहरों, कस्बों और उनके निकटवर्ती गाँवों के लोग व्यवसायिक स्तर पर गायें, भैंसें पालकर उनके दूध की बिक्री कर अपनी आजीविका चलाते हैं। पशु-पालन के कार्य में परिश्रम तो अवश्य हैं, किन्तु आर्थिक लाभ की दृष्टि से गौ-भैंसों का पालन बहुत लाभदायक व्यवसाय है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार थोड़े-से पशुओं को लेकर आरम्भ किये गये व्यवसाय से समयानुसार धीरे-धीरे स्वतः पशु-धन बढ़ता जाता है। एक गाय से ही ५–६ वर्ष में ४–५ गायें या बछड़े और एक भैंस से ४–५ भैंसें या भैंसा उत्पन्न होकर पूंजी और व्यवसाय की वृद्धि हो जाती हैं। बकरियों की वंश-वृद्धि तो और तीव्र गति से होती है। इसी प्रकार भेंड़-पालन और मुर्गी-पालन के व्यवसाय भी बहुत लाभप्रद हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में शिक्षा का विस्तार बहुत तीव्र गति से हुआ है। हर दस-बारह मील को परिधि में ग्रामीण क्षेत्रों में भी हाईस्कूलों की स्थापना हो जाने से ग्राम्यक्षेत्रों के निवासियों में भी शिक्षित युवकों का अभाव नहीं है। ग्राम्यक्षेत्र के निवासी अधिकांशतः किसान ही होते हैं। अपने कृषि-कार्य तथा दूध-घी के लिए सभी किसान अपनी स्थिति, सामर्थ्य और साधन के अनुसार बैल या भैंसा, गाय, भैंस, बकरी इत्यादि पालते हैं। किसानों और पशुपालकों के

लाभार्थ, जिससे वे अपने पशुओं के उचित रख-रखाव, संतुलित आहार, सुरक्षा और उनके रोगाक्रान्त होने पर स्वयं उचित उपचार कर सकें, इस पुस्तक का प्रणयन किया जा रहा है।

भारत के मुख्य पालतू पशु और पक्षी

यद्यपि अपने देश में अनेक प्रकार के पशु पाले जाते हैं, किन्तु मुख्यरूप से गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, बैल, घोड़ा, गधा, खच्चर, ऊँट, कुत्ते तथा मुर्गियों को ही पाला जाता है। उपरोक्त पशुओं को पालने के विभिन्न उद्देश्य और स्वरूप हैं। छोटे-छोटे किसान और पशुपालक अपनी आवश्यकता और स्थिति के अनुसार इन पशुओं को पालते हैं। कुछ लोग व्यवसायिक दृष्टिकोण से पशु पालते हैं। जैसे कुछ लोग दूध का व्यवसाय करते हैं। वे गायें और भैंसें अधिक संख्या में पालते हैं। एतदर्थं पशुपालन का ज्ञान परमावश्यक है; अन्यथा अज्ञानवश गलत ढंग से पशुपालन करने पर कभी-कभी बहुत हानि भी हो जाती है। अतः पशुपालकों को पशुओं के रख-रखाव के सम्बन्ध में—जैसे समुचित पशुशाला, उचित पुष्टिकर और स्वास्थ्यप्रद चारा-दाना, उनकी प्रकृति और स्वभाव, रुग्ण पशुओं की पहचान, उनकी औषधि-उपचार व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में पूर्ण वैज्ञानिक ज्ञान आवश्यक है।

पशु-स्वास्थ्य के आधारभूत स्तम्भ

पशु-वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधानों, परीक्षणों और अनुभवों से यह परिणाम निकला है कि पशुओं के स्वास्थ्य के लिए शुद्ध वायु, स्वच्छ जल, उन्मुक्त प्रकाश, उत्तम आहार, स्वच्छन्दता, परिश्रम, विश्राम आवश्यक हैं। प्राणीमात्र के लिए जो वस्तुएँ जितनी ही अधिक आवश्यक हैं, परमेश्वर और प्रकृति ने वे वस्तुएँ उतनी ही प्रचुर मात्रा में संसार में उपलब्ध की हैं। प्राणीमात्र के जीवन का प्रमुख आधार शुद्ध वायु है। वायुमंडल में ओषजन (ऑक्सीजन), भूयाति नत्रजन (नाइट्रोजन) और कार्बनडाइऑक्साइड (प्रांगारद्विजारे) आदि गैसों का सम्मिलन है। ऑक्सीजन अत्यधिक ज्वलनशील होती है, अतः अकेली ऑक्सीजन भी घातक होती है, यदि उसके साथ नाइट्रोजन गैस न हो। यह बात वैज्ञानिक परीक्षणों से

प्रमाणित हो चुकी है कि प्राणीमात्र वायुमण्डल से प्राणवायु ऑक्सीजन और नाइट्रोजन श्वास द्वारा ग्रहण करते हैं और श्वास निकालते समय कार्वनडाइऑक्साइड निकालते रहते हैं। वृक्ष और वनस्पतियाँ वायुमण्डल से कार्वनडाइऑक्साइड खींचते और प्राणवायु ऑक्सीजन निकालते रहते हैं। वायु के तत्त्वों में ऑक्सीजन प्राणीमात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी, नाइट्रोजन निरुपयोगी और कार्वनडाइऑक्साइड हानिकर होता है। नाइट्रोजन और कार्वनडाइऑक्साइड पेड़-पौधों के लिए उपयोगी हैं। प्राणवायु ऑक्सीजन प्राणीमात्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण और आवश्यक है। ऑक्सीजन फुस्फुसों को गतिशील रखती, रक्त शुद्ध करती, पाचन-क्रिया संचालित करती तथा विषैले तत्त्वों को शरीर से बाहर निकालती है। मनुष्यों और पशुओं के निवास का स्थान जितना ही हवादार, खुला हुआ और पेड़-पौधों से घिरा हुआ होता है उतनी अधिक शुद्ध वायु उसे प्राप्त होगी।

अधिक मात्रा में ऑक्सीजनमिश्रित वायु शुद्ध और कार्वन-डाइ-ऑक्साइड मिश्रित वायु अशुद्ध होती है। शुद्ध वायु, रूप, रस, स्वाद और गंधविहीन होती है, क्योंकि वायु के अन्य तत्त्व निर्गन्ध और निस्वाद होते हैं। किन्तु कार्वन-डाइ-ऑक्साइड अम्लस्वादयुक्त, दुर्गन्धयुक्त और भारी होती है। भारी होने से ही वह गहरे गड्ढों, गहरे जलहीन कुँओं और भूमितल से आठ-दस फीट की ऊँचाई तक अधिक मात्रा में रहता है। ऑक्सीजन ज्वलनशील होता है, किन्तु कार्वन-डाइ-ऑक्साइड ज्वलनशील और जीवनपोषक नहीं होता। इसीलिए कार्वन-डाइ-ऑक्साइड जहाँ अधिक होता है, वहाँ दीपक बुझ जाता है। ऐसी अशुद्ध वायु में कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। बहुत दिनों से बन्द कुँओं और तहखानों में जब मनुष्य प्रवेश करता है, दम घुटकर मर जाता है। ऐसे कई उदाहरण देखे गये हैं।

जिस स्थान में गन्दगी, नमी और सीलन रहती है, धूप और स्वच्छ वायु आने के लिए काफी दरवाजे और खिड़कियाँ न हों, जहाँ कोई चीज सड़ती हो और दुर्गन्ध फैलती हो, संकीर्ण स्थान हो, कम स्थान में अधिक प्राणी रहते हों, जहाँ कल-कारखाने हों, धुआँ, धूलकण, रूई या रेशम के रेशे उड़ते हों, ऐसे स्थान

को वायु में गन्दगी और कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। अँधेरे और संकीर्ण स्थान में जहाँ बहुत-से मनुष्य या पशु एकत्रित हों, वहाँ की वायु अधिक अशुद्ध होती है। बड़े कस्बों और बड़े नगरों में कोल-गैस और मिट्टी का तेल अधिक जलने से, कल-कारखानों के धुयें से, सँकरी गलियों में नालियों की गन्दगी और घनी बस्तियों के वायुमण्डल में अशुद्ध वायु की मात्रा बढ़ जाती है।

गाँवों और जंगलों में खुला वातावरण होने से वायुमंडल में पर्याप्त ऑक्सीजन होती है। इसलिए पशुओं को नित्य दिन में जंगल में चरने के लिए छोड़ना चाहिए। बड़े नगरों में जहाँ ऐसी सुविधा न हो, ऋतु के अनुसार उन्हें खुले स्थान में बाँधना चाहिए तथा पशुशाला ऐसी हो जिसमें शुद्ध वायु और प्रकाश आता रहे।

पानी

पानी प्रत्येक प्राणी के जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है, जिसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता है। शरीर में $\frac{3}{4}$ भाग पानी का ही होता है। पानी का एक पर्यायवाची शब्द जीवन भी है। बिना भोजन के तो मनुष्य या पशु कई दिनों तक जीवित रह सकता है, किन्तु बिना पानी के वह एक-दो दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकता। जब शरीर को पानी की आवश्यकता होती है, तभी प्यास लगती है। यदि किसी विशेष कारणवश किसी मनुष्य या पशु को कई घण्टों तक पानी न मिले तो उसका रक्त गाढ़ा होकर जमने लगता है और रक्त-संचालन अवरुद्ध हो जायेगा, मांसपेशियाँ शुष्क होकर ऐंठने लगेंगी और अन्ततः पानी के अभाव में उसका प्राणान्त हो जायेगा। पशुओं को नित्य समय पर स्वच्छ जल पिलाना चाहिए। बहुधा गाँवों के लोग इस सम्बन्ध में लापरवाही करते हैं और गन्दे तालाबों का कीटाणुयुक्त गन्दा पानी पिला देते हैं। जिससे पशु प्रायः रोगाक्रान्त हो जाते हैं। जहाँ पर नदी हो, वहाँ बरसात के अतिरिक्त अन्य मौसमों में नदी का पानी पिलाना चाहिए। नदी का बहनेवाला पानी तालाबों के भरे रहनेवाले पानी की अपेक्षा अधिक स्वच्छ होता है। नित्य न सही तो तीसरे-चौथे दिन पशुओं को भलीभाँति नहलाना भी चाहिए। नहलाने से पशु अधिक स्वच्छ, सबल, स्फूर्तिवान और अधिक दूध

देने वाले रहेंगे। भैंस को तो नित्य कुछ समय नदी या तालाब के पानी में लोटने या नहाने देना चाहिए।

प्रकाश

सूर्य का प्रकाश और ऊष्मा जीवमात्र के ही जीवन और स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, बल्कि पेड़-पौधों के लिए भी परमावश्यक हैं। प्राणी का शरीर भी गर्मी से ही जीवित रहता है। संसार के प्राणियों की गर्मी बहुत अंशों में सूर्य की किरणों पर ही निर्भर है। सूर्य की किरणें वायु को शुद्ध रखतीं और अनेक रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करती हैं। सूर्य की किरणों से विटामिन डी मिलता है, जो दाँत और हड्डियों की दृढ़ता के लिए आवश्यक है। मई-जून में दोपहर की तेज धूप में नहीं, बल्कि सवेरे और अपराह्न के पश्चात् हल्की सुहानी धूप में तथा अन्य ऋतुओं में दिनभर पशुओं को धूप में बाँध रखना और चराना आवश्यक है।

आहार या चारा-दाना

आहार यानी भोजन से ही प्रत्येक प्राणी जीवित रहता है, शक्ति प्राप्त करता है तथा स्वस्थ और सबल रहता है। अतः पशुओं को भी पर्याप्त मात्रा में उपयुक्त और पौष्टिक आहार देना चाहिए। पशुओं को सदैव संतुलित और पौष्टिक चारा-दाना देना चाहिए, जिसमें उन्हें सभी पौष्टिक तत्त्व—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज तत्त्व आदि मिलते रहें। चारा ताजा, स्वादिष्ट एवं विभिन्न प्रकार के दानोंवाला होना चाहिए। दाना को दलकर या पीसकर भिगोकर चारा में मिलायें। इससे पशुओं की पाचन-शक्ति ठीक रहती है। यथासम्भव पशुओं को रसीला-हरा चारा देना चाहिए। पशुओं के आहार की मात्रा का सामान्य नियम यह है कि पशुओं के १०० पौण्ड के भार पर एक किलो चारा-दाना हो तथा १०० पौण्ड भार के हिसाब से १५ औंस नमक पानी में मिलाकर पशुओं को चाटने के लिए रख देना चाहिए। औसत आकार की ४०० किलो वजनी गाय के लिए प्रतिदिन ४-५ किलो भूसा, करीब १५-२० किलो हरा चारा और करीब एक किलो रातिब (दाना) देना चाहिए। भैंसों, बैलों और साँड़ों को इससे ड्योढ़ी मात्रा देनी चाहिए। दूध

देनेवाली गाय को ढाई किलो दूध पर एक किलो रातिब प्रतिदिन देना चाहिए। इसी हिसाब से भैंस को भी रातिव देना चाहिए। अधिक परिश्रम करने और भार ढोने वाले बैलों को ३ किलो अतिरिक्त रातिब प्रतिदिन देना चाहिए। गाभिन गाय, भैंस को व्याने के अन्तिम दो महीनों में एक किलो अतिरिक्त रातिब प्रतिदिन देना चाहिए।

ज्वार, बाजरा, मक्का आदि के पौदों की कुट्टी गँड़ासे या मशीन से काटकर उसके साथ दाना, खली, हरियाली आदि मिलाकर नाँद या टोकरे में डाल कर देना चाहिए। धान का पयाल भी पशुओं का रुचिकर चारा है। पयाल की कुट्टी कर उसमें मटर, अरहर आदि दलहनी पौधों की कुट्टी मिलाकर तथा बिनौले के स्थान पर बिनौले की खली मिलाकर खिलाना पशुओं को अधिक लाभप्रद है।

खनिज तत्त्वों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित मिश्रण स्वयं तैयार करके या बाजार से तैयार खरीदकर पशुओं को देने से उनके शरीर में खनिज तत्त्वों की पूर्ति होती रहेगी :—भलीभाँति पिसा हुआ हड्डियों का चूरा ४५ भाग, खड़िया (कैल्शियम कार्बोनेट) १० भाग, नमक ३० भाग, डी-कैलशियम फास्फेट १२ भाग, लोहे का पीला ऑक्साइड ०·५० भाग, पोटाशियम आयोडाइड २·२० भाग, स्टार्च ०·७५ भाग, सोडियम कार्बोनेट ०·७५ भाग, सोडियम थियोसल्फेट १·७५ भाग। इस प्रकार १०० किलो मिश्रण में ५० ग्राम कोबाल्ट क्लोराइड, ०·२५ किलोग्राम कॉपर सल्फेट और ०·३ किलोग्राम मैंगनीज सल्फेट भलीभांति पीसकर मिलाना चाहिए। इससे उनके दूध में वृद्धि होती है।

पशुओं को प्रतिदिन चरागाह में घास चराना बहुत आवश्यक है। चराने से पशुओं की सैर भी हो जाती है और वे इच्छानुसार हरी घास और पत्तियाँ चर लेते हैं। हरी घास और पत्तियों में विटामिन 'सी', कैल्शियम और फास्फोरस पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। हरी घास और हरे चारे के अभाव में सूखी घास भी उपयोगी चारा है।

बच्चा जनने के कम से कम एक महीने पूर्व से गायों-भैंसों को अच्छे प्रकार का आहार जो प्रोटीन, कैल्शियम, फास्फोरस और विटामिनों से युक्त हो, पर्याप्त मात्रा

में नित्य देना चाहिए और फिर दूध देने के समय भी इसी प्रकार का आहार देते रहना चाहिए। गायों-भैंसों के बच्चों के लिए सर्वोत्तम और उपयुक्त आहार उनकी माँ का दूध है। यदि दूध की लालच में अधिक दूध दुह लेकर उनको पेट भर दूध नहीं दिया जाता तो बच्चे कमजोर हो जाते हैं और बहुधा शीतकाल में मर जाते हैं। यदि उनको पर्याप्त मात्रा में दूध पिलाया जाता और अच्छी देखभाल की जाती है तो वे सामान्यतः ढाई वर्ष में काम के योग्य हो जाते हैं।

घास पशुओं का रुचिकर और हितकर आहार है। घासें कई प्रकार की होती हैं। चरागाहों की घासें सर्वोत्तम और सस्ती होती हैं। हरी घास में प्रोटीन के अतिरिक्त कैल्शियम, फास्फोरस, विटामिन्स और खनिज लवण भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। अपने देश की घासों में दूब, सेवई, अंजन, गौरिया, पल्वान, भुसैल, ऊकर, सूर्याला आदि घासें अच्छी और अधिक परिमाण में मिलती हैं। दूब सर्वोत्तम घास है। सूखी घास में यद्यपि हरी घास की अपेक्षा पोषक तत्व कम हो जाते हैं, किन्तु कोमल दशा में काटकर सुखाई हुई घास भी काफी गुणकारी होती है।

पशुओं के चारे और मनुष्य के लिए दाने के लिए उगायी जानेवाली चीजों में खरीफ की फसल में धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, सांवां, लोबिया, मडुवा ज्वार तथा रबी की फसल में बोई जानेवाली फसलों में मटर, बरसीम, गेहूँ, जौ, जई इत्यादि मुख्य हैं। धान का पयाल और गेहूँ-जौ का भूसा पशुओं के लिए रुचिकर और ठोस आहार हैं।

हरी घास और ज्वार, बाजरा, मक्का, सांवां, मडुवा की कुट्टी पशुओं का रुचिकर, पौष्टिक और उत्तम आहार हैं। किन्तु गर्मी के दिनों में जब हरे चारे का अभाव हो जाता है, पेड़ों की पत्तियाँ पशुओं को खिलाई जा सकती हैं। गर्मी के दिनों में हरे चारे के अभाव की पूर्ति के लिए साइलेज-प्रणाली द्वारा घासों और ज्वार, बाजरा, एम० पी० चरी, मक्का इत्यादि की कुट्टी सुरक्षित रखी जा सकती है।

साइलेज बनाने की विधि

साइलेज बनाने के लिए कुछ ऊँची और ढालू जमीन उपयुक्त होती है। ऐसी भूमि में एक ८ फुट गहरा, ५ फुट लम्बा और ४ फुट चौड़ा एक सीधा गड्ढा इस

प्रकार खोदें कि उसकी दीवालें सीधी हों। फिर गड्ढे की तली में धान का पुआल या सूखी घास चारो ओर बिछा दें। फिर हरी घास या हरे चारे की कुट्टी पैरों से दबा-दबाकर इस प्रकार भरें कि उसके बीच में हवा बिल्कुल न रहे। गड्ढे से दो-ढाई फुट ऊपर तक कुट्टी भरकर उसके ऊपर सूखी घास या पुआल से ढँककर ऊपर से ईंटों-पत्थरों और मिट्टी से ढँककर, ऊपर से लीप दें। इस गड्ढे में करीब १०० मन चारा आ सकता है। इस कुट्टी में गुड़ का शीरा और कुछ नमक मिलाकर भरना चाहिए। साथ ही इस बात का भा ध्यान रखना चाहिए कि उसकी आर्द्रता (नमी) ३०-४० प्रतिशत से अधिक या कम न हो। साइलेज बनाने के लिए बालें निकलने से पहले ही ज्वार, बाजरा, मक्का को काट लेना चाहिए। ठीक तरह से बने साइलेज का रंग हरा या हरा-भूरा होता है, वह सुगन्धित और खाने में स्वादिष्ट होता है। यदि साइलेज ठीक ढंग से न तैयार हुआ होगा तो उसमें दुर्गन्ध और फफूँद पैदा हो जाती है तथा उसे पशु नहीं खाते।

पशुओं के लिए दानावर्ग क आहार

दाने में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन बी आदि पोषक तत्त्व अधिक होते हैं, अतः पशुओं को चारे के साथ थोड़ा-बहुत दाना अवश्य देना चाहिए। विशेषतः दुधारू पशुओं तथा अधिक परिश्रम करनेवाले पशुओं के लिए दाना बहुत आवश्यक है। एतदर्थ अन्नों के दाने और खली का प्रयोग किया जाता है। अन्न में प्रोटीन, स्टार्च, फास्फोरस की पर्याप्त मात्रा के साथ ही विटामिन बी और ई पर्याप्त मात्रा में होते हैं, पशुओं के लिए चना, जौ, जई, ज्वार उत्तम खाद्य हैं। अरहर, ज्वार और मक्का भी पशुओं के लिए हितकर हैं। चारे के साथ गेहूँ, जौ का चोकर, चना, मटर, अरहर के छिलके (कराई) भी दिया जाता है। कुट्टी या भूसे में जौ का आटा, चना, अरहर की चूनी या चोकर इत्यादि अवश्य मिला देना चाहिए। गेहूँ, जौ का चोकर, चावल का कन, मटर-चने की चूनी पशुओं के लिए बहुत लाभदायक है। इनमें कई खनिज-तत्त्व और फोक होने से पशुओं का पेट साफ हो जाता है और उन्हें अफारा, कब्ज होने का भय नहीं रहता। दुधारू पशुओं के लिए यह बहुत गुणकारी है।

खली

दुधारू तथा परिश्रम करनेवाले पशुओं के लिए खली बहुत आवश्यक है। खली में प्रोटीन, वसा, कैल्शियम, फास्फोरस आदि तत्त्व होते हैं। इनका प्रभाव पशु के दूध और उनकी कार्य-क्षमता पर पड़ता है। राई-सरसों, अलसी, मूँगफली, विनौला, सोयाबीन, नारियल आदि की खली पशुओं के लिए बहुत उपयुक्त और पुष्टिकर होती है। दुधारू पशुओं को विनौले या विनौले की खली देने से दूध में चिकनाई की मात्रा बढ़ जाती है। मूँगफली और सोयाबीन की खली में करीब ५० प्रतिशत प्रोटीन होता है। तिल की खली भी बहुत उत्तम होती है। पशु के गाभिन हो जानेपर महीने-दो-महीने राई-सरसों की खली अधिक मात्रा में न देना चाहिए; क्योंकि इन खलियों के अधिक प्रयोग से गर्भस्राव की आशंका रहती है।

दाना-खली के कुछ विशिष्ट मिश्रण

दुधारू पशुओं के अधिक दुग्ध-उत्पादन के लिए कुछ लोग अज्ञानवश आवश्यकता से अधिक और अनुपयुक्त दाना-खली देने लगते हैं, परिणामतः पशुओं की पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है और वे बीमार हो जाते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग उन्हें उचित और उपयुक्त आहार नहीं देते, जिससे उनके पशुओं का दूध बहुत कम हो जाता है। यहाँ हम वैज्ञानिक-परीक्षणों और अन्वेषणों के आधार पर निर्धारित खली-दानों के कुछ विशिष्ट मिश्रण जो देश के भिन्न-भिन्न भागों में सुगमता से उपलब्ध हैं, दे रहे हैं जो दुधारू पशुओं के लिए बहुत उपयोगी हैं। इन मिश्रणों को देते समय पशु के आकार-भार और अवस्था का ध्यान रखना चाहिए। जैसे—सद्यःप्रसूता या बीमारी आदि के कारण निर्बल पशु को ये मिश्रण कम मात्रा में देना चाहिए। सामान्यतः इन मिश्रणों की मात्रा का हिसाब इस प्रकार रखना चाहिए कि यदि एक गाय ३ पौण्ड दूध देती है तो उसके लिए एक पौण्ड मिश्रण और ६ पौण्ड दूध देनेवाली भैंस के लिए ३ पौण्ड मिश्रण पर्याप्त होगा। सभी मिश्रण समान गुण युक्त और समान पोषक तत्त्वों से युक्त हैं।

१०० पौण्ड में विभिन्न वस्तुओं की मात्रा

१—गेहूँ का चोकर	४५ पौण्ड
अलसी की खली	३० पौण्ड
जौ या जई या कोई समकक्ष अन्न	२५ पौण्ड
२—चना	२५ पौण्ड
जई	५५ ,,
अलसी की खली	१० ,,
मूँगफली की खली	१० ,,
३—अलसी की खली	३५ पौन्ड
चावल का कना	२५ ,,
चना	२० ,,
मक्का या जौ या जई	२० ,,
४—अलसी की खली	२० पौण्ड
चना	४५ ,,
गेहूँ का चोकर	३५ ,,
५—तिल की खली	५ पौण्ड
नारियल की खली	१५ ,,
बिनौला की खली	२० ,,
गेहूँ का चोकर	४० ,,
उर्द, अरहर आदि का छिलका	२० ,,
६—मूँगफली की खली	८॥ पौण्ड
अलसी की खली	८॥ ,,
जई	४० ,,
चना	२५ ,,
गेहूँ का चोकर	१८ ,,

७—चना की चूनी	२० पौण्ड
गेहूँ का चोकर	३० ,,
जौ	२० ,,
अलसी की खली	३० ,,
८—सरसों की खली	५ ,,
मूँगफली की खली	५ ,,
अलसी की खली	१० ,,
जौ	२० ,,
मक्का	२० ,,
ग्वार	५ ,,
चना	१० ,,
गेहूँ का चोकर	२५ ,,
९—बिनौले की खली	२० पौण्ड
अलसी की खली	३० ,,
गेहूँ का चोकर	२० ,,
चने की कराई	२० ,,
चने की चूनी	१० ,,
१०—बिनौले की खली	४० पौण्ड
तिल की खली	१० ,,
चने की कराई	२० ,,
अरहर की चूनी	१५ ,,
ज्वार	१५ ,,
११—मूँगफली की खली	२० ,,
बिनौले की खली	१५ ,,
गेहूँ का चोकर	२५ ,,

चने की कराई	३० ,,
चावल का कना	२५ ,,
१२—मक्का या ज्वार	२० पौण्ड
तिल या सरसों की खली	१० ,,
गेहूँ का चोकर	२० ,,
चना	५ ,,
अलसी या मूँगफली की खली	१० ,,
जौ	३० ,,
ग्वार	५ ,,
१३—जौ	२० पौण्ड
मक्का	२० ,,
चना	१० ,,
ग्वार	५ ,,
अलसी की खली	१० ,,
सरसों की खली	५ ,,
मूँगफली की खली	५ ,,
१४—बिनौले की खली	४० पौण्ड
मूँगफली की खली	१० ,,
चने की कराई	३० ,,
अरहर की चूनी	२० ,,

उपरोक्त मिश्रणों की जो तालिका दी गयी है और जो हिसाब बताया गया है वह सामान्य अवस्था के लिए है। मिश्रणों की मात्रा इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए कि वह पशु के अनुकूल हो। उसका पाचन होता रहे और दूध की मात्रा क्रमशः बढ़ती जाय। गाय-भैंस का प्रसवकाल समीप आ जाने पर उक्त मिश्रण पूर्ण मात्रा में न देकर कुछ कम कर दिया जाय। प्रसवकाल निकट आ जाने पर नित्य लगभग

पावभर कड़ुआ तेल पिला देना चाहिए। बीमार पशु को कोई मिश्रण न देकर हरी मुलायम घास या दूसरा हल्का हरा चारा देना चाहिए।

बीमार पशु का आहार और देखभाल

रोगी पशु की सेवा भी अपने कुटुम्बियों की भाँति ही करनी चाहिए। उसे तेज और ठंडी हवा, धूप और बरसात के दिनों में भीगने से बचाना चाहिए। उसके बाँधने के स्थान की सफाई, उसे समय पर चारा-पानी, दवा देने और आवश्यकता होने पर पशु-चिकित्सालय पहुँचाने का ध्यान रखना मानव-धर्म है। जहाँ तक सम्भव हो रुग्ण पशु को अधिक निर्बलता की अवस्था में चारा-दाना आदि न देना ही उपयुक्त है। कभी-कभी मुलायम हरा चारा उसके सामने रखें। अनिच्छा होने पर पशु स्वयं चारा नहीं खाते। कुछ विशेष रोगों में पशुओं को पानी पिलाना निषेध है, उनके सिवा अन्य रोगों में पशु को कुंयें या नल का स्वच्छ जल पिलाना चाहिए। पशु को ले जाकर गन्दे तालाब आदि का कीटाणु-युक्त पानी न पिलाना चाहिए। यदि पशु को पतले का खूनी दस्त आते हों तो उसे तरल चीजें अधिक न देना चाहिए। इससे और अधिक दस्त आकर निर्बलता बढ़ जायगी। रोगी पशु को हरा, मुलायम और शीघ्र हजम होनेवाला चारा थोड़ा-थोड़ा करके कई वार दना चाहिए। एक ही वार भरपेट चारा खिलाने का प्रयत्न न करना चाहिए। इसके साथ ही रुग्ण पशु को अधिक गर्म, अधिक वादी और काविज चीजें कभी न देनी चाहिए। मुख पक जाने, गले की सूजन आदि कुछ रोगों में पशु चारे-दाने को अच्छी तरह चबाकर पागुर नहीं कर सकता। इस-लिए ऐसी अवस्था में उसे भूसा, कुट्टी, कड़ी घास, दाना आदि न देकर मुलायम और तरल वस्तुएँ जैसे—दलिया, मट्ठा, रोटी, गेहूँ का चोकर, सत्तू का घोल, माड़ आदि खिलाना-पिलाना चाहिए। फिर जब पशु कुछ स्वस्थ होकर पागुर करने लगे तो मुलायम घास, हरे जौ की कुट्टी, भूसा आदि पानी में भिगोकर देना चाहिए। आवश्यकता होने पर पशु को दूध, मट्ठा, चाय आदि घोटे (ढरका) से पिलाना चाहिए। रोग-मुक्त होने पर पशु को एकदम भरपेट चारा-दाना न देकर क्रमशः धीरे-धीरे उसकी खूराक बढ़ायें।

स्वच्छता

उपयुक्त आहार के पश्चात् पशुओं को नीरोग रखने के लिए सफाई भी एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है। अस्वच्छता अनेक रोगों की जननी है। स्वच्छता में केवल पशुओं के शरीर की ही सफाई नहीं, बल्कि उनके चारे-दाने तथा जल की स्वच्छता तथा उनके निवास-स्थान के आस-पास के स्थान की स्वच्छता का भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। पशु के शरीर को स्वच्छ रखने के लिए उसे नित्य न सही तो तीसरे-चौथे दिन नदी या साफ पानी के तालाब या कुयें के पास ले जाकर खूब मल-मलकर नहलाना चाहिए। नहलाते समय किसी ऐसी कठोर चीज, जिससे पशु की खाल छिल जाय, का प्रयोग न करके टाट के टुकड़े, बाँस के छीलन या खोकसी (नेनुवा-तरोई के पके सूखे फल का छिलका निकाला हुआ जालीदार भाग) से मल-मलकर नहलाना चाहिए। पशु को नहलाते रहने से उसके त्वचा-छिद्र खुले रहते हैं और शरीर का मल पसीने के द्वारा बाहर निकलता रहता है। नहलाने से रक्त-संचालन ठीक रहता, पशु स्वस्थ, प्रसन्नचित्त और स्फूर्तिमान रहता है। कई शौकीन लोगों को तो अपने गायों, भैंसों और बैलों को लाइफब्वाय और लक्स आदि साबुनों से नहलाते देखा गया है।

पशु के बाँधने और उसके आसपास के स्थान की सफाई का भी ध्यान रखना चाहिए। पशु जहाँ बँधे रहते हैं, वहीं मल-मूत्र त्याग करते रहते हैं। अतः प्रातः-सायं उस स्थान की सफाई करते रहना चाहिए। पशु का गोबर यदि दो-एक दिन बन्द जगह में पड़ा रहता है तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं और कीड़ों से बहुत-से रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अच्छा तो यह है कि पशुशाला में एक फरुही रखी रहे। गौशाला एवं अन्य बाँधने के स्थानों पर कीटनाशक दवाओं का समय-समय पर छिड़काव करते रहना चाहिए, जैसे—मेलेथीयान, गेमेक्सीन; फिनायल, चूना इत्यादि। ज्योंही पशु गोबर करे, फरुही से गोबर हटा लिया जाय। पशु के बाँधने का स्थान समतल और गड्ढेदार न हों, ऐसे स्थान में पशु का कुछ मल-मूत्र भरा रहता है और वहाँ की जमीन गीली हो जाती है और जब

२

पशु वहाँ बैठता है तो वह गन्दगी उसके शरीर में लिपट जाती है। पशु के बाँधने का स्थान पीछे की ओर कुछ ढालू होना चाहिए, जिससे मूत्र पीछे की ओर बह जाय। यदि पशु के बाँधने का स्थान पक्का न हो, तो ऐसी मटियार और कड़ी मिट्टी का हो कि मूत्र में भीगने से जगह दलदल न हो जाय। अधिक अच्छा तो यह होगा कि पशु के बाँधने और उसके बैठने के स्थान पर दो-ढाई इञ्च सूखी भुरभुरी मिट्टी या सूखी राख और सूखी घास या पयाल फैला दिया जाय। इससे पशु को बैठने में आराम मिलेगा, साथ ही उसका मूत्र राख, मिट्टी, घास-फूस में शोषित होगा। पशु के मूत्र में गोबर की खाद से तिगुना नाइट्रोजन रहता है। सवेरे जानवर के पास का गोबर उठाते समय मूत्र में सनी मिट्टी घास-गोबर के साथ ही भरकर खाद के गड्ढे में डाल दी जाय। पशु के बाँधने का स्थान इस प्रकार पक्का बनवाना चाहिए कि अच्छी पक्की ईंटें पीछे की ओर ढालू रखते हुए बिछाई जायें, किन्तु उसमें सीमेंट का प्लास्टर न हो। सीमेंट के चिकने प्लास्टर पर प्रायः पशु विशेष रूप से बछड़े-बछिया आदि रपट जाते हैं। पीछे की ओर एक नाली ऐसी ढलुई एक छोटे हौज तक बनानी चाहिए कि पशु का मूत्र उसमें इकट्ठा होता रहे। वह मूत्र नित्य निकालकर खाद के गड्ढे में डाल देना चाहिए।

चारा-दाना और पानी की स्वच्छता के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में यथेष्ट प्रकाश डाला जा चुका है। पशुओं का दाना अच्छी तरह ढँककर रखना चाहिए जिससे उसमें चूहे न आकर खायें और मल-त्याग कर लेंड़ी न मिला दें।

भली-भाँति सफाई न करने पर प्रायः पशुओं के शरीर में जुयें और किलनी तथा उनके नीचे कुटकी कीड़े पैदा हो जाते हैं। यदि किलनी थोड़ी ही दीख पड़ें, तो उन्हें हाथों से निकाल-निकालकर थोड़े गोबर में गाड़ते जायें। पानी में फिनाइल डालकर नहला देने या पानी में बी० एच० सी० (गैमक्सीन) या डी० डी० टी० घोलकर नहला देने से भी जुयें और किलनियाँ मर जाती हैं। इसके स्थान पर मेलेथीयान उत्तम रहेगा। कुटकी बहुत छोटा कीड़ा होता है और पशुओं को काटता रहता है। जानवरों के बाँधने के स्थान में कुटकी पैदा

हो जाने पर सूखी घास-फूस बिखराकर जला देना चाहिए। जूँ-किलनी मारने के लिए तम्बाकू के पानी से नहलाना और आक्रांत स्थान पर मिट्टी का तेल चुपड़ देना चाहिए। पशु के बाँधने के स्थान पर कभी-कभी फिनाइल या फिनिट आदि कीटाणुनाशक दवाइयों का छिड़काव कर देना चाहिए। पशुशाला सदैव सूखा रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि मच्छर लगते हों तो पशुशाला में सूखे पत्तों और घास के साथ नीम की पत्तियाँ डालकर धुआँ कर देना चाहिए। इस प्रकार पशुशाला की सफाई रखने से पशु स्वस्थ रहेंगे। स्वस्थ पशुओं का ही दूध स्वास्थ्यप्रद होता है।

श्रम

मनुष्य की ही भाँति शारीरिक परिश्रम भी पशुओं के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। बिना परिश्रम के पशु का आहार अच्छी तरह नहीं पच पाता और न उनका शरीर सबल और स्फूर्तिमान रहता है। यदि दिन-रात पशु खूँटे में ही बँधा रहे तो वह शिथिल, आलसी, निष्क्रिय और अस्वस्थ हो जाता है। अतः शारीरिक श्रम आवश्यक है। खेती, सवारी और भारवहन करनेवाले बैल, भैंसे, घोड़े, गधे आदि पशु तो श्रमसाध्य कार्य करते ही हैं, किन्तु गाय, भैंस आदि दूध देनेवाले पशुओं से तो ऐसा कोई कार्य नहीं लिया जाता अतः उन्हें चार-छः घण्टे जंगल में चराना चाहिए। जंगल में पशु स्वयं ही दौड़-भाग, उछल-कूदकर थोड़ा-बहुत परिश्रम कर लेता है, इससे वह प्रसन्नचित्त और स्वस्थ रहता है।

विश्राम

मानव की ही तरह स्वस्थ रहने के लिए जितना श्रम आवश्यक है, उतना ही विश्राम करना भी आवश्यक है। जीवमात्र को आराम करने के लिए ही प्रकृति ने रात्रि बनाई है। बैलों, भैंसों, घोड़ों, गधों आदि कठिन श्रम करनेवाले पशुओं के विश्राम का भी पूर्ण ध्यान रखना चाहिए। अत्यधिक श्रम के पश्चात् यदि पशु को यथेष्ट विश्राम न मिले, तो पशु निरन्तर दुर्बल होता जाता है। कठिन परिश्रम के पश्चात् यदि पशु को पर्याप्त विश्राम मिल जाता है तो

उसकी विश्रांति दूर होकर पुनः परिश्रम करने के लिए नवीन शक्ति और स्फूर्ति का संचार हो जाता है। विश्राम के अतिरिक्त पशु की विश्रांति दूर करने के लिए उसकी जाँघों और रानों की एकाध घंटे मालिश करके कुछ देर उसे धीरे-धीरे टहलाना चाहिए। इससे उसकी थकावट शीघ्र ही दूर हो जाती है। भारवाही घोड़े के लिए तो यह अत्यावश्यक है।

स्वच्छन्दता

जानवर भी एक स्थान पर बँधे रहकर प्रसन्न नहीं रहते, भले ही उन्हें अच्छे से अच्छा और रुचिकर चारा-दाना क्यों न मिलता रहे। पशुओं को भी स्वच्छन्द विचरण करने में विशेष प्रसन्नता मिलती है, अतः उन्हें कुछ समय के लिए स्वच्छन्द छोड़ना बहुत आवश्यक है, जिससे वे इच्छानुकूल घूम-फिर, भाग-दौड़ कर सकें। इससे पशु का मन प्रसन्न रहता है। शरीर-स्वास्थ्य के लिए प्राणीमात्र के लिए मानसिक प्रसन्नता आवश्यक है। यदि पशु मरकहा, लड़ाकू और भगेलू है, तो पशु के स्वामी को उसकी गेराँव पकड़कर जंगल में घुमाने के लिए ले जाना चाहिए। अब सरकार एवं निजी फर्मों द्वारा संतुलित पशु आहार बनाया जाता है जिसको कि तीन या चार घण्टे पानी में भींगोना नहीं पड़ता बल्कि तत्काल पशु-आहार एवं भूसा इत्यादि साथ-साथ भीगोकर खिलाया जाता है। इन पशु-आहारों को निम्नलिखित बनाते हैं :—

(१) उ० प्र० कोऑपरेटिव फीड फैक्टरी—रामनगर
(२) उ० प्र० सरकार फीड फैक्टरी (गोरखपुर, लखनऊ, मेरठ इत्यादि)
(३) हिन्दुस्तान लीवर लि०
(४) टाटा फीड फैक्टरी

पशुपालकों के लिए कुछ आवश्यक निर्देश

पशुओं के शरीर में प्राकृतिक और स्वाभाविक रोग-प्रतिरोधक क्षमता होती है। वे बहुधा पशु-पालकों की त्रुटियों और प्रमादों के कारण ही रुग्ण रहते हैं। पशुओं को नीरोग और स्वस्थ रखने के लिए कुछ आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला जाता है।

पशुओं को स्वस्थ और नीरोग रखने के लिए उनकी देह बाँधने के स्थान, चारा-दाना, पानी आदि की स्वच्छता परमावश्यक है। इस सम्बन्ध में पूर्वोक्त नियमों का पालन करना चाहिए। पशुओं को अत्यधिक शीत, धूप, वर्षा आदि से रक्षित रखने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए। कुछ पशुपालक चारा-दाना को व्यर्थता से बचाने के लिए बीमार पशु के आगे बचा हुआ चारा स्वस्थ पशुओं को दे देते हैं, इससे वे भी बीमार हो जाते हैं। अतः रुग्ण पशु के खाने से शेष चारा-दाना स्वस्थ पशु को कदापि न दें। कई दूध के लोभी पशुपालक गाय-भैंस को पल्हाने (दूध उतारने) भर के लिए उनके बच्चों को छोड़ते हैं और फिर बच्चे को पशु के आगे खड़ा करके बूँद-बूँद दूध दुह लेते हैं और बच्चे को बिल्कुल नहीं देते। इससे बच्चे निर्बल होकर मर जाते हैं। यह क्रूरता और अमानुषिक कार्य है। इसके अतिरिक्त इससे उस पशु की दुग्ध-उत्पादन-क्षमता और प्रजनन-शक्ति भी कम हो जाती है। बड़े नगरों में कुछ लोभी दुग्ध-व्यवसायी दुधारू पशुओं को कुछ ऐसी दवायें खिलाते हैं कि उनके दूध की मात्रा में तत्काल वृद्धि हो जाती है, किन्तु इस प्रकार अप्राकृतिक रूप से दूध बढ़ाने से आगे चलकर वह पशु बिल्कुल निकम्मा हो जाता है और फिर बहुत ही कम दूध देने लगता है। दाना-खली, चोकर आदि जो पौष्टिक पदार्थ पशु के बलवर्द्धन या दुग्ध-वृद्धि के लिए दिया जाय, उसे ३-४ घंटे पूर्व चौगुने पानी में भिगो देना चाहिए। इससे वह चारे में अच्छी तरह मिल जाता है, उसे पशु रुचिपूर्वक खा लेता है और सुगमता से पच जाता है। नमक पशु के स्वास्थ्य के लिए गुणकारी है। अतः उनके कुछ नमक रख देना चाहिए, जिसको वह इच्छानुसार चाटता रहे। बीमार पशु को दूसरे स्वस्थ पशुओं के साथ न बाँधकर अलग बाँधना चाहिए। विशेषकर, ऐसी अवस्था में जब पशु किसी संक्रामक रोग से ग्रस्त हो।

गायों और भैंसों का गर्भाधान

प्रकृति ने संसार के प्राणीमात्र में नर और मादा दो वर्गों की संरचना की है। इन्हीं के संयोग से सृष्टि का क्रम चलता है। इसे ही पुरुष और प्रकृति के नाम से अभिहित किया जाता है। नर और मादा में संगम की प्रवृत्ति स्वाभाविक और

प्रकृतिप्रदत्त है। इस प्रकार जब नर का वीर्य मादा के रज से आर्तव–डिम्बप्रणाली में संयुक्त होता है, तो उससे एक पिण्ड का निर्माण होता है और उससे ही शिशु का उदय होता है, जो आगे चलकर अपने वर्ग का एक प्राणी बन जाता है।

गायों और भैंसों में सामान्यतः गर्भ का समय २८० दिन या ३०० दिन होता है। गायें और भैंसें जब उठान लेती हैं यानी गर्म होती हैं, तो वे जोरों से चिल्लाती, रंभाती, बार-बार थोड़ा-थोड़ा पेशाब करतीं, पूँछ ऊपर उठातीं और भागने का प्रयत्न करती हैं। ऐसे समय उनकी कामवासना-शांति का उपाय करना चाहिए। गर्भाधान के लिए प्रातः या सायं का समय अधिक उपयुक्त होता है।

शुक्र और रज के संयुक्त होने पर ही नये जीव की उत्पत्ति होती है। यदि वीर्य और रज निर्दोष और सबल रहते हैं तो बच्चा भी नीरोग तथा बलवान पैदा होता है। इसके प्रतिकूल रुग्ण और निर्बल शुक्र तथा रज से रुग्ण और दुर्बल संतान की उत्पत्ति होती है। अतः यदि गाय, भैंस और साँड़ दोनों सबल और स्वस्थ हैं, तो उनके बच्चे भी स्वस्थ होते हैं। अतः उत्तम नस्ल के लिए गाय-भैंस का संगम उन्नत नस्ल के बलवान साँड़ से ही कराना चाहिए।

कृत्रिम गर्भाधान

अब अतिहिमकृत वीर्य द्वारा भी गर्भाधान मुख्य-मुख्य पशु चिकित्सालय पर उपलब्ध है।

अमेरिका और यूरोप में गायों और भैंसों के गर्भाधान के लिए Artificial Insemination (आर्टिफिशल इन्सेमिनेशन-कृत्रिम गर्भाधान) की विधि बहुत दिनों से प्रचलित है। अब भारत में भी वेटनरी कालेज—मथुरा, पटना, कलकत्ता, बंगलौर, मद्रास इत्यादि में इसके सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसंधान करने के पश्चात् सफलता मिल चुकी है। अब यह विधि प्रायः प्रत्येक पशु-चिकित्सालय में उपलब्ध है। इसमें नर पशु के सुरक्षित वीर्य को पिचकारी द्वारा गाय-भैंस के गर्भाशय में प्रविष्ट कर उनका गर्भाधान कर दिया जाता है। इस क्रिया से उन्नत नस्ल उत्पन्न करना सरल हो गया है। देखा जाता है कि कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न बच्चे सबल, स्वस्थ और उन्नत नस्ल के होते हैं।

चाहे साँड़ द्वारा गर्भाधान कराया गया हो या कृत्रिम ढंग से, गर्भाधान के बाद पशु को दौड़ना नहीं चाहिए और उसे नदी या तालाब में नहला देना चाहिए। देहातों में यह प्रथा प्रचलित है कि गर्भाधान के बाद नहलाकर भैंस के पुट्ठों पर पूँछ के ऊपर दो ओर गीली मिट्टी थोप दी जाती है। अनुभवी पशुपालकों की धारणा है कि ऐसा करने से भैंस के उलटने या गर्भस्राव होने का भय नहीं रहता।

गर्भिणी होने में विलम्ब

कुछ गायें प्रतिवर्ष नियमित रूप से बच्चा देती हैं और कुछ गर्भधारण में बहुत विलम्ब करती हैं। कभी-कभी तो गाभिन होने में दो-ढाई वर्ष का समय लग जाता है। प्रतिवर्ष व्यानीवाली गायें दूध की दृष्टि से अधिक लाभप्रद होती हैं। इसके विपरीत विलम्ब से गाभिन होनेवाली गायें आर्थिक दृष्टि से हानिकर होती हैं; क्योंकि उन्हें कई महीने तक खिलाना-पिलाना पड़ता है। प्रतिवर्ष बच्चा देनेवाली गायें साल के अधिकांश समय में दूध देती रहती हैं। उनके चारा-दाना में जो व्यय होता है, उसकी पूर्ति होती रहती है। अतः गायों को समय पर गर्भधारण कराने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

अधिक दाना-खली पानेवाली गायें प्रायः आवश्यकता से अधिक स्थूल और मांसल हो जाती हैं, जिससे गर्माने के बाद गर्भाधान कराने पर भी उनको गर्भ नहीं ठहरता। इसके विपरीत पर्याप्त पोषक चारा-दाना न पाने के कारण कुछ गायें इतनी दुर्बल हो जाती हैं कि उनमें उत्तेजना का ही अभाव हो जाता है। ऐसी दशाओं में मोटी-मांसल और चर्बी के कारण गर्भवती न होनेवाली गायों के दाना-खली आदि में कमी कर देनी चाहिए और दुर्बलता के कारण गाभिन न होनेवाली गायों को पर्याप्त पोषक आहार देकर स्वस्थ-सबल बना देने से वे गर्माकर गाभिन हो जायेंगी। ऐसी निर्बल गायों को सरसों की खली और दला हुआ चना भिगोकर खिलाना चाहिए। वसन्त ऋतु—फागुन-चैत में स्वेच्छापूर्वक चरती-विचरती गाय हरी घास चरने से और बैलों के सम्पर्क से अवश्य उत्तेजित हो जाती है। इसके अतिरिक्त गायों को गर्माने के लिए पशु-चिकित्सालयों में एक विशेष प्रकार का इन्जेक्शन भी लगाया जाता है। 'इंडियन हर्बस रिसर्च एण्ड सप्लाई कम्पनी'

द्वारा निर्मित 'प्रजना' नामक औषधि के २-३ कैप्सूल गुड़ के अन्दर रखकर लगानार तीन दिन तक पशु को निगलवा देने से पशु में गर्मी (कामोत्तेजना) उत्पन्न हो जाती है और गर्भाधान कराने पर गर्भ ठहर जाता है। कुछ अनुभवी और परम्परागत पशुपालकों का कथन है कि गाय-भैंस के व्याने बाद शीघ्र ही उसकी खेड़ी (आँवल) गिरने से पूर्व ही यदि उसे उर्द के ४-५ बड़े खिला दिये जायँ तो गाय-भैंस उचित परिमाण में दूध देतीं और साल के भीतर ही गर्भवती होनेवाली हो जाती हैं।

गाभिन पशु की देखभाल

गाय का गर्भकाल औसतन २८५ दिन या ९ माह से कुछ दिन ऊपर तथा भैंस का गर्भकाल औसतन ३१० दिन का होता है। यह समय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। इस बीच यदि कुछ प्रमाद, भूल या कुपथ्य हो गया तो उसका दुष्प्रभाव गाभिन पशु और उसके गर्भस्थ बच्चे पर पड़ता है। अतः इस समय गाभिन पशु की देखभाल में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। इसलिए इस सम्बन्ध की ज्ञातव्य बात जान लेना चाहिए। गाभिन पशु के गाभिन होने की तारीख नोट कर लेना चाहिए, जिससे इस बात का अनुमान लग सके कि पशु किस महीने की किस तारीख के लगभग बच्चे को जन्म देगा।

गर्भवती पशु को अपने शरीर-पोषण के साथ ही गर्भस्थ शावक के शरीर-पोषण और विकास के लिए पर्याप्त पोषण-तत्त्वों की आवश्यकता होती है, अतः पोषक तत्त्वों से परिपूर्ण समुचित आहार देना चाहिए। प्रसवकाल से एक-दो माह पूर्व दाना तथा खली की मात्रा पहले से बढ़ा देना चाहिए और उसे उत्तम प्रकार का अच्छा रुचिकर चारा और उसके साथ गेहूँ का चोकर, दला और भिगोया हुआ चना तथा मूँगफली या अलसी या सोयाबीन की खली देनी चाहिए। व्याने के कुछ दिन पहले ही पशु को हल्का, सुपाच्य तथा कुछ पौष्टिक आहार जैसे—गेहूँ का चोकर, हरी घास, दलिया आदि तथा व्याने के पश्चात् भी कुछ दिनों तक ऐसा ही सुपाच्य चारा देना

चाहिए। गाभिन पशु से विनम्रता, दया और स्नेह-सद्भावपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। उसे मारना न चाहिए और न डंडा मारकर दौड़ाना चाहिए। गाभिन पशु तो सुवह-शाम घण्टे-दो घण्टे घुमाना-टहलाना या चरने के लिए छोड़ देना चाहिए। उसे लड़ाकू-मरकहे पशु के साथ चरने के लिए न छोड़ना चाहिए, न उसके पास बाँधना चाहिए। यदि गाभिन पशु दूध देता है तो व्याने के महीने-डेढ़ महीना पहले से ही उससे दूध लेना बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि इसका दुष्प्रभाव गर्भस्थ बच्चे पर पड़ता है। प्रसवकाल निकट आ जाने पर दूध देने-वाली गाय या भैंस के दूध में खारापन आ जाता है। जिन गाय-भैसों के गर्भपात हो चुके हों उनके साथ गाभिन पशु को न रखें।

प्रसवकाल के निर्देश

प्रसव-समय गाभिन पशु को स्वच्छ, एकान्त और सुखदायी स्थान पर रखें और उसके स्थान पर सूखा पयाल या सूखी मुलायम घास बिछा दें। व्याने की क्रिया सहज-स्वाभाविक रीति से होने दें, उसके साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ न करें। उसके व्याने के समय लड़कों को न इकट्ठा होने दें। यदि व्याने में कुछ कठिनाई हो तो पशु-चिकित्सक, अगर पशु-चिकित्सक अनुपलब्ध हो तो किसी अच्छे अनुभवी पशु-जानकार से सहायता लें। पशु के व्याने के पश्चात शीघ्र ही उसके बच्चे की ओर ध्यान दें। हल्के गर्म पानी में टाट या कपड़ा भिगोकर बच्चे की आँख, नाक, कान, मुँह और फिर सारे शरीर को पोंछ दें। सामान्यतः गाय-भैंस व्याने के बाद अपने बच्चे को जीभ से ही चाट-चाटकर साफ कर देती हैं। किन्तु यदि पशु स्वतः बच्चे को न चाटे तो उसके ऊपर पिसा हुआ थोड़ा-सा नमक भुरक दें, इसके स्थान पर जेनहीपन वायलेट लगाना चाहिए। इससे पशु तुरन्त ही बच्चे को चाटने लगेगा। बच्चे को साफ करने के बाद उसे सूखे मुलायम पुआल या घासपर माँ के आगे बैठा दें। बच्चे की नाल को एक इञ्च ऊपर से बाँधकर नाभि से आधा इंच ऊपर काट दें और फिर वहाँ डेटॉल या टिंचर आयडीन लगा दें। व्याने के बाद पशु की खेड़ी (जेर, आँवल) सामान्यतः घण्टे-दो घण्टे के अन्दर ही गिर जाती है।

अतः खेड़ी गिरने तक निरन्तर व्याये पशु के पास ही रहें। खेड़ी गिर जाने पर उसे फौरन ही हटा दें। गाय खेड़ी खा सकती है। यदि वह खेड़ी खा ले तो उसके बीमार हो जाने, यहाँ तक कि मर जाने की आशंका रहती है। सामान्यतः जेर अधिक से अधिक ४-५ घण्टे के अन्दर ही गिर जाती है और कभी-कभी २४ घण्टे का भी समय लग जाता है। आँवल जल्दी गिराने के लिए बहुत-से अनुभवी पशुपालक धान या बाँस की हरी पत्तियाँ खिलाते हैं। यदि जेर २४ घण्टे के अन्दर न गिरे और योनि से दुर्गन्धित स्राव निकलता रहे तो ऐसी दशा में शीघ्र ही पशु-चिकित्सक या किसी अनुभवी और जानकार पशुपालक की सहायता लें।

व्याने के समय गाय, भैंस आदि पशुओं के शरीर में बहुत खिचाव-तनाव और जोर पड़ता है, जिससे उसे कुछ पीड़ा और दुर्बलता रहती है। अतः प्रसवान्तर पशु को हल्दी, सोंठ, गुड़ मिलाकर गेहूँ, जौ या बाजरे की दलिया एक-दो घण्टे बाद ही दें। पकी हुई अरहर की दाल देना भी गुणकारी है। बच्चा देने से कुछ दिन पूर्व से और बच्चा देने के कुछ दिन बाद तक गाय-भैंस के पुट्ठों, पूँछ और जननेन्द्रिय आदि अंगों को पोटाशियम परमैंगनेट (लाल दवा) या डेटॉल का पानी में हल्का घोल बनाकर धो देना चाहिए। व्याये पशु के बाँधने के स्थान पर सीलन-कीचड़ बिल्कुल न होना चाहिए।

पशु के व्याने के बाद प्रति बार दूध दुहने से पूर्व उसके अयन और थनों पर कपूर मिलाये हुए तेल से हल्के हाथों से मालिश करनी चाहिए। इससे अयन का तनाव दूर हो जाता है और अयन से दूध का संचार बढ़ जाता है। व्याने के दो-तीन दिनतक आनेवाले दूध को खीस या तेली कहते हैं। नवजात बच्चे के लिए यह खीस एक प्राकृतिक और संतुलित आहार है, जो कुछ विरेचक और खनिज तत्वों से युक्त होता है, जिससे उसका पेट साफ होता और बलवर्द्धन होता है। बच्चे के दूध पीने के पहले पशु-अयन और थनों को भली प्रकार धो दें और सूख जाने पर ही बच्चे को पीने दें।

दुग्ध-दोहन

जो लोग दुग्धदोहन-कला नहीं जानते, उनके लिए यह एक समस्या है। प्रयास और अभ्यास से कोई कार्य असाध्य नहीं होता। आधुनिक युग में विदेशों में और अब भारत में भी बड़े-बड़े डेरी फार्मों में दूध दुहने के लिए मशीन का प्रयोग होने लगा है। किन्तु यह सर्वसामान्य के लिए सुलभ नहीं है। देहात के किसानों की औरतें और १२-१४ वर्ष के लड़के-लड़कियां बड़ी सुगमता से गायों-भैंसों को दुह लेती हैं। गायों-भैंस। के दुहने का सर्वोत्तम समय प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व और सायंकाल सूर्यास्त के समय होता है। नित्य ठीक और निश्चित समय पर दूध दुहने से दुधारू पशु के शरीरान्तर्गत रस-निर्माण प्रक्रिया सम्यक् रूप से संचालित रहेगी और कोई व्यतिक्रम न होगा तथा पशु नियमित मात्रा में दूध देता रहेगा। अतः नित्य नियमित समय पर दूध दुहें। दूध दुहने के पूर्व हाथ धोकर भलीभाँति पोंछ लें। दुहते समय हाथों में नमी न रहे। दूध जल्दी और कोमलता से दुहें। जल्दी दुहने से दूध १०-१२ प्रतिशत अधिक मिल सकता है। दूध दुहते समय हथेली और अँगूठा न लगायें। इससे स्तन में खरोंच लगने का डर रहता है। थन खींचकर दूध न निकालें। स्वच्छ वर्तन में दूध दुहें। ठंडे पानी से बर्तन को धोने के बाद तब विम या विझ या सर्फ अथवा सोडा और साबुन का चूरा मिलाकर बर्तन को भलीभाँति माँजने के बाद खूब गर्म पानी से बर्तन को धो लें। गाय दुहने के पहले गाय के थनों को हल्के गरम पानी से सफाई करके उसमें कोई चिकना पदार्थ जैसे—घी, मक्खन, वैसलीन इत्यादि लगा देना चाहिए। गौदोहक को अपने मधुर व्यवहार से गाय को अपने विश्वास में लेना भी आवश्यक है। घुड़कने, मारने या गलत ढंग से दुहने पर खरोंच लग जाने पर गाय के विदक जाने का भय रहता है।

पशु-शावकों की देखभाल

छोटे बछड़ों-बछियों, पड़वे-पड़ियों को दूसरे पशुओं से बचाये रखें। उन्हें सर्दी, तेज धूप और बरसात के पानी में भीगने से बचायें। उनके बाँधने

के स्थान पर सूखा पुआल बिछाकर जगह को मुलायम रखें। बीच-बीच में कीटाणुनाशक दवाएँ छिड़कते रहें। यह भी देखते रहें कि उसके शरीर पर जूयें या किलनियाँ तो नहीं लग गयीं। बच्चे जब आठ-दस दिन के हो जायें तो उन्हें कुछ दूर घूमने, उछलने-कूदने को छोड़ दें। इससे उनका व्यायाम हो जायगा और वे फुर्तीले तथा प्रसन्न रहेंगे। दूध की लालच में अधिक दूध न दुह लें कि बच्चे भूखे रहकर दुर्बल हो जायें। एक महीने बाद उन्हें तवे पर की हल्की सिंकी हुई मोटी रोटी उनका मुँह फैलाकर खिलायें। दो-चार दिन में वे स्वयं रोटी खाने लगेंगे। डेढ़-दो महीने बाद हरी-मुलायम घास-पत्तियाँ उनके आगे डालकर उन्हें चारा खाना खिलायें। इस बात का ध्यान रखें कि पशु-शावक मिट्टी तो नहीं खाते। प्रायः वे मिट्टी या पास में मिल जाने पर कपड़ा-टाट आदि चबाने लगते हैं। इससे उनके रुग्ण हो जाने का भय रहता है।

———

गोदुग्ध के गुण

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्ण पिच्छिलम्।
गुरु मंदं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥
तदेवं गुणमेवौजः सामान्यादभिवर्द्धयेत्।
प्रवरं जीवनीयानां क्षीरयुक्तं रसायनम्॥

—चरक सू० अ० २७

चरक के अनुसार :गोदुग्ध मधुर, शीतल, कोमलता उत्पन्न करनेवाला, स्निग्ध, बहल (घना, स्थूलता लानेवाला), श्लक्ष्ण (चिकना), गुरु, मन्द (शरीर में स्थायित्व लानेवाला) तथा प्रसन्नता देनेवाला है। इस प्रकार गो-दुग्ध में दश गुण हैं। यही दश गुण ओज में हैं, अतः "सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धि कारणम्"—इस नियम के अनुसार गो-दुग्ध ओज बढ़ाता है। यह जीवनीय द्रव्यों में सबसे श्रेष्ठ जीवनीय और रसायन है।

गोदुग्ध में अलब्यूमिन (एक प्रकार की शर्करा) ४ प्रतिशत, स्नेहन ४ प्रतिशत, शर्करा (दुग्ध शर्करा) ५ प्रतिशत, अन्य खनिज लवण १ प्रतिशत और जल ८६ प्रतिशत होता है।

इसके अतिरिक्त गो-दुग्ध स्तन्य (दुग्धवर्द्धक), वात, पित्तदोषनाशक तथा विकारों को दूर करनेवाला, वृद्धत्वनाशक और रोगों को दूर भगानेवाला होता है।

डॉ० के० एम० नादकणी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "इन्डियन मैटेरिया मेडिका" में गाय के दूध के गुण-वर्णन करते हुए लिखा है—

"शरीर की अस्थियों, नाड़ियों (वातनाड़ी संस्थान), मांसपेशियों तथा अन्य तन्तुओं को पुष्ट करने तथा वृद्धि के लिए जिन-जिन उपादानों की आवश्यकता होती है, वे सब-के-सब गो-दुग्ध में विद्यमान हैं। गो-दुग्ध में वे विटामिन (जीवनीय तत्त्व) भी उपस्थित हैं जो बालकों के रिकेट्स (Rickets—अस्थिक्षय), शोष (Marasmus) और उन रोगों की जो पोषण के अभाव से होते हैं। प्रकृतिप्रदत्त औषध हैं।"

गो-दुग्ध में प्रति १०० ग्राम में १८० I. U. विटामिन ए, प्रति १०० ग्राम में २५१ मि० ग्रा० विटामिन बी० और २ मि० ग्रा० विटामिन सी होता है। इनके अतिरिक्त गो-दुग्ध में कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैग्नीशियम आदि खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

गाय के रंग-भेद से उनके दूधों के गुणों में अन्तर होता है। काली गाय का दूध सर्वोत्तम होता है, जैसा कि योगरत्नावली का कथन है—"कृष्ण गव्यावरं क्षीरं वात-पित्त-कफ प्रणुत"—अर्थात् काली गाय का दूध श्रेष्ठ होता है। वात, पित्त, कफ तीनों दोषों को शान्त करता है। पीली गाय का दूध—"पीतायां वात पित्तघ्नं"—अर्थात् पीली गाय का दूध वायु तथा पित्त दोनों को शान्त करता है।

लाल गाय का दूध—"रक्तायावातहृत्परम चित्रायास्तद्वदाख्यातं"—अर्थात् लाल तथा चितकबरी गाय का दूध वायु को शान्त करने में सर्वश्रेष्ठ है। सफेद गाय का दूध—"श्वेतायाः श्लेष्मलं गुरु"—अर्थात् सफेद गाय का दूध कफकारक तथा भारी होता है। मृतवत्सा गाय का दूध—"वालवत्सा विवत्सानां गवांक्षीरं त्रिदोष कृत" अर्थात् जिस गाय का बछड़ा मर गया है—उसका दूध वायु, पित्त, कफ तीनों को कुपित करता है। अधिक दिन की व्यायी हुई गाय का दूध तीनों दोषों को शान्त करता है, तर्पण (मन को सन्तुष्ट करनेवाला) तथा बलवर्द्धक होता है।

गाय का धारोष्ण दूध वायु को शान्त करता तथा पुष्टि देता है। पाण्डु-कामला नष्ट करता और ओज को बढ़ाता है। सारे शरीर की दाह तथा हाथ-पैर और नेत्रों की जलन, पित्त की अधिकता, रक्तदोष, अजीर्णजन्य दुर्बलता तथा अन्य असाध्य रोगों को नाश करता है। उबला हुआ गरम-गरम गाय का दूध कफ, वायु को शान्त करता है और उबालकर ठंडा किया हुआ दूध पित्त को शान्त करता है। आधा दूध तथा आधा पानी मिलाकर उबाला हुआ दूध कच्चे दूध से हल्का तथा लाभकारी होता है। रात को सेवन किया हुआ दूध बच्चों की क्षुधा को बढ़ाता है, क्षय रोगी को बल देता है, वृद्ध मनुष्य को वीर्य प्रदान करता है तथा अनेक दोषों को शान्त करता है। अतः सदैव सोते समय दूध पीना चाहिए।

रात को पशु बैठे रहते हैं। अतः उनका दूध जो प्रातःकाल दुहा जाता है, भारी होता है। इसके विपरीत दिन में चलते-फिरते रहने के कारण सायंकाल पचने में हल्का होता है।

जीर्ण ज्वर, मनोरोग (अपस्मार, उन्माद हिस्टीरिया, स्मरणशक्ति की कमी), शोष, (सूखा या क्षय), मूर्छा, भ्रम, ग्रहणी, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, हृद्रोग तथा गर्भस्राव- इन सब अवस्थाओं में नित्य गो-दुग्ध हितकारी है। बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण (चोट लगने से अधिक रक्तस्राव होने के कारण निर्बल), भूख तथा स्त्री-प्रसंग से दुर्बल हुए मनुष्यों के लिए भी गो-दुग्ध सदा अत्यन्त हितकारी है।

कुछ देर का दुहा हुआ दूध कभी भी कच्चा न पीना चाहिए। किन्तु दो-तीन उबाल से अधिक देरतक पकाकर गाढ़ा किया हुआ दूध गुरुपाक होता है। दूध को नमक, पिट्ठो की बनी हुई वस्तुओं जैसे बड़ा-भुंगौरा अथवा कचौड़ी, आसव-अरिष्ट, सिरका, मूँग, तुरई, आलू-घुइयाँ, रतालू, मूली, गाजर और खट्टे फलों के साथ कदापि न पीना चाहिए। लहसुन के साथ भी दूध संयोग-विरुद्ध है।

शीत तथा जुकाम की अवस्था के अतिरिक्त धारोष्ण दूध बलवर्द्धक, लघुपाक, शीतल होता है। मक्खन निकाला हुआ (सपरेटा) दूध दुर्बल बालकों तथा वृद्धों के लिए बहुत गुणकारी होने के साथ ही त्रिदोषनाशक है। कम आहार करने वाली गाय का दूध कफकारी, गुरुपाक किन्तु पुष्टिकर होता है। अधिक मात्रा में घास और हरा चारा खाने वाली गाय का दूध हितकर और सर्वगुणसम्पन्न होता है। चरने का अवसर न पाने वाली और सदैव बँधी रहनेवाली गाय का दूध उतना गुणकारी नहीं होता। औंटाकर गाढ़ा बनाया हुआ दूध यद्यपि अधिक स्वादिष्ट और पौष्टिक होता है, किन्तु वह स्वस्थ-सबल और परिश्रमी लोगों के लिए ही उपयुक्त होता है। प्रातःकाल खाली पेट गो-दुग्ध का सेवन करने से अनेक लाभ हैं, किन्तु वह कुछ गुरुपाक होता है। गोदुग्ध के लिए आयुर्वेद का कथन है—'अमृतं क्षीर भोजनम्'।

भैंस का दूध—महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः।

स्नेहान्यन हितमत्यग्नये च तत् ॥

—चरक सू० अ० २७

भैंस का दूध गौ के दूध की अपेक्षा भारी और शीतल होता है। इसमें स्नेह (घी) भी अधिक होता है। यह निद्राजनक होता है। जिसकी जठराग्नि तीव्र हो उसको पीना चाहिए।

भैंस के दूध में प्रतिशत कार्बोज ५·१, प्रोटीन ४·३, स्नेह ८·८, प्रतिऔंस ३३ कैलोरी, प्रति १०० ग्राम में १६२ I. U. विटामिन ए, प्रति १०० ग्राम में १४० मि० ग्रा० विटामिन बी० और अल्पमात्रा में विटामिन सी होता है।

बकरी का दूध—'छाने कषाये मधुरं..........बकरी का दूध कषाय, मधुर, शीतल, संग्राही, हल्का और रक्तपित्त, क्षय, कास, अतिसार तथा ज्वर का नाशक होता है।

बकरी के दूध में प्रतिशत ४·७ श्वेतसार, ३·७ प्रोटीन, ५·६ वसा, प्रति १०० ग्राम में १८२ I. U. विटामिन ए०, प्रति १०० ग्राम में ४० मि० ग्रा० विटामिन बी०, कुछ विटामिन सी, और कई खनिज लवण होते हैं।

घोड़ी, गधी का दूध—"बल्यं स्थैर्यकरं सर्वयुष्णं......." एक सुमवाले सब पशुओं का दूध बलकारक, स्थिरता व दृढ़ताकारक, गरम, थोड़ा खट्टा और नमकीन, रूखा तथा शाखागत वात को हरनेवाला होता है। शाखा से रक्त आदि धातुओं तथा त्वचा अथवा बाहु और टाँगों को ग्रहण करना चाहिए।

भेड़ का दूध हिचकी और श्वास उत्पन्न करनेवाला, गरम तथा पित्त-कफ को बढ़ानेवाला होता है। हथिनी का दूध बलकारक, भारी तथा शरीर को अत्यन्त दृढ़ करनेवाला होता है।

ऊँटनी का दूध—"रूक्षणोणं क्षीर मुष्ट्रीणाभीषत्स लवणं लघु, शस्तं वात....." अर्थात् ऊँटनी का दूध रूक्ष, गर्म, किंचित् नमकीन, हल्का होता है। यह वात-कफजन्य आनाह, कृमि-रोग, शोथ, उदररोग तथा अर्श के रोगियों के लिए हितकर है। ऊँटनी का दूध जलोदर रोग की महौषधि है।

पालतू पशुओं की जातियाँ :—

गाय

गाय भारत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सर्वप्रवर पशु है। हिन्दू गाय को माता के समान पूजनीय मानते और उसे सम्मान तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखते और पालते आये हैं। गाय का दूध अन्य सभी पशुओं के दूध से सर्वोपरि, पौष्टिक तत्त्वों से परिपूर्ण, शीघ्र पचनेवाला, सुस्वादु तथा आबाल, वृद्ध, वनिता सभी के लिए उपयोगी और अतिशय लाभदायी होता है। इसके अतिरिक्त गायों की सन्तान बैलों पर ही कृषि तथा ग्राम्य किसानों की संचार-व्यवस्था आधारित है।

स्थान-भेद से गायों की बहुत-सी जातियाँ मिलती हैं। भारत में पायी जानेवाली गायों की २६ प्रमुख जातियाँ हैं, जो कि अपने-अपने क्षेत्र की जलवायु, वातावरण तथा अन्य विशेषताओं के अनुसार होती हैं। गायों की जातियाँ इस प्रकार हैं— कांकरेज, हिसार, हरियाणा, कंवार या कनठा, खीरीगढ़, मालवी, थरपारकर, वाघड़, लाल सिंधी, कृष्णा घाटीवाली, मेवाती, नागौरी, रथ, देवनी, राठ, गीर, साहीवाल, हल्लीकर, आलमवादी, अमृत महल, बारगुल, कांगायन, खिल्लारी, बचौर डांगी, खिलाड़ी, गावलाओं, आंगोल, निमाड़ी, सिरी इत्यादि। इनके सिवा सीटी पहाड़ी, पवाँर आदि अन्य जाति की कई प्रकार की होती हैं, किन्तु डील-डौल, स्वल्प परिमाण में दूध देने के कारण वे महत्वहीन हैं। कुछ जातियों की गायें उचित और अनुकूल व्यवस्था करने पर अपने मूल स्थानों के अतिरिक्त देश भर में पाली जा सकता है और कुछ ऐसी हैं, जो अपने मूल स्थान के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं पाली जा सकतीं।

मनुष्य की ही भाँति पशुओं की भी स्वस्थता-सबलता और दुर्बलता जलवायु पर निर्भर करती है। शुष्क क्षेत्रों के पशु अधिक वर्षा और नमीवाले या पर्वतीय क्षेत्रों के पशुओं की अपेक्षा अधिक अच्छे और सबल होते हैं। इसी से पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश के मैदानी क्षेत्रों के पशु उत्तम वंश के और आकार-प्रकार, दुग्ध-उत्पादन और बल में अधिक उत्तम होते हैं। जबकि बंगाल, बिहार, उड़ीसा, असम, केरल और पहाड़ी क्षेत्रों के पशु छोटे आकार के, अनुन्नत और कम मात्रा में दूध देने वाले होते हैं। अधिक दूध की दृष्टि से साहीवाल, सिंधी, थरपारकर, हरियाणा, गीर आदि जातियाँ श्रेष्ठ हैं, किन्तु इन गायों के बैल कुछ सुस्त होते हैं। दूध और बैल दोनों दृष्टियों से थरपार, कांकरेज, हरियाणा, देवनी और ओंगोल नस्ल की गायें सर्वोत्तम होती हैं। शेष अन्य जातियाँ केवल उपयोगी बैल देने की दृष्टि से ही ठीक हैं। यहाँ पर कुछ उन्नत और उपयोगी नस्ल की गायों का परिचय दिया जा रहा है, जिससे पालनेयोग्य गायों का चुनाव या निश्चय करने में सहायता मिल सकती है।

हरियाणा गाय—इस जाति की गायें पंजाब और हरियाणा में पायी जाती हैं। ये ऊँचे डील-डौल की प्रायः सफेद रंग और कोई-कोई भूरे रंग की होती हैं। सींगें छोटी और समान ढंग की सुन्दर होती हैं। पूँछ लम्बी और पतली होती है। प्रचुर परिमाण में दूध देने के साथ ही इससे पैदा होनेवाले बैल भी ऊँचे डील-डौल के, अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट, बलवान, अधिक भारवाही, चुस्त और फुर्तीले होते हैं। यह एक श्रेष्ठ जाति की गाय है। इस जाति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अन्य प्रान्तों में भी लाभदायक ढंग से पाली जा सकती हैं।

साहीवाल या सिंधी गाय—इस जाति की गायें प्रायः लाल रंग की, कोई-कोई चित्तीदार, हृष्ट-पुष्ट, भारी डील-डौल की, पीछे मुड़ी हुई मोटी सींगोंवाली होती हैं। इस जाति की गायें प्रायः सभी जाति की गायों से अधिक दूध देनेवाली होती हैं। वे कुछ सुस्त प्रकृति की होती हैं।

गीर—इस जाति की गायें प्रायः काठियावाड़, राजस्थान तथा महाराष्ट्र के उत्तरी भाग में होती हैं। ये गायें डील-डौल में बहुत भारी किन्तु सुस्त प्रकृति की होती हैं। साहीवाल की तरह इनकी सींगें भी पीछे मुड़ी हुईं, पर उनसे बड़ी होती हैं। दूध देने में ये सर्वोपरि हैं। इनसे उत्पन्न बैल आकार में बहुत बड़े, बलवान, भारवाही, किन्तु सुस्त और मंद गतिवाले होते हैं।

देवनी—इस जाति की गायें दक्षिण भारत में हैदराबाद के आसपास पायी जाती हैं। ये गायें गीर तथा डाँगी जाति की गायों से मिलती-जुलती होती हैं। यह प्रायः काले रंग की और यदा-कदा सफेद और लाल रंगों की भी मिलती हैं। दक्षिण भारत की यह सबसे अधिक दूध देनेवाली गायें होती हैं।

काकरेज—इस जाति की गायें अहमदाबाद, कच्छ, केरल के दक्षिणी-पूर्वी भाग, पूर्व में देसाते, पश्चिम में राधनपुर के क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इनका माथा चौड़ा और चपटा, सींगें मुड़ी हुईं और भूरे रंग की होती हैं। दुग्ध-उत्पादन की दृष्टि से औसत दर्जे की होती हैं। इनके बैल बहुत तेज, सबल, चुस्त और भारवाही होते हैं।

इनके अतिरिक्त दक्षिण भारत के जिला-गंटूर क्षेत्र में पायी जानेवाली ऑंगोल और कोयम्बटूर जिले में पायी जानेवाली कांगायम जाति की गायें औसत दर्जे प्रतिदिन ५-६ किलोग्राम दूध देनेवाली होती हैं। ऑंगोल जाति के बैल चलने में सुस्त किन्तु अधिक भारवाहक तथा कांगायम के बैल औसत डील-डौल वाले, बलवान, चुस्त, फुर्तीले और उत्तम भारवाही होते हैं।

दुग्ध-उत्पादन की दृष्टि से उपरोक्त जातियों की गायें ही उत्तम हैं। अन्य जातियों की गायें केवल बैल उत्पन्न करने की ही दृष्टि से उपयोगी हैं, दूध के व्यवसायिक दृष्टिकोण से नहीं। हिसार (हरियाणा), केनपरिया उत्तर प्रदेश के बांदा जिले की, खेरीगढ़ जिला-लखीमपुर खीरी (उत्तर प्रदेश), बछौर जिला—सीतामढ़ी (बिहार), मेवाती—भरतपुर, अलवर (राजस्थान), डाँभी (बम्बई), नासिक, अहमदनगर में, खिल्लारी दक्षिणी महाराष्ट्र के क्षेत्रों में पाई जानेवाली औसत दर्जे की दूध देनेवाली गायों के बैल हलकर्षक और भारवाही होते हैं।

गायों-बैलों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के जिज्ञासु पाठक पिछले पृष्ठों में लिखित सरकारी फार्मों तथा अनुसंधानकेन्द्रों से सम्पर्क कर जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

भैंस

भैंस दुधारू पशु-वर्ग का महत्त्वपूर्ण प्राणी है। यद्यपि गुणों की दृष्टि से गाय का दूध सर्वोत्तम होता है, किन्तु गायें उतने अधिक परिमाण में दूध नहीं देतीं, जितना कि भैंसें। अतः दूध देनेवाले पशुओं में भैंस का ही प्रथम स्थान है। देश के पुष्टिकर आहार की पूर्ति सर्वाधिक भैंस से ही होती है। मक्खन, घी, मलाई, रबड़ी आदि के लिए भैंस का ही दूध अधिक उपयुक्त होता है। भैंस का दूध यद्यपि बालकों को भारी और दुष्पाच्य होता है और गाय के दूध के समान लाभप्रद नहीं होता तथापि कुछ पानी मिलाकर एक-दो उबाल आने पर बच्चों को भी भैंस का दूध दिया जा सकता है। भैंस का दूध कुछ दुर्जर किन्तु बलबर्द्धक होता है। स्वस्थ-सबल अच्छी पाचन-शक्ति वाले तरुणों के लिए भैंस का दूध उत्तम पौष्टिक आहार

हैं। गुणों की दृष्टि से भैंस का दूध गाय के दूध से हीन भले ही हो, किन्तु स्वाद की दृष्टि से भैंस का दूध अधिक सुस्वादु और रुचिकर होता है। भैंस के ही दूध का ही अधिक समय तक सेवन करनेवाले बहुत-से लोगों को तो गाय का दूध रुचिकर नहीं लगता।

भैंसों से उत्पन्न होनेवाले कटरे (भैंसे) बैलों की अपेक्षा अधिक बलवान, सहिष्णु और भारवाही होते हैं, किन्तु वे सुस्त और मंदगामी होते हैं। इसीलिए बैलों की तुलना में निकृष्ट माने जाते हैं। तथापि बहुत-से किसान जिनकी आर्थिक दशा कम अच्छी होती है, भैंसों से ही हल जोतने का काम लेते हैं। भैंसे रख-रखाव और चारे-दाने की भी दृष्टि से सुविधाजनक होते हैं और मोटा-झोटा हर प्रकार का चारा चबाकर मस्त रहते हैं। धान लगानेवाले खेत पानी से भरे रहते हैं, उन्हें जोतने में भैंसे अधिक उपयुक्त होते हैं। हाँ, तेज धूप में भैंसे अधिकतर काम नहीं कर सकते, गर्मी से हाँफने लगते हैं। भैंस भी गाय की अपेक्षा अधिक बलवान, आकार-प्रकार में भारी किन्तु सुस्त होती है। भैंस के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा करीब दुगुनी चिकनाई होती है, अतः घी-उत्पादक पशुपालक और डेरी-उद्योग के लिए भैंसें ही अधिक पाली जाती हैं।

भैंसों की जातियाँ

जातिभेद और स्थान-भेद से कुछ भैंसें बहुत बड़े डील-डौल की और कुछ छोटी होती हैं। इनकी पहचान विशेषकर सींगों से होती है। कुछ भैंसों की सींगें मुड़ी हुई और छोटी होती हैं। जैसे—मुर्रा भैंसों की। कुछ भैंसों की सींगें बहुत बड़ी और फैली हुई होती हैं। मुर्रा भैंसें बहुत अधिक दूध देती हैं। दूसरी जातियों में भी कई भेद हैं। उनके आकार-प्रकार और दूध की मात्रा में अन्तर होता है। हमारे देश में भैंसों की ६ प्रमुख जातियाँ पायी जाती हैं। प्रमुख ६ नस्लें हैं—१–मुर्रा, २–मेहसाना, ३–नीली रावी, ४–जाफराबादी, ५–सूरती, ६–नागपुरी। भदावर भैंस भी अच्छी होती है।

मुर्रा—इस जाति की भैंस हरियाणा, पूर्वी पंजाब तथा दिल्ली के समीपवर्ती स्थानों में होती हैं। इनका रंग गहरा काला, चमकदार, भारी आकार, कुछ भूरे रंग की और किसी-किसी भैंस में सफेद धब्बे भी पाये जाते हैं। यह भैंस दूध की दृष्टि से सर्वोत्तम होती है। दूध के व्यवसायी इन्हीं भैंसों को ज्यादा पसन्द करते हैं।

मेहसाना—इस जाति की भैंसें बड़ौदा के आसपास पायी जाती हैं। यह भैंस मुर्रा की अपे ा कम दूध देती है। इसकी विशेषता यह है कि यह अन्य भैंसों की अपेक्षा दीर्घ कालतक दूध देती रहती है और नियमित रूप से गाभिन होती रहती है, यही कारण है कि गृहस्थ और डेरीवाले इसे पालना पसन्द करते हैं। यह भैंस डील-डौल में मध्यम, जल्दी जवान हो जानेवाली और दूध की दृष्टि से भी अच्छी होती है।

नीली रावी—यह भैंस मुर्रा भैंस से भी अधिक डील-डौल में भारी होती है और मुर्रा भैंस से भी अधिक मात्रा में दूध देती है। इन भैंसों के शरीर पर काले रंग के सफेद धब्बे भी होते हैं। इनसे उत्पन्न भैंसे बहुत बलशाली और अतिशय भारवाही होते हैं।

जफराबादी—यह भैंस गुजरात के गिरिवन क्षेत्र में पायी जाती है। यह भी विशाल शरीरवाली, चमकदार काले रंग की भैंस होती है। इन भैंसों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि ये रूखा-सूखा चारा खाकर भी स्वस्थ-सबल बनी रहती हैं और फिर भी काफी मात्रा में दूध देती हैं। यदि इन भैंसों को वैज्ञानिक ढंग से तैयार उत्तम पौष्टिक चारा-दाना दिया जाय तो दूध बहुत बढ़ जाता है। व्यवसायिक दृष्टि से यह भैंसें लाभप्रद हैं।

पटनही—ये भैंसें बिहार प्रान्त के पटना के आसपास पाई जाती हैं। इनकी सींगें लम्बी, फैली हुई होतीं और आकार मध्यम प्रकार का होता है। इनके पालन-पोषण में अधिक व्यय नहीं लगता। यह देशी किस्म की भैंस सामान्य चारे-दाने तथा चरने पर पाली जाती है, किन्तु दूध की मात्रा आकार के अनुपात में अधिक होती है। ये कड़ी प्रकृति की होती हैं।

सूरती—इस जाति की भैंसें गुजरात में पायी जाती हैं। यह मध्यम आकार की, सुडौल शरीरवाली, सुगठित, पीठ सीधी और सींग हँसिये की भाँति मुड़े हुए होते हैं। औसत दर्जे दूध भी अच्छा देती हैं।

नागपुरी—इस जाति की भैंसें मध्यभारत में नागपुर के आसपास तथा दक्षिण में पायी जाती हैं। यह छोटे कद की लम्बे, चपटे और टेढ़े सींगोंवाली होती हैं। ये भैंसें दूध तो कम देती हैं; किन्तु घरेलू उपयोग के लिए अच्छी होती हैं। इससे उत्पन्न भैंसे सुस्त किन्तु अच्छे भारवाही होते हैं। इन भैंसों के रख-रखाव में अधिक सावधानी और व्यय की आवश्यकता नहीं होती। इनका दूध पर्याप्त गाढ़ा और मीठा होता है।

रख-रखाव

भैंस का रख-रखाव गाय से भिन्न होता है। भैंस की प्रकृति गर्म होती है, और यह बहुत सुस्त, भोंड़ा और भोंदू प्राणी है। जब किसी मूर्ख या अल्प बुद्धि-वाले को कोई कला, ज्ञान और तत्त्व की बात बताई-सुनाई जाती है और उस-पर ध्यान नहीं देता तो ऐसे अवसर पर देहातों में प्रायः यह लोकोक्ति कही जाती है कि—"भैंस के आगे बीन बाजे, भैंस बैठे पगुराय।" अर्थात् गधे की तरह भैंस भी भोंदू प्राणी माना जाता है। गाय जैसी चंचलता और स्फूर्ति भैंस में नहीं होती। भैंसों का रंग प्रायः काला होता है, इस कारण इसके शरीर में गर्मी की प्रधानता होती है; क्योंकि काले रंग में गर्मी के शोषण का गुण अधिक होता है। जो स्थान गाय के रहने के लिए उपयुक्त होता है, वही भैंस के लिए उपयुक्त नहीं होता। भैंस अपेक्षाकृत ठंडे और नम स्थान को पसन्द करती है। भैंस पानी में तैरने और बैठने में अधिक आनन्दित रहती है। अतः भैंसपालक भैंस को कुछ देर पानी में रखने की व्यवस्था करते हैं। गर्मी और बरसात में मच्छर भैंस को बहुत परेशान करते हैं। अतः नित्य शाम को भैंस के बाँधने के स्थान पर धुआँ कर देना चाहिए या उसके बाँधने के स्थान पर और आस-पास सप्ताह में एक दिन डी० डी० टी० या फिनिट का छिड़काव कर देना चाहिए।

आहार—सामान्यतः भैंस का भी वही आहार है, जो गाय का। किन्तु भैंस के डील-डौल के अनुपात से उसे गाय से लगभग दुगुना चारा आवश्यक होता है। खाली, गाभिन और दूध देने की अवस्था में उसके आहार में परिवर्तन कर देना चाहिए। यों तो हरी घास और हरा चारा देने से सभी दुधारू पशुओं का दूध बढ़ जाता है, किन्तु भैंस को ऐसा चारा देने से उसके दूध में और अधिक वृद्धि हो जाती है और दूध भी अधिक गुणकारी हो जाता है। भैंस को नमक की बहुत आवश्यकता है, अतः उसके चारे में कम से कम ५० ग्राम नमक नित्य मिला देना चाहिए। इसके शेष अन्य सावधानियाँ और रख-रखाव गाय के समान ही रखने की आवश्यकता है।

गर्भधारण में विलम्ब—कुछ भैंसें विशेषकर मुर्रा और मेहसाना भैंसें प्रायः प्रतिवर्ष बच्चा देती हैं और कुछ ही समय सूखी-सूखी रहती हैं, अन्यथा शेष समय में दूध देती रहती हैं। देशी भैंसें प्रायः बहुत दिनों तक गर्भिणी नहीं होतीं, कभी-कभी दो-दो वर्ष तक थोड़ा-बहुत दूध देती रहती हैं। यदि भैंसें दूध देते समय ही—ब्याने से ३ महीने से ६ महीने के अन्दर ही गाभिन हो जायँ, तभी वे लाभप्रद होती हैं। सूखी (ठाँठ) अवस्था में अधिक समय रहने से उनपर किया गया परिश्रम और चारा-दाना देना अखरता है। अतः यदि भैंसें समय से गर्भधारण न करें तो इसके लिए पालक को प्रयास करना चाहिए। पशु-चिकित्सालयों में गर्भाने का उपचार किया जाता है और कृत्रिम गर्भाधान की व्यवस्था है। पहले तो यही प्रयत्न करना चाहिए कि गाय या भैंस स्वाभाविक रूप से गर्भधारण कर ले। एतदर्थ यह उपाय करें—यदि भैंस बहुत मांसल और स्थूल हो गई हो और चर्बी बढ़ जाने से गर्भधारण न करती हो तो उसके आहार की मात्रा घटाकर उसे कुछ दुबली कर देना चाहिए। और यदि भैंस बहुत दुबली और निर्बल है और निर्बलता के कारण उसमें उत्तेजना नहीं होती हो तो उसे पौष्टिक आहार देकर उसकी दुर्बलता दूर करना चाहिए। कुछ अनुभवी पशुपालकों का कथन है कि जब गाय या भैंस बच्चा उत्पन्न कर चुके तो उसी

समय खेड़ी गिरने से पहले ही उसे दस-पाँच उर्द का बड़ा खिला देना चाहिए। इससे वह पूरे समय दूध देने के साथ ही समय से गर्भ भी धारण कर लेगी।

प्रसवकाल की सावधानी— ब्याते समय बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। इस समय की थोड़ी-सी असावधानी से भैंस या गाय का पूरा दुग्ध-काल बिगड़ जाता है। कभी-कभी तो पशु दूध की मात्रा बहुत ही कम कर देता है। इस अवस्था पर अधिक शीत या अधिक धूप का भी दुष्प्रभाव पड़ता है और भैंस शीघ्र रोगग्रस्त हो जाती है। अतः प्रसवकाल में भैंस को निर्वात स्थान पर रखना चाहिए और खेड़ी गिरने तक लगातार उसके पास उपस्थित रहना चाहिए। खेड़ी गिर जाने पर उसे गुड़, सोंठ और हल्दी डालकर पकाई हुई गेहूँ की दलिया पिलाना चाहिए। इससे प्रसव-वेदना से उत्पन्न दुर्बलता और अवसाद दूर होकर किसी रोग में ग्रस्त होने की सम्भावना नहीं रहती।

दूध बढ़ाने के उपाय—यदि भैंस अपने डील-डौल के अनुपात से कम दूध देती है, तो दूध की मात्रा बढ़ाने के लिए निम्नांकित उपचार करना चाहिए—

१—गिलोय या गुरुच दूध बढ़ाने में उपयोगी है। करीब पावभर गिलोय पीस-छानकर दो सेर पानी में आधा सेर गुड़ घोलकर पिलाना चाहिए। शरबत देने का उचित समय दोपहर है। यह प्रयोग ब्याने के एक माह बाद ही करना चाहिए।

२—करीब १०० ग्राम शतावर और ५० ग्राम जीरा भाँलीभति कूट-पीसकर पावभर गुड़ और आधा सेर आटा में सानकर लोई बनाकर एक सप्ताह तक खिलाने से दूध की मात्रा बढ़ जाती है।

३—केले का तना या मोथा १०० ग्राम पकाकर खिलाने से दूध की मात्रा बढ़ जाती है।

४—लौवा, चौराई का साग, उर्द, चावल की खुद्दी एक साथ पकाकर खिलाने से भी दूध की मात्रा बढ़ जाती है।

५—महुवा को शाम को भिगोकर प्रातः खिलाने या फला हुआ हरा उर्द कुट्टीकर दूसरे चारा में मिलाकर खिलाने या नित्य ४-५ किलो हरे बरसीम का चारा देने से भी दुधारू पशु का दूध बढ़ जाता है।

बकरी

बकरी दुधारू पशु-वर्ग का सुलभ, सस्ता और उपयोगी पशु है। यद्यपि बकरी का दूध गाय-भैंस के दूध की भाँति सुस्वादु और रुचिकर नहीं होता, किन्तु गुणों की दृष्टि से बकरी का दूध बहुत गुणकारी और औषध गुणविशिष्ट होता है। क्षय-रोगियों के लिए बकरियों का साहचर्य, उनके दूध का प्रयोग और बकरे का माँस अत्यन्त हितकारी होता है। वैद्य, हकीम, डॉक्टर, प्राकृतिक चिकित्सक—सभी चिकित्सा-प्रणालियों के चिकित्सक यह बात एकमत से स्वीकार करते हैं कि यक्ष्मा के रोगी की शैया के समीप बकरी बाँधने से यक्ष्मा के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। यदि यक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था में रोगी को केवल बकरी का दूध दिया जाय और वह सदैव बकरियों के समीप रहे तो यक्ष्मा का रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जायगा। ग्रहणी के रोगी के लिए भी बकरी का दूध परम हितकर है। महात्मा गांधी ने जीवनपर्यन्त बकरी के दूध का सेवन किया। उनके लिए बहुत दिनों तक स्विटजरलैंड की एक महिला ने बकरियाँ प्रदान कीं। गाँधी जी बकरी के बड़े प्रशंसक थे। अल्पायु बालकों और दुर्बल पाचनशक्ति वाले वृद्धों के लिए बकरी का दूध परम हितकारी है। इसके दूध में फेट (स्नेहन) की मात्रा कम होती है और हल्का होने के कारण शीघ्र पच जाता है। बकरी के दूध के सेवन से शरीर में रोग-निरोधक शक्ति उत्पन्न होती है।

बकरी सुलभ और सस्ता पशु है। इसे निर्धन भी आसानी से पाल सकता है। इसके पालन-पोषण में विशेष व्यय नहीं होता। ये केवल घास चरकर और पेड़ों की पत्तियाँ खाकर बड़ी आसानी से अपना पेट भर लेती हैं। इसके अतिरिक्त बकरी एक सीधा और छोटा पशु है, जिससे बच्चों को भी कोई भय नहीं है। इसके बाँधने में किसी विशेष या बड़े स्थान की आवश्यकता नहीं होती। गाँवों में बकरी को चरने के लिए प्रायः जंगल या खेतों में छोड़ दिया जाता है। घास-

पात और पेड़ों की पत्तियाँ चरकर ही यह अपना पेट भर लेती हैं। बकरी की वंश-वृद्धि भी बड़ी तीव्र गति से होती है। सामान्यतः यह साल मे दो बार वियाती है और एक बार में बहुधा दो और कभी-कभी तीन बच्चे भी देती है। बकरी वन्य-पशु की श्रेणी का पशु प्रतीत होता है। यह जंगल में स्वच्छन्दरूप से चरने में ही प्रसन्न रहती है। जंगली घास-पात और वृक्ष-वनस्पतियों की पत्तियों पर जीनेवाली बकरियों का दूध, घर में बँधी रहकर सानी खानेवाली बकरियों की अपेक्षा कई गुना गुणकारी होता है। बकरिया से दूध के अतिरिक्त चर्म और विशेष रूप से मांस की आवश्यकता की पूर्ति होती है। बकरे का मांस भेड़ और अन्य पशुओं के मांस से अच्छा स्वादिष्ट होता है।

बकरी प्रायः संसार के प्रत्येक देश में पायी जाती है। देश-भेद और स्थान-भेद से इसके आकार-प्रकार में भिन्नता होते हुए भी यह सर्वत्र एक प्रकृति तथा स्वभाव की होती है। भारत में कई जातियों की बकरियाँ पाई जाती हैं। बकरियों की कुछ जातियाँ तो दुग्ध-उत्पादन की दृष्टि से पाली जाती हैं और कुछ केवल मांस के व्यवसाय की दृष्टि से। हर जाति की बकरियों का मांस और चमड़ा व्यवसाय के लिए प्रयुक्त होता है। दुग्ध-उत्पादन की दृष्टि से प्रमुखता वाली निम्नलिखित प्रमुख जातियां हैं :—(१) जमुनापारी, (२) उस्मानाबादी, (३) बीतल, (४) बरबरी, (५) कच्छी, (६) सूरती, (७) मलाबारी, (८) पश्मीना, (९) बंगाली, (१०) गद्दी या सफेद बालों वाली पर्वती बकरी, (११) उत्तर गुजरात-जिसे सिरोही कहते हैं, (१२) भाखरवाल, जो कश्मीर में पायी जाती हैं, (१३) चम्बलपारी, (१४) बेकताल।

जमुनापारी, बीतल और बरबरी जाति की बकरियाँ दुग्ध-उत्पादन की दृष्टि से उत्तम होती हैं, अतः इनकी माँग अधिक है। भारत में प्रसिद्ध जमुनापारी नस्ल की बकरियो की मुख्य भूमि जिला—इटावा (उत्तर प्रदेश), ग्वालियर के मध्य भाग में यमुना और चम्बल नदियों के बीच का स्थान है। जमुनापारी नस्ल की बकरिया भारी डील-डौल की होती हैं और प्रतिदिन ५–६ किलो तक दूध देती हैं। इस जाति की बकरियों का कोई एक विशेषण नहीं होता, काली

भी होती हैं, सफेद भी और चकत्तेदार भी। इनके कान बहुत लम्बे लटके हुए होते हैं। ब्रिटेन आदि यूरोपीय देशों में भी इन बकरियों की माँग होती है।

बरबरी बकरियों का मूल स्थान एटा, इटावा, मथुरा तथा आगरा आदि हैं। ये नाटे और ठिगने कद की होती हैं पर दूध खूब देती हैं। रंग सामान्यतः सफेद, कुछ काले-भूरे धब्बोंवाली होती हैं। टाँगें छोटी और मजबूत होती हैं। ये बकरियाँ प्रतिदिन २-२॥ किलो तक दूध देती हैं। ये प्रायः घर में ही चारा आदि खाकर रहना प्रसन्द करती हैं। अन्य दूसरी बकरियों की तरह जंगल में चरना या पेड़ों की पत्तियाँ आदि खाना इन्हें कम पसन्द है। इसलिए ये शहरों और कस्बों में पालने के लिए अधिक उपयुक्त होती हैं।

सूरती, मलाबारी बकरियाँ दक्षिण भारत में होती हैं। ये वहीं के वातावरण में ही सुखपूर्वक रह सकती हैं। इनका रंग सफेद और पैर छोटे होते हैं। ये दूध के लिए अच्छी होती हैं। बेकताल नस्ल की बकरियाँ पंजाब में होती हैं। इनके सींग मुड़े हुए और कान लम्बे लटके हुए होते हैं। ये दूध पर्याप्त मात्रा में देती हैं। बंगाली बकरियाँ चिकनी खालवाली होती हैं। इनके पैर छोटे और शरीर भरा हुआ रहता है। ये गद्दी या सफेद बालोंवाली, काले और भूरे रंग की भी होती हैं। ये दूध के लिए अच्छी होती हैं। बंगाल और पूर्वी भारत की माँग की पूर्ति इन्हीं से होती है। इनके लिए बंगाल की ही जलवायु अधिक अनुकूल पड़ती है।

मारवाड़ी बकरियाँ राजस्थान में होती हैं। ये मध्यम डील-डौल, मुड़े हुए सींगों, नोकीले पैरों और मोटे कानवाली होती हैं। ये मांस के लिए अच्छी होती हैं। चम्बलपारी जाति की बकरियों का आकार जमुनापारी की तरह होता है। दूध और मांस दोनों के लिए उपयोगी होती हैं। मेहसाना और जालवाड़ी बकरियाँ गुजरात, विशेषकर उत्तर गुजरात में मिलती हैं। भारत के पश्चिमी भाग में कच्छी, उस्मानाबादी और सिरोही जाति की बकरियाँ होती हैं। दूध की मात्रा इनमें पर्याप्त होती है।

पश्मीना नस्ल की बकरियाँ लद्दाख और स्पिती (लाहौल) में होती हैं। ये छोटे आकार की और रूप-रंग में सुन्दर होती हैं। ये हिमाचल प्रदेश में भी होती हैं। ये बकरियाँ बहुमूल्य ऊन के लिए उपयोगी हैं। विदेशों की बकरियों में सेनवन, टाजन, बर्ग और अंगोरा की बकरियाँ बहुत अच्छी होती हैं। ये सींग-विहीन होती हैं और अत्यधिक दूध देती हैं। संसार में सर्वाधिक दूध देनेवाली विदेशी नस्ल की रोजेनवर्ग और सेनवन बकरियाँ मानी गई हैं और अभी भारत में उपलब्ध नहीं हैं। भारत सरकार का प्रयास है कि शंकरप्रजनन द्वारा यह नस्ल भारत में उपलब्ध की जा सके।

रख-रखाव—बकरियों की प्रकृति और स्वभाव गाय-भैंस से बिल्कुल भिन्न होता है। ये पानी से बहुत घबड़ाती हैं। इन्हें ऊँचा और सूखा स्थान ही अधिक पसन्द आता है। ये घर में बन्द रहना बहुत नापसन्द करती हैं। यद्यपि बहुत-से लोग इन्हें घरों में बन्द करके रखते हैं, जो उनके स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। प्रायः बकरियाँ बेर, नीम, बबूल, आम, झड़बेरी, अरहर आदि की पत्तियाँ और ऐसी ही अन्य हरी पत्तियाँ बड़ी रुचि से खाती हैं। इसके सिवा जंगल में चरने के लिए छोड़ने पर घास और वनस्पतियाँ खाकर अपना पेट भर लेती हैं। भीगी हुई घास-पत्तियों से इन्हें अरुचि है। ऐसे नीचे चरागाहों में जहाँ पानी भरा रहता है—बकरियों को चराने से इनको आँतों में शोथ, मुँह में घाव आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। घास-पत्तियों के अतिरिक्त ये जौ-गेहूँ का भूसा, अरहर की सूखी पत्तियाँ और फलियों के छिलके, चने की चूनी, कराई, चोकर और हर प्रकार के अनाज खा लेती हैं। बहुत-सी बकरियाँ खली पसन्द करती हैं और बहुत-सी नहीं। बकरियों को जौ की रोटी खिलाना बहुत लाभप्रद है। यों तो बकरियों को पालने के लिए घर में कुछ विशेष प्रबन्ध करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे हर खाद्य से अपनी उदर-पूर्ति कर लेती हैं और कुछ न मिलने पर सूखी घास से भी अपना पेट भर लेती हैं। किन्तु यथासम्भव इन्हें चरने के लिए जंगल, खेत या मैदान में अवश्य छोड़ना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो घर में लाकर उन्हें हरी घास-पत्तियाँ अवश्य देना चाहिए। बकरियों को नित्य नियत

समय पर चारा-पानी देना चाहिए। किन्तु इनके सामने अधिक मात्रा में दाना न रखना चाहिए, क्योंकि ये बहुत पेटू और लोभी होती हैं और अनुमान से अधिक खाकर रोग-ग्रस्त हो सकती हैं। इन्हें गन्दे तालाबों-पोखरों का पानी न पिलाकर सदैव स्वच्छ जल पिलाना चाहिए, क्योंकि गन्दे पानी से इनके रोगाक्रान्त हो जाने की बड़ी सम्भावना रहती है।

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है, बकरी का दूध आबाल-वृद्ध-वनिता, रोगी-निरोगी सभी के लिए हितकारी है। अतः जिनको गाय पालने में असुविधा हो, वे घर में ही शुद्ध दूध के लिए बकरी आसानी से पाल सकते हैं। किन्तु कुछ बकरियों के दूध में जो एक प्रकार की तीव्र बास (गंध) सी आती है, जिससे इसके दूध से अरुचि हो जाती है। इसका प्रमुख कारण है गंदे स्थान में रखना, बकरियों को भेंड़ों और बकरों के साथ रखना और दूध को असावधानी से दुहना। अतः इन बातों का ध्यान रखकर बकरी के शरीर की स्वच्छता पर ध्यान रखना चाहिए।

बकरियाँ सामान्यतः ५ से ६ मास में बच्चा देती हैं और बच्चा देने के बाद ७ मास से एक वर्ष के भीतर गाभिन हो जाती हैं। बहुत-सी बकरियाँ एक और बहुत-सी बकरियाँ दो बच्चे जनती हैं। कभी-कभी तीन बच्चे भी हो जाते हैं। बरबरी जाति की बकरियाँ प्रायः अधिक बच्चे देती हैं। बकरी करीब सवा-डेढ़ साल में जवान होकर ब्याने लगती है।

गर्भधारण में विलम्ब

बकरी को बकरियों-बकरों के झुण्ड में छोड़ देने से वह स्वाभाविक रीति से गर्भवती हो जाती हैं—यह स्वाभाविक और प्राकृतिक उपाय है। शुद्ध वायु और सूर्य-प्रकाश से उसकी जीवनीशक्ति और प्रजननशक्ति बढ़ जाती हैं। यदि बकरी समय पर गाभिन नहीं होती तो उसके यही कारण हो सकते हैं कि या तो उसमें कुछ शारीरिक दोष है या बकरी बहुत मोटी और चर्बीली है या बहुत दुबली और क्षीण है। यदि अधिक मोटी है तो पौष्टिक दाना-चारा न देकर

दुवली करें, यदि वहुत क्षीण है तो उसे चना, कनी आदि की पौष्टिक खुराक देकर स्वस्थ और सवल वनायें।

बकरी का आहार

यदि वकरी को जंगल में स्वच्छन्द चरने-विचरने का अवसर मिल जाय तो उसे अन्य किसी पूरक आहार की आवश्यकता नहीं पड़ती। वाहर चरने की सुविधा न हो तो घर में ही उपयुक्त आहार की व्यवस्था करना चाहिए। इसमें कम से कम एक किलो सूखा चारा जैसे—अरहर, मटर आदि दलहनी फसल का भूसा और शेष हरी घास या पत्तियाँ हों। दुधारू वकरियों को उनके में आहार में इस अनुपात में कुछ खनिज मिश्रण भी देना चाहिए। हड्डियों का चूरा ४० भाग, पिसा हुआ चूना या खड़िया ३० भाग, नमक २० भाग, गन्धक ५ भाग और आयरन-ऑक्साइड २ भाग। यह मिश्रण रातिव में २ प्रतिशत के हिसाव से मिलाकर देना चाहिए। उपयुक्त रातिव की सूची निम्नांकित है —

१. चना दला, कुटा हुआ २ भाग, गेहूँ का चोकर १ भाग

२. मक्का २ भाग, गेहूँ का चोकर १ भाग, अलसी की खली १ भाग

३. चने की कराई या चूनी २ भाग, सरसों की खली २ भाग, मक्का २ भाग, जौ १ भाग।

४. जौ २ भाग, मूँगफली की खली १ भाग, गेहूँ का चोकर १ भाग

उक्त अनाजों को दल-कूट लेना चाहिए और खली को चूर कर लेना चाहिए। रातिव को ४–६ घंटे पूर्व पानी में भिगा देना चाहिए। प्रत्येक रातिव में २ प्रतिशत नमक और २ प्रतिशत हड्डी का चूर्ण भी मिला लेना चाहिए।

दुग्ध-वृद्धि के यत्न

बकरी का दूध बढ़ाने के उपाय निम्नलिखित हैं—

१. रेंड़ की मुलायम टहनियाँ ९, गुड़ ५०–६० ग्राम–दोनों को पानी में पकाकर खिला देने से दूध की मात्रा वढ़ जाती है।

२. चावल का गरम माँड़ आधा सेर लेकर आधा पाव शीरा मिलाकर पिला देने से भी दूध की मात्रा बढ़ जाती है।

इन औषधियों के अतिरिक्त उपर्युक्त रातिब और उसकी देखभाल में सावधानी रखी जाय तो दूध की मात्रा तो बढ़ ही जायगी, वह स्वस्थ और सबल भी रहेगी।

भेंड़ या मेढ़ा

सीधेपन, मूर्खता और अन्धपरम्परा की प्रतीक भेंड़ या मेढ़ा भी एक छोटे डील-डौल का अत्यन्त उपयोगी पशु है। इसके शरीर पर उगनेवाले बालों को ऊन कहते हैं। ऊन से बने हुए वस्त्र सर्दी से बचाते हैं और शरीर को गर्म रखते हैं। गर्म स्वेटर, मोजे, ऊनी कोट, पैन्ट, चेस्टर, शाल, कम्बल, गलीचे आदि अनेक वस्तुएँ ऊन से ही बनायी जाती हैं और दुनियाभर में इनकी बड़ी खपत है। अतः भेंड़ों को व्यवसायिक रूप से बड़े-बड़े फार्मों में पाला जाता है। व्यक्तिगत रूप से और सहकारी रूप में भी भेंड़-पालन का व्यवसाय किया जाता है। आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, स्पेन, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका आदि देश भेंड़-पालन और ऊन के व्यवसाय के लिए प्रसिद्ध हैं। इन देशों की जलवायु भेंड़ों के लिए अधिक उपयुक्त है। अपने देश में भी भेंड़-पालन का कार्य होता है, किन्तु उपरोक्त देशों से बहुत कम।

संसार में लगभग दो सौ नस्लों की भेंड़ें पायी जाती हैं। जिनमें 'मेरीनो' नस्ल की भेंड़ों की ऊन सर्वश्रेष्ठ होती है। मेरीनो भेंडें मूलतः स्पेन की स्पेनिश भेंड़ें हैं। सुनहले पैरोंवाली ये भेंड़ें अब दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा अमेरिका में बहुत बड़ी संख्या में पाली जाती हैं। इस जाति की एक भेंड़ से वर्षभर में ३ किलो से लेकर २८ किलोग्राम तक ऊन मिलती है और सर्वोत्तम श्रेणी की ऊन होने के कारण बहुत मँहगी बिकती है। संसार की कुल ऊन-उत्पादन का लगभग ४० प्रतिशत भाग इन्हीं मेरीनो भेंड़ों से प्राप्त होता है और ४० प्रतिशत भाग ब्रिटेन आदि देशों में इसी मेरीनो नस्ल से विकसित नस्लों की भेड़ों से प्राप्त किया जाता है। शेष २० प्रतिशत भाग एशियाई देशों की भेंड़ों से प्राप्त किया जाता है,

जो कि मोटी ऊन या घटिया ऊन कही जाती है, जो विशेषरूप से गलीचा बनाने के काम में आती हैं, किन्तु अपने भारत देश में जो बहुत विस्तृत और धनहीन है, इसी मोटी ऊन से ही वस्त्र, कम्बल आदि बनाये जाते हैं।

भेंड़ों की जातियों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—(१) बहुत ही सुन्दर मुलायम और महीन ऊनवाली स्पेन की मेरीनो या उसी से विकसित अन्य नस्लें, (२) इंगलेण्ड तथा यूरोप की मध्यम कोटि की ऊन देनेवाली भेंड़ें, (३) इंगलैण्ड की चमकदार ऊनवाली बड़े आकार की भेंड़ें, (४) गलीचा आदि बनाने योग्य मोटी उन देनेवाली एशियाई देशों की भेंड़ें। इसी चतुर्थ वर्ग में अपने देश भारत की भेंड़ें हैं। इनकी ऊन गलीचों के लिए संसारभर में सबसे अच्छी और उपयुक्त ऊन मानी जाती है।

स्पेन, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, अमेरिका आदि में उपलब्ध 'मेरीनो' नस्ल की नर भेंड़ों का भार १५० से २५० पौण्ड और भेंड़ी का भार १२० से १७५ पौंड तक होता है, किन्तु भारत में मेढ़े का भार केवल ८० से १०० पौंड तथा मेढ़ी का भार ५० से ६० पौण्ड तक होता है। भारत में प्रायः राजस्थान, सौराष्ट्र, उत्तरी गुजरात, पंजाब, दक्षिण कश्मीर इत्यादि में भेंड़-पालन का व्यवसाय कुछ अधिक होता है। उत्तर प्रदेश में कहीं-कहीं केवल गड़रिया जाति के लोग ही भेंड़ें पालते हैं। देशी नस्ल की ये छोटी भेंड़ें औसतन ४ पौण्ड ऊन देती हैं। ये लोग ४०-५० से लेकर १००-१२५ भेंड़ों का झुण्ड रखकर जंगल में चराया करते हैं। ये लोग किसानों के खेतों में रात के समय भेंड़ों का समूह रबी की फसल बोने से पूर्व और वर्षा आरम्भ होने से पहले बैठाते हैं और उसका यथोचित पारिश्रमिक लेते हैं। खेतों में भेंड़ बैठाने से खेत अधिक उर्वर हो जाता है, क्योंकि इनकी मेंगनी और मूत्र में गोबर की खाद से दुगुना नाइट्रोजन, पोटाश और फॉस्फेट होता है।

भारतीय जाति की भेड़ों में सबसे अच्छा ऊन 'मागरा'-'चाकला' का होता है। ईरान और अफगानिस्तान में अधिकता से पायी जानेवाली एक विशेष जाति की

भेड़, जिसकी दुमों पर चर्बी की चक्कियाँ होती हैं, मिलती हैं। ऐसी भेड़ें पंजाब और पाकिस्तान के कुछ भागों में पायी जाती हैं। ये भेड़ें दुम्बा कही जाती हैं। इन भेड़ों को आपस में लड़ाने की कला मनोरंजनार्थ सिखाई जाती है। दो दुम्बा आमने-सामने खड़े होकर पीछे पिछलते हुए फिर आगे बढ़ते हुए इतने वेग से अपना सिर लड़ाते हैं कि जोर की आवाज होती है और जब एक दुम्बा पराजित होकर मैदान छोड़कर भाग जाता है या बेदम होकर गिर जाता है तभी लड़ाई बन्द होती है।

तिब्बत, भूटान, नेपाल, कश्मीर आदि में भेड़ों की मिली-जुली जातियाँ पाई जाती हैं, जो कोमल और महीन ऊन के लिए प्रसिद्ध हैं। ऊन और मांस दोनों दृष्टियों से उपयोगी पंजाब में लोही जाति की भेड़ें पायी जाती हैं। यह जाति अन्य जातियों की अपेक्षा आकार-प्रकार और भार में भारी और परिपुष्ट होती है। अपने देश में कच्छ, महाराष्ट्र, उत्तरी गुजरात, राजस्थान में ही भेड़-पालन तथा ऊन-व्यवसाय का कार्य प्रमुखता से होता है। भारत में लगभग ४ करोड़ भेड़ें हैं। भारतीय भेड़ों की ऊन का रंग प्रायः सफेद ही होता है, किसी-किसी का काला भी मिलता है। पूर्वी भारत में यालगा, नैरोली, मांडवा नस्लें मिलती हैं। ये बकरी जैसी होती हैं और इनके गले के नीचे वालों के दो गुच्छे होते हैं। मुलायम ऊन के लिए पर्वतीय क्षेत्रों में पूंच, करनाह और कश्मीर घाटी की तीन जातियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं।

प्रायः भेड़ों की आयु १० से १५ वर्ष तक होती है और वह ९ से १४ महीने के अन्दर जवान हो जाता है। साधारणतः भेड़ के गर्भ का समय १५० से १९० दिन तक का होता है। ये एक या दो बच्चे जनती हैं। भेड़ें, गाय, भैंस की तरह पागुर (जुगाली) करती हैं।

रख-रखाव—भेड़ों का पालना बहुत आसान है। सामान्यतः भेड़ों को केवल चराई पर ही रखा जाता है। जंगल या मैदान की घासें, पेड़ों की पत्तियाँ, झाड़ियाँ आदि इनका आहार है। पवाँर (चकवड़) जिसे अन्य पशु

नहीं चरते, भेड़ें उसकी पत्तियाँ और फलियाँ बड़े चाव से चबा जाती हैं। सामान्यतः इनके लिए किसी विशेष आहार की व्यवस्था नहीं की जाती। भारत में तो यही परम्परा है। विदेशों में इन्हें जब फार्मों में पाला जाता है, तब आहार की विशेष व्यवस्था की जाती है, क्योंकि ऊन और मांस के लिए इन्हें वहाँ विस्तृत व्यवसायिक स्तर पर पाला जाता है। यहाँ गड़ेरिया भेड़ों के झुण्ड दिन-रात मैदानों या पेड़ों की छाया में रखते हैं। चरने के सिवा भेड़ों को यदि दिया जाता है तो ये कुलथी, अरहर, मूँग, बरसीम आदि का भूसा, चावल का कना, खली बड़ी रुचि से खाती हैं।

भेड़ों के चरागाह का स्थान शुष्क और स्वच्छ होना चाहिए, जहाँ हरी घास और क्षुपों की पत्तियाँ अधिकता से हों। भेड़ों को दोपहर में छाया में रखना चाहिए और उन्हें बबूल की पत्तियाँ खिलाना चाहिए। व्यवसायिक स्तर पर भेड़-पालन करनेवालों को दलहनी अनाजों की पत्तियाँ-फलियाँ खिलाना चाहिए। इसके अभाव में तिल, कुसुम, मूँगफली की खली खिलाना चाहिए। भेड़ों को जब खनिज-तत्त्वों के अभाव की अनुभूति होती है, तो वे लकड़ी, कपड़ा, धूल आदि खाने लगती हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें नमक, चूना और हड्डी का चूर्ण समान भाग मिलाकर खिलाना चाहिए। बच्चा जनने से एक माह पहले भेड़ों को उत्तम पौष्टिक आहार देना आवश्यक है जिससे वे बड़े और स्वस्थ मेमनों को जन्म दे सकें।

भेड़ों के लिए ठंडे और सूखे स्थानों की जलवायु जहाँ वर्षा कम होती है, अधिक अनुकूल पड़ती है। कीचड़युक्त स्थानों पर चलने में इन्हें बड़ी असुविधा और कष्ट होता है। भेड़ों को सुबह-शाम हल्की भूमि में और दोपहर को परती भारी भूमि में चराना चाहिए। इनके यदि अच्छे ढंग के समूह बनाकर समुचित रख-रखाव और देखभाल के साथ पाला जाय और इनके उपचार का ज्ञान हो तो ऊन, दूध, मांस, खाद, खाल आदि प्राप्तकर कई लाभ एक साथ प्राप्त किये जा सकते हैं। संक्रामक व्याधियाँ फैलने पर ये झुण्ड की झुण्ड साथ ही मर जाती हैं। अतः इनको स्वास्थ्य-रक्षा और बीमारियों पर पूरा ध्यान रखा जाय और तुरन्त रोग-निरोधी उपाय किये जायें।

घोड़ा

घोड़ा संसार का सबसे सुन्दर, चुस्त, फुर्तीला, शीघ्रगामी, बुद्धिमान, स्वामि-भक्त और बहादुर पशु है। खच्चर, टट्टू और गधा भी इसी वर्ग के प्राणी हैं। घोड़ा सवारी के काम में भी आता है और माल ढोने के लिए भी उपयुक्त होता है। पिछली शताब्दी तक एक स्थान से दूसरे स्थान तक आवागमन का प्रमुख साधन घोड़ा ही था। भारत की बड़ी-बड़ी रियासतों की सेना तथा पुलिस का एक प्रमुख अंग घोड़ा ही था। यही कारण है कि पहिले राजाओं, महाराजाओं, नवाबों, रईसों, जमीदारों आदि में अश्व-पालन का बहुत शौक और प्रचलन था और दूर-दूर देशों से बढ़िया नस्ल के घोड़े मँगाये जाते थे। घुड़सवार सेना अलग होती थी और पैदल सेना अलग। व्यवसायी वर्ग भी दूर-दूर के प्रदेशों में जाकर अपने प्रदेश की वस्तुयें दूसरे प्रदेशों में बेचने और वहाँ से उपयोगी वस्तुयें अपने यहाँ लाने के लिए घोड़ों का ही अधिक प्रयोग करते थे। अब मोटरें, रेलें आदि चल जाने के कारण घोड़ों की उपयोगिता और माँग घट गयी है। फिर अनेक शौकीन लोग घोड़ा बड़े शौक से पालते हैं। अब छोटे-छोटे कस्बों, शहरों और गाँव में ताँगों तथा इक्कों में घोड़े जोतकर सवारियों तथा माल ढोया जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ रेलें तथा मोटरें नहीं पहुँच पातीं वहाँ आवागमन और माल ढोने के लिए घोड़ों अथवा खच्चरों का ही प्रयोग किया जाता है। खच्चर भी घोड़ों की ही एक नस्ल मानी जाती है।

आजकल भारत में घोड़ों का उपयोग सेना और पुलिस विभागों में ही मुख्यरूप से होता है। इन्हीं के निकाले गये घोड़े बाजारों में बिककर जनता के पास पहुँचते हैं, जो कि इक्के, ताँगों आदि में जोते जाते हैं और कहीं-कहीं सवारी के काम में भी लिये जाते हैं। संसारभर में देश-भेद से अनेक आकार-प्रकार के घोड़े होते हैं। अरब के घोड़े संसार में सर्वोत्तम होते हैं। सेना में प्रयोग के लिए वहीं से घोड़े मँगाये जाते हैं। विलायती घोड़ों में बड़ी जाति के शायर, हाकनी और क्लाइड्स जाति के सर्वोत्तम घोड़े समझे जाते हैं। भारतीय बड़े घोड़ों में काठियावाड़ नस्ल के घोड़े उत्तम होते हैं। इन घोड़ों का रंग प्रायः भूरा, घुटने

मुड़े हुए और कान सिर पर मिले-से होते हैं। ये घुड़दौड़ और भारवहन के लिए उपयोगी हैं। मारवाड़ी नस्ल के घोड़े आकार में लम्बे, शरीर भरा हुआ, कान सिरे पर झुके हुए और रंग भूरा होता है। मारवाड़ी घोड़े सुन्दर बनावट, तीव्रगति और सुदृढ़ता के लिए प्रसिद्ध हैं। स्पिटी घोड़े का शरीर भरा हुआ, ऊँचाई करीब १२ फुट, रंग भूरा और पैरों पर कड़े बाल होते हैं। सबल होने के कारण ये भार ढोने के लिए और सवारी के लिए अच्छे होते हैं। भोटिया घोड़े का बदन गठा हुआ, पैर पर कड़े बाल, गर्दन छोटी और मोटी, लम्बी पूंछ, ऊँचाई लगभग १३ फुट और रंग साधारणतः भूरा होता है। ये भी भार ढोने और सवारी के लिए अच्छे होते हैं। मनीपुरी घोड़ा छोटे कद का, चेहरा लम्बा, जबड़े चौड़े, पैर सुन्दर और घुटने मजबूत होते हैं। ये बहुत सुंदर, तीव्रगामी और घुड़दौड़ के लिए उत्तम होते हैं।

हठ न करनेवाला तथा रुक-रुककर पीछे न हटनेवाला वह घोड़ा उत्तम माना जाता है जो स्वामी के मन के अनुकूल चलता है। अगले पाँव से भूमि खोदनेवाला घोड़ा उत्तम समझा जाता है। श्यामकर्ण अर्थात् जिसका सम्पूर्ण शरीर श्वेत और कान काले होते हैं सर्वोत्तम समझा जाता है। अश्वविशेषज्ञों ने घोड़ों के अनेक शुभाशुभ लक्षण निर्दिष्ट कर रखे हैं। आधुनिक काल में घोड़ों का पालना बहुत व्ययसाध्य और अन्य यांत्रिक सवारियों से कम उपयोगी है तथा ऐसे स्थानों के लिए जहाँ ये आधुनिक यान्त्रिक वाहन नहीं पहुँचा पाते, अब भी इनको उपयोगिता है। आज भी ऐसे बहुत-से स्थान हैं जहाँ इस वर्ग का पशु ही काम आता है। अतः घोड़े के पालन के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें लिखी जा रही हैं।

अश्वशाला (अस्तबल)

अश्वशाल या घुड़साल का स्थान अन्य पशुओं की अपेक्षा बड़ा साफ-सुथरा, हवादार, प्रकाशयुक्त और पक्का होना चाहिए। उसकी दीवारें काफी ऊँची हों और उसमें खिड़कियाँ भी पर्याप्त होनी चाहिए। फर्श की जमीन ढालुवाँ तथा समतल होनी चाहिए। पीछे की ओर नालियाँ बनी होनी चाहिए, जिससे मूत्रादि

बहकर आसानी से बाहर निकल जाय। उसके फर्श पर पयाल या सूखी घास बिछाई जाय और गन्दा होने पर इसे तुरन्त हटा दिया जाय। अश्वशाला में जितनी सफाई की व्यवस्था रहेगी, घोड़ा उतना ही स्वस्थ तथा प्रसन्न रहेगा। बन्द और संकीर्ण स्थान में घोड़ों को कदापि न रखना चाहिए अन्यथा उनका स्वास्थ्य खराब हो जायगा। घोड़े की लीद इत्यादि की सफाई दिन में कई बार करने की आवश्यकता है। गन्दगी से कीटाणु उत्पन्न होकर घोड़े को रुग्ण बना देते हैं। साल में कम से कम दो बार दीवारों पर सफेदी करानी चाहिए।

घोड़े के सुम्मों को पूर्णतः साफ रखा जाय इस कार्य के लिए एक लोहे का हुकवाला यन्त्र रखना चाहिए जिससे सुम्मों को मैल-कुचैल से साफ करते रहें, क्योंकि घोड़े के सुम्मों के निरन्तर गन्दा रहने की अवस्था में उनकी भूख कम हो जाती हैं और वे व्याकुल रहने लगते हैं। घोड़े को नित्य ठण्डा और स्वच्छ जल पिलाना चाहिए। किन्तु परिश्रम करने के बाद तुरन्त शीतल जल पिलाना बहुत हानिकारक और भयंकर है। गर्मी की ऋतु में कम से कम तीन बार पानी पिलाना चाहिए। घोड़े को साफ-स्वच्छ जल और कार्बोलिक साबुन या लाइफब्वाय साबुन से नित्य स्नान कराना चाहिए। स्नान कराते समय पाँवों और सुम्मों को भलीभाँति मलकर धोना चाहिए। घोड़े को सुबह खरहरा करना भी बहुत आवश्यक है। इससे त्वचा की सफाई तथा रक्तसंचार भलीभाँति हो जाता है।

घोड़े की गर्दन और पूंछ के बालों को साबुन से धोने के पश्चात् कंघे से झाड़ देना चाहिए जिससे मैल साफ हो जाय। खरहरा करने के बाद हाथों से घोड़े को भलीभाँति मालिश करनी चाहिए। घोड़े के लिए मालिश बहुत लाभप्रद है। मालिश से उसकी थकावट दूर हो जाती है, जकड़ाहट चली जाती है और वह चुस्त हो जाता है। फागुन में घोड़े को नये बाल निकलते हैं। इस समय कंघी करना और बाल सँवारना हितकारी है। जाड़े में स्नान कम से कम कराना चाहिए। कारण अत्यन्त बलिष्ठ होने पर भी यह पशु बहुत कोमल प्रकृति का प्राणी है। इस पर शीत और गर्मी का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है।

अश्व-पालन के लिए उसकी प्रकृति और आदतों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। जिस प्रकार पड़े-पड़े लौह-यन्त्र में मोर्चा लग जाता है उसी प्रकार घोड़े को भी हमेशा बाँध रखने से वह निकम्मा हो जाता है। घोड़े की सवारी नित्य करनी चाहिए। उसे नित्य कुछ समय तक दौड़ाना अथवा टहलाना चाहिए। घोड़े को परिश्रम करने पर पसीना आ जाता हैं, अतः उसके स्नान की भी दूसरे-तीसरे दिन व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए।

घोड़े के चार अति महत्वपूर्ण अंग

घोड़े के शरीर में उसका मुख, पैर, पेट और कमर ये चार महत्वपूर्ण अंग होते हैं, जिनपर घोड़े की महत्ता अवलम्बित है। चारों अंग दीर्घ होने पर ही घोड़े अच्छे माने जाते हैं। इनका छोटा होना घोड़े की असुन्दरता और अयोग्यता का सूचक है। ओठ, जीभ, पेड़ू तथा तालू का भाग लाल वर्ण के उत्तम माने जाते हैं। कान और पूँछ बड़े अच्छे नहीं होते। मुख, कन्धा, जाँघें और पार्श्व लम्बे अच्छे होते हैं। घोड़े के गुणावगुण पर प्राचीन साहित्य में इतना अधिक लिखा गया है जितना और पशु के विषय में नहीं लिखा गया है। प्राचीनकाल में भारत में शालहोत्र नामक एक महान् अश्वविशेषज्ञ हो चुके हैं। उन्होंने घोड़े के सम्बन्ध में संस्कृत में बहुत बड़े ग्रन्थ का प्रणयन किया है।

आहार

अन्य पशुओं की भाँति घोड़ों को खली और गेहूँ का भूसा नहीं दिया जाता। वह इन चीजों को नहीं खाता। घोड़े का सर्वोत्तम आहार हरी दूब और भीगा हुआ चना है। घोड़े का आमाशय अपेक्षाकृत छोटा होता है, अतः वह एक बार में अधिक आहार ग्रहण नहीं करता। उसे थोड़ा-थोड़ा करके, रेत और मिट्टी से रहित साफ की हुई दूब देते रहना चाहिए। सुबह-शाम दला हुआ भीगा चना नमक मिलाकर देना चाहिए। इससे घोड़ा पुष्ट रहता है। घोड़े को सदैव जौ, चना और जौ का साफ भूसा खिलाना चाहिए। घोड़ों के लिए जौ और चने से उत्तम कोई आहार नहीं। गर्मी की ऋतु की अपेक्षा शीत ऋतु में जौ और चने

का अधिक प्रयोग अधिक लाभदायक है। गर्मी की ऋतु में हरी दूब अधिक देना चाहिए। इसके प्रयोग से घोड़ा स्वस्थ रहता है और कब्ज नहीं होने पाता। गेहूँ का भूसा विशेषत: गेहूँ के भूसे की गाँठें घोड़े को बहुत हानिकर हैं। इनके खाने से इनके पेट में तीव्र पीड़ा और मलावरोध हो जाता है।

घोड़े के चारे-दाने में एकाएक परिवर्तन नहीं करना चाहिए। इससे उनको उदर-शूल हो जाने की सम्भावना रहती है। घास खिलाना या घास को काट-कतरकर दाने के साथ मिलाकर देना सर्वोत्तम चारा है। इस आहार से घोड़ा सदैव स्वस्थ रहता है और इसमें व्यय भी कम पड़ता है। घोड़े को खिलाने के बाद उससे अधिक परिश्रम का काम न लें। इसी प्रकार थके-माँदे घोड़े को भरपेट चारा न दें। एक सवारी और भार ढोनेवाले घोड़े को साधारणत: तीन या चार किलोग्राम दाना और छः या सात किलोग्राम घास की आवश्यकता होती है। एक माह से ऊपर के बच्चों को आधा से एक किलोग्राम दाना प्रतिदिन खिलाना चाहिए। घोड़े को चारा-दाना देने से प्रथम नियमित रूप से सदैव पर्याप्त ताजा साफ पानी पिलाना चाहिए। पानी पिलाने के तुरन्त बाद उससे काम न लेना चाहिए।

घोड़े को खिलाने के लिए स्वच्छ अलसी भी उपयुक्त आहार है। इसमें प्रोटीन की मात्रा यथेष्ट रहती है तथा विरेचक भी होती है। इससे घोड़े की त्वचा पर चमक आ जाती है। पत्तों के सहित गाजर भी घोड़ों का पर्याप्त पौष्टिक आहार है। घोड़े के दाने में शीरा भी देना चाहिए। शीरे को थोड़े पानी में मिलाकर रातिब के साथ देना चाहिए। घोड़ों को सामान्यतया अरहर, मटर, बरसीम आदि दलहनी घास बहुत ही हितकर हैं।

नमक और खनिज लवण भी घोड़ों को नीरोग और सबल रखने के लिए अत्यावश्यक हैं। घोड़े को नित्य ५० से १०० ग्राम तक नमक रातिब में देना चाहिए। अच्छी प्रकार पिसा हुआ चूना १५ किलोग्राम, हड्डी की राख ३२·५ किलोग्राम, आयोडायिण्ड नमक ९ किलोग्राम, आयरन ऑक्साइड १·३५ कि० ग्रा०

और गन्धक ०·९० कि०ग्रा०—इन्हें अच्छी तरह पीसकर और मिलाकर, इस खनिज मिश्रण को ५० से १०० ग्राम की मात्रा में नित्य रातिब में मिलाकर, देते रहना चाहिए। इससे उनके आहार में खनिज तत्त्वों के अभाव की पूर्ति होती रहेगी। गर्भवती घोड़ियों और बच्चों को पिसा हुआ चूना, भाप दिया हुआ हड्डी का चूर्ण और नमक समान भाग लेकर रातिब में मिलाकर खिलाना चाहिए। घोड़े की पाचन-शक्ति को ठीक रखने के लिए कालानमक और देशी अजवायन के चूर्ण बहुत उत्तम वस्तुयें हैं। इसे दूसरे या तीसरे दिन प्रयोग कराने से उदरशूल (Colic Pain) इत्यादि होने की सम्भावना नहीं रहती। रुग्ण घोड़ों को बहुत स्वल्प मात्रा में आहार देना चाहिए। एतदर्थं थोड़ी-सी बारीक काटी हुई घास भी बहुत लाभदायक है। रुग्ण घोड़ों के लिए दूध भी बहुत लाभदायक है, यदि वे इसे पी सकें।

घोड़े के पीने का पानी सदैव स्वच्छ रहना चाहिए, वह गन्दा तथा बरसाती या नदी-तालाब का पानी पसन्द नहीं करता। कुछ शौकीन लोग घोड़े के आहार में छीमी देते हैं। कभी-कभी इसे लोग शराब का भी सेवन कराते हैं। यदि विचारपूर्वक तथा उचित मात्रा में ये वस्तुयें घोड़े को दी जायें तो घोड़े का स्वास्थ्य और बल बहुत बढ़ जाता है। कुछ अवस्थाओं में घोड़े को ब्रांडी और अण्डे भी बहुत लाभकारी सिद्ध होते हैं।

दुर्बल घोड़े को शक्तिशाली और हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए निम्नांकित आहार बहुत ही गुणकारी है। यह आहार शीतकाल में देना चाहिए।

कटी हुई गाजर और मेथी दोनों दो-दो किलोग्राम एकत्र मिलाकर, २-२॥ किलो पानी डालकर पकायें। गल जाने पर कलछी से घोटकर ५०-५० ग्राम देशी अजवायन और कालानमक चूर्ण डालकर घोड़ों को खिलायें। यह एक दिन का आहार है। नित्य इसी प्रकार ताज़ा बनाकर खिलाते रहें। यदि घोड़े को और अधिक शक्तिशाली बनाना हो तो इसमें शुद्ध देशी घी १०० ग्राम और मिला दें। अत्यन्त दुर्बल और वृद्ध घोड़े को बकरे के सिर और पैर के मांस को पकाकर उसका शोरवा पिलाना बहुत लाभदायक है।

घोड़े को कब्ज की शिकायत हो जाय तो ५० ग्राम सनाय की पत्तियों को ८५० ग्राम गुड़ डालकर २ किलोग्राम पानी मिलाकर पकायें। आधा पानी शेष रहने पर छानकर पिला दें। मैग सल्फ (Mag Sulph) भी दस्त कराने के लिए बहुत प्रभावशाली है। कब्जनाशक दवाओं का प्रयोग करते समय घोड़े को आहार बहुत कम देना चाहिए।

गधा

संस्कृत में गर्दभ और रासभ कहा जानेवाला गधा या गदहा भारवाही पशुओं में सबसे सस्ता पशु है। खच्चर भी इसी वर्ग का एक विशेष पशु है, जो घोड़े और गधे के बीच का पशु है। खच्चर का भी उपयोग और रख-रखाव गधे के ही समान है। किसी को सीधा-सादा, मूर्ख या अधिक परिश्रम करनेवाला कहने के लिए उसे 'गधा' कहा जाता है। वस्तुतः गधे जैसा सीधा और परिश्रमी पशु दूसरा नहीं होता। यह मैदान में घास चर कर ही अपना पेट भर लेता है। जिस स्थान की छोटी घास गाय, भैंस आदि नहीं चर पाते, वहाँ भी गधा 'दूब-घास' की जट्ठी अपने थूथन गड़ाकर निकाल लेता है। गधापालक इसे धान का कना भी खिलाते हैं। वर्ष के ग्यारह महीने यह एक परमहंस दार्शनिक की सौम्यता, साधुता और सरलता से रहता है, केवल बैसाख मास में वह प्रचण्ड कामवासना से आकुल होकर उच्छृंखल हो जाता है और बड़ी धमा-चौकड़ी मचाता है तथा गर्दभी के गर्भाधान का शुभ कार्य सम्पन्न करता है।

व्यक्तिगत रूप से छोटे काम करनेवाले और माल ढोनेवाले धोबी और कुछ कुम्हार भी गधा पालते हैं। धोबियों को सबेरे कपड़ों के गट्ठर को गधे पर लादकर नदी या तालाब पर ले जाना पड़ता है, जहाँ वे घाट पर कपड़े धोते हैं और सन्ध्या को धुले कपड़े इकट्ठा कर गधे पर लादकर घर लाते हैं। जब धोबी कपड़े धोते रहते हैं, गधे नदी या तालाब के किनारे घूम-फिरकर, चर कर अपनी उदर-पूर्ति कर लेते हैं। शाम को इन्हें धोबी खूंटे में बाँध देते हैं या रात में भी खुला छोड़ देते हैं। खुला रहने पर

भी यह भागकर दूर नहीं जाता है। कुम्हार लोग जो घड़े, सुराहियाँ, चिलमें आदि मिट्टी के वर्तन बनाते हैं और अपने बर्तन गधों पर लादकर मण्डियों या नगरों तक ले जाते हैं। गाड़ी आदि में मिट्टी के बर्तन ले जाने से हिचकोले लगने से उनके फूट जाने की सम्भावना रहती है। गधे की पीठ पर वे रस्सियों से बने हुए एक विशेष प्रकार के जाल के थैलों में सावधानी से बर्तन भरकर पयाल आदि से उसे भर, गधे की पीठ के दोनों ओर लटकाकर इस प्रकार रख देते हैं कि तेज चलने पर भी वर्तनों के परस्पर टकराकर टूटने-फूटने का डर नहीं रहता। गाँवों के कुछ धोबी गधे पालकर देहातों से समीप के कस्बे या शहर के बाजार में अनाज, आलू, घुइयाँ, प्याज आदि गधे पर लादकर ले जाते हैं, और किराये के रूप में कुछ आय कर लेते हैं।

भारत में दो-तीन जाति के ही गधे दिखाई देते हैं। यह भिन्नता भी उनके डील-डौल के कारण है। कुछ शीतप्रधान तथा पर्वतीय क्षेत्रों के गधे आकार में बड़े और विशेष शक्तिशाली होते हैं। सामान्य गधे मैदानी क्षेत्रों में होते हैं। खच्चर और गधे में कोई विशेष भेद नहीं है। खच्चर गधे से कुछ बड़ा और आकार के अनुपात से विशेष भारवाही होता है। खच्चर को गधे का बड़ा भाई ही समझिये। उसका भी खान-पान और स्वभाव गधे जैसा ही होता है।

वैसे तो गधा बहुत सीधा-सादा और भोला-भाला पशु है, न किसी को मारता है, न काटता है, किन्तु यह दुलत्ती चलाने में बड़ा जोरदार है। जब दो गधे परस्पर लड़ते हैं, तो घूम-घूमकर पिछले पैरों से बड़े जोर की दुलत्ती चलाते हैं।

हाथी

थलचर प्राणियों में हाथी सर्वाधिक विशालकाय, शक्तिशाली, बुद्धिमान और सीधा-सादा पालतू पशु है। जबतक देश में राजे-महाराजे थे, उनके यहाँ यह पशु बड़े सम्मान और रुचि के साथ पाला जाता था; क्योंकि इस पर सवारी करना राजाओं को विशेष प्रिय था। शेर, चीता आदि हिंसक वन्य पशुओं का शिकार हाथी पर बैठकर बहुत आनन्ददायी और सुरक्षित समझा जाता है। गुजरात के गिरि वन में सरकार द्वारा विशेष रूप से आखेट के लिए हाथी पाले जाते हैं,

जिन्हें विदेशी शिकारी भारत आने पर काफी पैसा देकर शिकार के लिए किराये पर लेते हैं। प्राचीनकाल में हाथी की जो प्रतिष्ठा, महत्ता और उपयोगिता थी, आज के यांत्रिक युग में यद्यपि वह नहीं रह गयी है, किन्तु अब भी यह अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। हाथी पालना एक शान, प्रतिष्ठा और बड़प्पन का चिह्न समझा जाता है। मानव-जीवन में यद्यपि इसका उपयोग अब बहुत कम हो गया है, तथापि यह अब भी अनेक क्षेत्रों में मनुष्य की सेवा कर रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में पहाड़ी जंगलों की लकड़ी लादकर मैदानी भाग में पहुँचाने के लिए अब भी हाथी का उपयोग किया जाता है। यह बहुत बलशाली होता है, एक बार में एक साथ मनों वजनी लकड़ी के लट्ठे लाद कर चल सकता है। पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ ट्रक आदि की सुविधा नहीं है, पहाड़ी लकड़ी के व्यवसायी हाथी से ही काम लेते हैं।

हाथी इतना बुद्धिमान होता है कि वह अपने स्वामी के निर्धारित शब्दों और संकेतों को समझ लेता है। सर्कस कम्पनियों के लोग हाथियों को स्टूल पर बैठाना, मोटर साइकिल चलाना आदि कार्य सिखा कर जनता का मनोरंजन करते हैं। अपने देश के बहुत-से चिड़ियाघरों में अनेक जाति के हाथी पाले जाते हैं, जो दर्शकों का मनोरंजन करते हैं।

संसार में हाथी की कुछ ही नस्लें पायी जाती हैं। हाथियों के सम्बन्ध में भारत का प्रमुख स्थान है—पूर्वी भारत में असम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश, गुजरात के जंगलों में और हिमाचल की तराई में बहुत हाथी पाये जाते हैं। वे एक साथ समूह के रूप में रहते हैं। चूँकि हाथियों की संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है और कुछ विशेष नस्लें तो समाप्तप्राय हो रही हैं, अतः भारत सरकार ने वैधानिक प्रतिबन्ध लगाकर उनकी सुरक्षा के लिए हाथियों के आखेट पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया है। भारत के जंगलों में पाये जानेवाले हाथी छोटी आयु में पकड़कर विदेशों के चिड़ियाघरों में ऊँचे दामों पर बेचे जाते हैं। हाथियों के पालन पर काफी व्यय पड़ता है और मैदानी क्षेत्रों में इसकी कोई उपयोगिता भी नहीं है, अतः इसे इने-गिने लोग ही पालते हैं। कुछ विशिष्ट

सम्प्रदाय के साधु और बड़े-बड़े मठों के महंत हाथी पालते हैं। हाथी-दाँत बहुत मूल्यवान होते हैं। हाथी-दांत की बहुत-सी कलात्मक वस्तुयें भारत के कुछ परम्परागत कलाकार निर्मित करते हैं जो कि यूरोप, अमेरिका आदि में बहुत ऊँचे दामों पर बिकती हैं।

मूलतः हाथी जंगली पशु है। व्यवसायियों द्वारा जंगल से पकड़कर लाये जाने पर प्रशिक्षण देने के पश्चात् यह आज्ञाकारी, स्वामिभक्त और गम्भीर हो जाता है। उत्तमकोटि का हाथी बहुत सहनशील और अक्रोधी होता है। फागुन-चैत (वसंत ऋतु) में मस्त होने पर यह चपल-चंचल हो जाता है। निम्नकोटि का हाथी बहुत चंचल और क्रोधी होता है। बिगड़ जानेपर यह कभी-कभी अपने स्वामी तथा फीलवान को भी सूँड़ से पकड़कर, पैरों से कुचलकर मार डालता है।

गजशाला या हथसार

गजशाला बस्ती से बाहर ऐसे खुले स्थान पर होनी चाहिए, जहाँ अधिक वृक्ष, देवालय न हों और न वह स्थान श्मशानभूमि के समीप हो। गजशाला की दीवाल ऊँची और यथेष्ट सुदृढ़ हों। फर्श ऐसा समतल हो, जिसकी सुविधा के साथ सफाई की जा सके। दिन में दो बार गजशाला की सफाई करना आवश्यक है।

आहार

हाथी का प्रमुख आहार वृक्षों की मुलायम छाल और पत्तियाँ हैं। इसे पीपल, बरगद तथा पाखर की पत्तियाँ, टहनियाँ और डालें खाना अधिक रुचिकर लगता है। इसका प्रमुख आहार यही है। गन्ना भी हाथी का रुचिकर खाद्य है। जंगली हाथी झुण्ड के झुण्ड आकर जंगल के समीपवर्ती किसानों के गन्ने के खेतों को साफ कर देते हैं। इसके अतिरिक्त पालतू हाथियों को पकी रोटियाँ तथा अन्य खाद्य भी दिया जाता है। सम्पन्न और शौकीन हाथीपालक हाथी को पूड़ी, पुंआ, पेड़ा

इत्यादि खिलाते हैं। ये वस्तुएँ हाथी को स्वस्थ-सबल बना देती हैं। उन्मत्त हाथी के लिए गन्ने का रस बहुत हानिकारक है। ग्रीष्मकाल में हाथी को स्वच्छ शीतल जल तथा शर्बत इत्यादि पिलाना चाहिए और नदी या किसी गहरे तालाब में नहलाना चाहिए। वर्षाऋतु में हाथी को कूप-जल, सोंठ, मिर्च, नमक तथा लहसुन देना चाहिए। इससे वह वर्षा की व्याधियों से मुक्त और सुरक्षित रहेगा। शीतऋतु में गजशाला को आग जलाकर गर्म रखने की व्यवस्था करनी चाहिए तथा भोजन में गर्म वस्तुएँ देनी चाहिए और मालिश भी करवाना चाहिए।

गज-व्याधियाँ और उनके उपचार

हाथी विशाल शरीर का प्राणी है, अतः स्वाभाविकतः उसकी औषधि की मात्रा भी अन्य प्राणियों से कहीं अधिक होनी चाहिए। अनुभवी गजपालकों का मत है कि हाथी की औषधि की मात्रा मनुष्य की मात्रा से चारगुनी हो।

रोग-परीक्षा

हाथी के रोग की परीक्षा मुख्यतः उसके मल-मूत्र के रंग आदि पर निर्भर है। कालिमायुक्त मल-मूत्र होने पर वात-विकार, श्वेत होने पर कफ रोग और पीला होने पर पित्तसम्बन्धी रोग जानना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य लक्षण देखकर तदनुसार उचित चिकित्सा करनी चाहिए।

ऊँट

लम्बी टाँगों और लम्बी गरदनवाला यह विशालकाय, विचित्र बेडौल जीव सभी पशुओं से ऊँचा होता है। वस्तुतः यह रेगिस्तानी प्राणी है, किन्तु मनुष्यों ने इसे अपनी सुविधा के अनुसार देश के प्रत्येक भाग में स्थापित कर दिया है और यह पशु देश के हर भाग में बड़ी संख्या में पाया जाता है। अपनी कुछ विशेषताओं के कारण ही यह इतना लोकप्रिय हो गया है। इसके चारा-दाना में बहुत कम खर्च है और यह भारी भार सरल ढंग से ढो सकता है। हरेक वृक्ष और क्षुपों की पत्तियाँ, यहाँ तक कि कटीली पत्तियाँ भी यह बड़े मजे से चबा लेता है। ऊँटहारा इससे

सम्प्रदाय के साधु और बड़े-बड़े मठों के महंत हाथी पालते हैं। हाथी-दाँत बहुत मूल्यवान होते हैं। हाथी-दाँत की बहुत-सी कलात्मक वस्तुयें भारत के कुछ परम्परागत कलाकार निर्मित करते हैं जो कि यूरोप, अमेरिका आदि में बहुत ऊँचे दामों पर बिकती हैं।

मूलतः हाथी जंगली पशु है। व्यवसायियों द्वारा जंगल से पकड़कर लाये जाने पर प्रशिक्षण देने के पश्चात् यह आज्ञाकारी, स्वामिभक्त और गम्भीर हो जाता है। उत्तमकोटि का हाथी बहुत सहनशील और अक्रोधी होता है। फागुन-चैत (वसंत ऋतु) में मस्त होने पर यह चपल-चंचल हो जाता है। निम्नकोटि का हाथी बहुत चंचल और क्रोधी होता है। बिगड़ जानेपर यह कभी-कभी अपने स्वामी तथा फीलवान को भी सूँड़ से पकड़कर, पैरों से कुचलकर मार डालता है।

गजशाला या हथसार

गजशाला बस्ती से बाहर ऐसे खुले स्थान पर होनी चाहिए, जहाँ अधिक वृक्ष, देवालय न हों और न वह स्थान श्मशानभूमि के समीप हो। गजशाला की दीवाल ऊँची और यथेष्ट सुदृढ़ हों। फर्श ऐसा समतल हो, जिसकी सुविधा के साथ सफाई की जा सके। दिन में दो बार गजशाला की सफाई करना आवश्यक है।

आहार

हाथी का प्रमुख आहार वृक्षों की मुलायम छाल और पत्तियाँ हैं। इसे पीपल, बरगद तथा पाखर की पत्तियाँ, टहनियाँ और डालें खाना अधिक रुचिकर लगता है। इसका प्रमुख आहार यही है। गन्ना भी हाथी का रुचिकर खाद्य है। जंगली हाथी झुण्ड के झुण्ड आकर जंगल के समीपवर्ती किसानों के गन्ने के खेतों को साफ कर देते हैं। इसके अतिरिक्त पालतू हाथियों को पकी रोटियाँ तथा अन्य खाद्य भी दिया जाता है। सम्पन्न और शौकीन हाथीपालक हाथी को पूड़ी, पुआ, पेड़ा

इत्यादि खिलाते हैं। ये वस्तुएं हाथी को स्वस्थ-सबल बना देती हैं। उन्मत्त हाथी के लिए गन्ने का रस बहुत हानिकारक है। ग्रीष्मकाल में हाथी को स्वच्छ शीतल जल तथा शर्बत इत्यादि पिलाना चाहिए और नदी या किसी गहरे तालाब में नहलाना चाहिए। वर्षाऋतु में हाथी को कूप-जल, सोंठ, मिर्च, नमक तथा लहसुन देना चाहिए। इससे वह वर्षा की व्याधियों से मुक्त और सुरक्षित रहेगा। शीतऋतु में गजशाला को आग जलाकर गर्म रखने की व्यवस्था करनी चाहिए तथा भोजन में गर्म वस्तुएँ देनी चाहिए और मालिश भी करवाना चाहिए।

गज-व्याधियाँ और उनके उपचार

हाथी विशाल शरीर का प्राणी है, अतः स्वाभाविकतः उसकी औषधि की मात्रा भी अन्य प्राणियों से कहीं अधिक होनी चाहिए। अनुभवी गजपालकों का मत है कि हाथी की औषधि की मात्रा मनुष्य की मात्रा से चारगुनी हो।

रोग-परीक्षा

हाथी के रोग की परीक्षा मुख्यतः उसके मल-मूत्र के रंग आदि पर निर्भर है। कालिमायुक्त मल-मूत्र होने पर वात-विकार, श्वेत होने पर कफ रोग और पीला होने पर पित्तसम्बन्धी रोग जानना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य लक्षण देखकर तदनुसार उचित चिकित्सा करनी चाहिए।

ऊँट

लम्बी टाँगों और लम्बी गरदनवाला यह विशालकाय, विचित्र बेडौल जीव सभी पशुओं से ऊँचा होता है। वस्तुतः यह रेगिस्तानी प्राणी है, किन्तु मनुष्यों ने इसे अपनी सुविधा के अनुसार देश के प्रत्येक भाग में स्थापित कर दिया है और यह पशु देश के हर भाग में बड़ी संख्या में पाया जाता है। अपनी कुछ विशेषताओं के कारण ही यह इतना लोकप्रिय हो गया है। इसके चारा-दाना में बहुत कम खर्च है और यह भारी भार सरल ढंग से ढो सकता है। हरेक वृक्ष और क्षुपों की पत्तियाँ, यहाँ तक कि कटीली पत्तियाँ भी यह बड़े मजे से चबा लेता है। ऊँटहारा इससे

बोझा तो ढोता ही है, स्वयं भी इसपर आरूढ़ होकर मस्ती से झूमता हुआ चला जाता है। ऊँट एक निश्चित मात्रा तक ही भार-वहन कर सकता है। यदि निश्चित मात्रा से अधिक भार लाद दिया जाय तो यह पीठ झटककर उसे उतार फेंकने का प्रयास करता है।

ऊँट सामान्य चाल में तो धीरे ही चलता है, फिर भी लम्बी टाँगों से करीब एक-एक गज के अन्तर पर कदम रखने के कारण अन्य पशुओं की अपेक्षा इसकी साधारण चाल ही अधिक है। दौड़ने पर यह काफी तेज दौड़ता है। प्राचीनकाल में विशेषतः राजस्थान में यह सवारी और बोझा दोनों में काम आता था। आजकल ऊँट का उपयोग राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों में और पर्वतीय क्षेत्रों में भी होता है। राजस्थान में यह बैल या घोड़े की जगह गाड़ी में जोतकर माल ढोने और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए सवारी के भी काम में आता है। इसके पैरों का बनावट ऐसी होती है कि रेगिस्तान की रेतीली भूमि में इसके पैर धँसते नहीं और यह बड़ी सुविधा से चल सकता है। यहाँ तक कि दोपहर की प्रखर धूप में, जब रेत बहुत गर्म हो जाती है कि मनुष्य दस कदम भी नंगे पैर चले तो उसके पैरों में फफोले पड़ जायें, ऊँट महाशय बड़े आनन्द से उसपर दौड़ते हुए चले जाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों से लकड़ी लादकर मैदानी क्षेत्रों में पहुँचाने का कार्य भी ऊँट से लिया जाता है। इसपर सवारी करने के लिए एक विशेष प्रकार की काठी होती है। इसपर दो-तीन आदमी बैठकर लम्बी यात्रा कर सकते हैं। जिन लोगों को ऊँट की सवारी का अभ्यास नहीं है उनके लिए इसकी सवारी कुछ कष्टप्रद होती है।

भारतीय सेना में आजकल भी ऊँट-सेना रखी जाती है। राजस्थान में पाकिस्तान की सीमा के समीप भारतीय सेना में ऊँट-सेना के कई रेजिमेंट हैं। रेगिस्तानी क्षेत्र में सैनिकों और रसद पहुँचाने का कार्य यथावसर लिया जाता है, क्योंकि मरुभूमि में जीप, ट्रक आदि नहीं चल सकते। ऊँट यद्यपि घोड़े या हाथी की भाँति समझदार और स्वाभिभक्त नहीं होता तथापि पालन-पोषण की दृष्टि से सुविधाजनक और अपने विशेष स्वाभाविक गुणों के कारण काफी संख्या में

पाला जाता है। देहातों के बहुत-से वनिक-व्यापारी ऊँट पालते हैं और गाँवों से माल खरीदकर ऊँट पर लादकर अपने समीपवर्ती कस्बे या शहर के बाजार में बेचते हैं।

सामान्यतः वैसे तो ऊँट सीधा पशु है, किन्तु कभी-कभी, कोई-कोई ऊँट कटहा भी हो जाता है। और ऊँट जब कभी किसी को काट लेता है तो बड़ा भारी घाव हो जाता है।

ऊँटों की भी जातियाँ हैं। कुछ तो सुन्दर, सीधे-सादे तथा आज्ञापालक होते हैं, कुछ अकारण क्रोध करनेवाले, कटहे और जंगली स्वभाव के होते हैं। कुछ मध्यम कांटि के होते हैं। गुणों यथा आकार-भेद से ऊँटों की निम्नलिखित चार जातियाँ हैं—

(१) बालहोत्रा, (२) बाँगड़ो, (३) दोगला, (४) देशी।

(१) बालहोत्रा ऊंट—यह ऊँट सर्वश्रेष्ठ ऊंट माना जाता है। सुन्दर, समझदार तथा स्वाभिभक्त होता हैं। प्राचीनकाल में सेना में ये ही ऊँट काम आते थे।

(२) बाँगड़ी—यह भी सुन्दर और समझदार होता है। यह गुणों में दूसरे नम्बर का ऊँट है। यह रेगिस्तानी प्रदेश के लिए अधिक उपयुक्त होता है। बालहोत्रा में और इसमें बहुत कम अन्तर है। इसका रंग कुछ सफेदी लिये होता है और इसमें भार-वहन क्षमता अधिक होती है।

(३) दोगला—जैसा कि इस शब्द से ही प्रगट है, यह ऊँट बालहोत्रा और बाँगड़ी दो जातियों के संयोग से उत्पन्न होता है। वह ऊँट कुछ सीमा तक स्वेच्छाचारी होता है। ऊँटहारा के आदेश-पालन की ओर कम ध्यान देता है। यह विशेषतः भार-वहन या गाड़ी खींचने के काम आता है। इसका रंग भूरा, कान, पूँछ और मुंह छोटे होते हैं। यह चिढ़ जानेपर काट भी लेता है।

(४) देशी—देशी जाति का ऊँट वह है, जो यहीं के वातावरण में पैदा होता और पलता है। स्वभाव से यह डरपोक होता है। यह केवल भार लादने के काम

में आता है। इसका मुख लम्बा, बाल कड़े और खड़े, दाँत बड़े-बड़े, मुँह खुला रहता है और ओंठ लटकते रहते हैं।

आवास-स्थान—ऊँट जंगली स्वभाव का प्राणी है, अतः प्रायः खुले और सूखे स्थान में ही रहना इसके लिए सुखदायी है। यह बड़ा ही कष्टसहिष्णु प्राणी है। इसके रहने का स्थान समतल होना चाहिए। वहाँ गड्ढे और ऊँची-नीची जमीन न हो। असमतल स्थानों पर वह बड़ी सावधानी से चलता है। प्रकृतिप्रदत्त सहज ज्ञान से ही इसे मालूम रहता है कि कहीं खाई-खंदक में गिर पड़ने पर फिर मरकर ही उठना पड़ेगा। मानव-सम्पर्क तथा अपने मूल स्थान से भिन्न वातावरण में रहने के कारण इसके लिए छायादार स्थान की व्यवस्था आवश्यक है। गीली और रपटीली भूमि में चलने से ऊँट को बड़ी दिक्कत होती है। यदि ऐसी भूमि में फिसलकर ऊँट गिर पड़ा, तो उसका एकाध पैर अवश्य टूट जाता है।

आहार—चूँकि ऊँट जलविहीन मरुभूमि का ही मूल प्राणी है, अतः स्वाभाविक रूप से इसे पानी की कम आवश्यकता पड़ती है। यह एक बार पानी पीकर अपने गले के अन्दर के जलकोष में जल संग्रहीत कर लेता है और उसी के सहारे काफी समय तक बिना और पानी पिये जीवित और स्वस्थ रहता है। इसकी लम्बी गर्दन में पानी की एक विशेष थैली बनी होती है। जब यह पानी पीता है तो उस थैली को भी पानी से भर लेता है और फिर कई दिनों तक इसे पानी की आवश्यकता नहीं रहती। जब भी इसे प्यास लगती है, उसी संचित जल कोष से थोड़ा-थोड़ा पानी उँड़ेलकर पीता रहता है। यही कारण है कि जलविहीन मरु-प्रदेश के लिए यह अतिशय उपयोगी पशु सिद्ध हुआ है। कहते हैं, कभी-कभी जलाभाव की स्थिति में प्राण-संकट उपस्थित होने पर रेगिस्तानी ऊँटहारे अपने ऊँट को मारकर उसके जल-कोष से पानी लेकर अपनी प्राण-रक्षा करते हैं। जैसा कि लिखा जा चुका है, यह पेड़ों को ताजी पत्तियाँ खाकर अपनी उदर-पूर्ति कर लेता और उसी से स्वस्थ-सबल बना रहता है, तथापि ऊँट को अधिक बलवान बनाने के लिए कुछ ऊँटपालक दाना इत्यादि भी खिलाते हैं।

यों तो ऊँट को बहुत कम रोग होते हैं, किन्तु कोई रोग हो जाने पर जब यह धरती पकड़ लेता है तो बड़ी कठिनता से उठता है। आगन्तुक व्याधियों के लिए इसकी चिकित्सा-व्यवस्था घोड़े के समान ही करनी चाहिए।

सुअर या शूकर

सुअर पशु-जाति का बहुत ही गन्दा, घृणित और विचित्र पशु है इसका परम प्रिय और रुचिकर भोजन मानव-मल (विष्ठा) है। सुअर के पालन में देख-भाल और बहुत स्वल्प व्यय होता है। जिन स्थानों पर मानव मल-त्याग करता है, यह पशु उन स्थानों पर घूम-फिरकर बड़ी रुचि और स्वाद से मानव-मल का भक्षण करता है। इसके शरीर में चर्बी बहुत अधिक परिमाण में पायी जाती है। चर्बी से एलोपैथी की बहुत-सी उपयोगी और मूल्यवान औषधियाँ बनाई जाती हैं। पासी, खटिक आदि सुअरपालक इसकी चर्बी खाते भी हैं। सुअर के गले में लम्बे-लम्बे कड़े बाल होते हैं, जिनका उपयोग ब्रश बनाने में किया जाता है। कुछ विदेशी और जंगली सुअरों में यह बाल बहुत ही उत्तम श्रेणी का होता है और उससे बहुत मूल्यवान ब्रश बनते हैं।

अधिक मांस और बहुत चर्बी देनेवाले इस पशु को सरकार द्वारा शूकर फार्मों में बहुत बड़ी संख्या में पाला जाता है और ऊँची नस्ल के सुअर तैयार कर शूकरपालकों के हाथ बेचे जाते हैं। भारत के बड़े-बड़े बूचड़खानों में प्रतिदिन हजारों सुअर माँस के लिए काटे जाते हैं।

विभिन्न स्थानों पर सुअर की भी अनेक जातियाँ पायी जाती हैं। कुछ सुअर आकार-प्रकार में बहुत बड़े और वजनी होते हैं। जंगलों में पाये जानेवाले जंगली जाति के सुअरों के बड़े-बड़े दाँत होते हैं और ये बड़े ही खतरनाक होते हैं। बहुत-से शिकारी जंगली सुअरों का शिकार कर उसका मांस खाते हैं और उसकी चर्बी से लाभ उठाते हैं। वे जंगली सुअर मांसाहारी नहीं होते। इनका प्रमुख आहार कुछ जड़ें होती हैं। सामान्यतः पालतू सुअरों का मांस न खानेवाले मांसाहारी इन जंगली सुअरों का मांस बड़ी रुचि से खाते हैं। इन्हें वे शुद्ध मानते हैं।

भेड़ों की भाँति ही शूकर बड़ा मूर्ख पशु होता है। बनैले सुअरों का शिकार करनेवाले शिकारी सुअरों के आवागमन के मार्ग में गहरे गड्ढे खोदकर उसे साधारण घास-पात से ढँककर उस पर आम की गुठलियाँ तथा अन्य खाद्य रख देते हैं। उसे खाने के लालच में अनेक सुअर उसपर आकर गड्ढे में गिर जाते हैं, तब शिकारी लोग उन्हें सरलता से पकड़कर उपयोग में लाते हैं।

वैसे तो पालतू सुअरों का प्रमुख आहार मानव-मल ही है, किन्तु उपलब्ध होने पर ये आम, आम की गुठलियाँ, महुवा, गन्ना आदि भी बड़े मजे से खाते हैं। अधिक पुष्टि और मांसल बनाने के लिए शूकर-पालक इन्हें चावल का कना खिलाते हैं। यदि सुअरों को खुला छोड़ दिया जाता है तो अवसर मिलने पर ये आलू, गाजर, शकरकन्द अपने थूथन से खोदकर खा जाते हैं। इसके सिवा ककड़ी, खीरा, खरबूजा, मक्का आदि की फसल को भी, खुला छूट जाने पर मौका मिलने पर काफी नुकसान पहुँचाते हैं। भैंस की ही तरह यह भी कुछ ऐसा ढीठ और अलमस्त पशु होता है कि साइकिल की घंटी या आदमी की आवाज को अनसुना कर रास्ता नहीं छोड़ता और बहुधा साइकिल इससे टकरा जाती है।

इस पशु की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसकी वंश-वृद्धि बहुत तीव्र गति से होती है। कोई निश्चित नियम तो नहीं है—परन्तु शूकरी एक बार में २-३ से लेकर ८-१०, यहाँ तक कि १६-२० तक बच्चे जनती है और ७ मास से १२ मास के भीतर ही फिर गर्भवती हो जाती है। इसके खिलाने में भी कुछ व्यय नहीं है, अतः सुअरपालकों के लिए सुअरपालन अच्छा लाभप्रद व्यवसाय है।

कुत्ता

कुत्ता भी कुछ सीमा तक मानव के लिए उपयोगी पशु है। यद्यपि इसके पालने से कोई आर्थिक लाभ नहीं है, तथापि यह अपने कुछ सहज-स्वाभाविक गुणों से मनुष्य का प्रियपात्र बन गया है। कुत्ते का प्रथम गुण स्वामिभक्ति है। अपने स्वामी से यह बहुत प्यार करता है और अवसर मिलने पर अपनी जान की भी बाजी लगा देता है। इसके बहुत-से उदाहरण देखने को मिले हैं।

दूसरी विशेषता इस ग्राम-सिंह या श्वानदेव की यह है कि यह भैंस या स्वस्थ मनुष्य की भांति गहरी नींद में न सोकर हल्की नींद में सोता है। थोड़े-से ही खटके या पदचाप से ही तुरन्त जाग उठता है और भूँकने लगता है। इसके भूँकने से घर के लोगों और पड़ोसियों की नींद खुल जाती है और रात में यदि कोई चोर-उचक्का चोरी करने के उद्देश्य से घर में प्रविष्ट होने का प्रयास कर रहा है तो विवश और निराश होकर भाग जाता है। इस प्रकार यह रात में एक सजग प्रहरी का काम देता है। इसी से कुछ खाते-पीते लोग कुत्ता अवश्य पालते हैं। चौकन्नेपन के लिए नीति की कविताओं में "श्वाननिद्रा" का उदाहरण दिया जाता है। नगरों में तो प्रायः प्रत्येक बंगले में कुत्ता पाला जाता है।

इसके अतिरिक्त कुत्ता बहुत समझदार पशु है। इसे अपने-पराये की अच्छी पहचान है। जिस घर में यह पलता है, उस घर के छोटे-छोटे बच्चे यदि उसे मारते हैं, कान खींचते हैं या उसपर चढ़ते हैं, तो वह उन्हें नहीं काटता। किंतु यदि कोई अपरिचित आदमी द्वार पर आता है तो कुत्ता तुरन्त भूँककर उसकी ओर झपटता है। यदि पालक उसे वर्जित न करे तो कुत्ता उसे खदेड़ लेता है और काट लेता है। जंगल के खेतों के पास जहाँ बन्दर रहते हैं, किसान कुत्ते द्वारा बन्दरों से अपने फसल की रक्षा करते हैं।

कुत्ते में एक और प्रमुख विशेषता होती है और वह है इसकी घ्राण-शक्ति। कुत्ता किसी भी व्यक्ति के पैरों के निशान सूँघकर उसके गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता है। इसी गुण के कारण कुत्तों को प्रशिक्षित कर पुलिस-विभाग में अपराधियों का पता लगाने का काम लिया जाता है। इस कार्य में प्रशिक्षित कुत्तों ने कई बार बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सी० आई० डी० का "डॉग स्क्वाट" महत्वपूर्ण अंग है।

कुछ वनवासी और घुमक्कड़ जातियों के पास ऐसे दक्ष और तेज शिकारी कुत्ते होते हैं कि ये लोग यात्रा में अपने शिकारी कुत्तों द्वारा खरगोश, लोमड़ी, सियार आदि का शिकार करते और उनका मांस भक्षण करते हैं। इन स्कन्धगृही

(खानाबदोश) लोगों के कुत्ते इतने वेगगामी, स्फूर्तिमान और शक्तिशाली होते हैं कि शिकार को दूर से देखते ही विद्युत्वेग से झपटकर शिकार को तुरन्त ही दबोच लेते हैं। घरेलू कुत्ते इन शिकारी कुत्तों के समान फुर्तीले, क्षिप्रगामी और हिंसक नहीं होते।

देश और स्थान-भेद से कुत्तों के आकार-प्रकार और रूप-रंग के अनुसार कई भेद होते हैं। जाति-भेद और स्वाभाविक आकार-प्रकार के अतिरिक्त अच्छे आहार से भी कुत्ते बलवान और तगड़े हो जाते हैं। ठंडे और पहाड़ी स्थानों के कुत्तों के शरीर पर बड़े-बड़े बाल होते हैं जबकि गर्म-मैदानी क्षेत्रों के कुत्तों के शरीर पर छोटे-छोटे बाल होते हैं और वे पहाड़ी कुत्तों को अपेक्षा लघुकाय और दुर्बल होते हैं।

हमारे देश में सामान्यत: ४-५ प्रकार के कुत्ते पाये जाते हैं —

देशी—ये कुत्ते देशी कुत्तों और कुतियों की सन्तान होते हैं। इनमें अपने जातिगत स्वभाव के अतिरिक्त कोई विशेषता नहीं होती।

विलायती छोटे झबरे कुत्ते—ये कुत्ते करीब बिल्ली के बराबर होते हैं। इनके शरीर पर बड़े-बड़े घुंघराले बाल होते हैं। मुख अपेक्षाकृत कुछ चौड़ा और आकृति सुन्दर होती है। विदेशी मेमें तथा कुछ शौकीन भारतीय इन्हें पालते हैं। ये सदैव मानव-सम्पर्क में ही रहना पसन्द करते हैं। अज्ञानवश कुछ लोग इन्हें अपने बिल्कुल समीप रखते हैं, फलत: इनके संसर्ग से कभी-कभी भयंकर रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। क्योंकि प्राय: कुत्ते आदि छोटे जीव अनेक रोग-कारक जीवाणुओं के वाहक होते हैं।

ताजिया कुत्ते—ये कुत्ते इकहरे शरीर के काफी लम्बे और अत्यन्त फुर्तीले होते हैं। इन्हें शिकारी बड़े शौक से पालते हैं। झाड़-झंखाड़ आदि दुर्गम स्थानों में ये शिकार के पीछे आसानी से चले जाते हैं। इनसे शिकारी को शिकार करने में बड़ी सहायता मिलती है।

पहाड़ी कुत्ते—ये काफी बड़े आकार के, कन्धों पर बड़े-बड़े बालवाले, बड़े बलवान और डरावने होते हैं। कुछ बड़े आदमी इन्हें अपनी और अपने घर की सुरक्षा के लिए पालते हैं। इन कुत्तों को दूध-मांसादि पौष्टिक आहार की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। अपने स्वामी के संकेत पर ये किसी भी मनुष्य या पशु के टुकड़े टुकड़े कर दे सकते हैं। अतः इन्हें जंजीर में बांधकर रखना पड़ता है।

स्वभाव—कुत्तों का मूल स्वभाव तो सामान्यतः एक ही जैसा होता है, जैसे—स्वामिभक्ति, हल्की नींद, सन्तोष, अपने अपरिचित जाति-बन्धुओं को देखकर गुर्राना-भूंकना और लड़ पड़ना तथा ऊँचे स्थान पर टाँग उठाकर पेशाब करना आदि। किन्तु जाति-भेद से उनमें अपनी-अपनी कुछ विशेषता होती है। छोटी जाति के निर्बल कुत्ते प्रायः अकारण ही भूंका करते हैं और भय दिखाने पर दुम दबाकर भाग खड़े होते हैं, जबकि ताजिया और पहाड़ी कुत्ते बहुत कम भूंकते हैं और भय दिखाने पर तुरत आक्रमण कर देते हैं। कुत्तों में घ्राणशक्ति और मनुष्य के भावों की परख का अपूर्व गुण होता है।

आहार—कुत्ता मूलतः मांसाहारी प्राणी है। इनका सर्वाधिक प्रिय आहार मांस ही है। अपने से छोटे प्राणियों—खरगोश, लोमड़ी, सुअर के बच्चों, गिलहरी आदि को देखकर ये उनका शिकार करने के लिए फौरन झपट पड़ते हैं और शिकार पकड़ में आ गया तो उसे चटकर जाते हैं। किन्तु मांस तो सदैव मिल नहीं पाता। गाँवों के कुत्ते भोजन के समय कुछ रोटी आदि पाने की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं और भोजन के बाद कुछ रोटी पा जाते हैं। ऐसे लावारिस कुत्ते अधपेट भोजन से ही जीवन-यापन करते हैं। बड़ी जाति के पालतू कुत्तों को पालक कुछ दूध, मांस आदि देकर उन्हें पुष्ट और सबल बनाये रखते हैं।

स्वस्थ तथा रोगी पशु के लक्षण

मनुष्य अपने रोग और कष्ट के सम्बन्ध में अपनी वाणी द्वारा अपना भाव व्यक्त कर सकता है और चिकित्सक उसके बताने तथा स्वानुभव से उचित उपचार कर उसका कष्ट-निवारण करता है। किन्तु पशु एक मूक प्राणी है। रोगाक्रान्त

होने की अवस्था में भी वह अपनी व्यथा वाणी से तो प्रगट नहीं कर सकता, अतः उसके शारीरिक लक्षणों और चेष्टाओं को देखकर ही उसके रोग का निर्णय करना पड़ता है। वर्षों के अध्ययन और अनुभव के आधार पर मनुष्य को इतना ज्ञान प्राप्त हो चुका है कि पशु के लक्षणों से ही पशु-चिकित्सक या अनुभवी पशुपालक उसकी व्याधि का निदान कर लेते हैं। अतः यहाँ पर स्वस्थ पशुओं और रुग्ण पशुओं के पृथक्-पृथक् लक्षणों का विवरण दे रहे हैं, जिससे पशुपालक अपने पशु की अवस्था को देख-समझकर उसका उपचार और परिचर्या कर सकें।

स्वस्थ पशु के लक्षण

स्वस्थ पशु प्रसन्नचित्त और स्फूर्तिमय दिखाई देता है, और चारा-दाना बड़ी रुचि के साथ खाता है। उसे खाने के लिए जब अच्छा चारा-दाना दिया जाता है तो वह बड़ी प्रसन्नता से जल्दी-जल्दी खाने लगता है। भरपेट चारा खा लेने के कुछ ही देर बाद बड़ी देरतक जुगाली करता रहता है। स्वस्थ पशु अपने शरीर के आकार के अनुसार कम से कम दो बार भरपेट पानी पीता है। वह नित्य समय पर उचित मात्रा में सामान्य रंग का गोबर और पेशाब करता है। स्वस्थ पशु दिनभर में कम-से-कम ५-६ बार गोबर और मूत्र का त्याग करता है। उसके मल-मूत्र में किसी प्रकार की तीव्र, अप्रिय और असह्य दुर्गन्ध नहीं होती, वैसे साधारण गन्ध तो होती है। स्वस्थ पशु की आँखें सदैव तेजपूर्ण और चमकदार तथा रोमों और त्वचा में सदैव चमक-सी रहती है। उसके नथुने और थूथन सदा कुछ चमकीली-सी दिखाई देती हैं। स्वस्थ पशु सदैव अन्य दूसरे सजातीय पशुओं के सम्पर्क में रहना पसन्द करता है और उनके साथ चरने-घूमने, परस्पर लड़-लड़कर स्नेहपूर्वक खिलवाड़ करने में प्रसन्नता और उल्लास पाता है। स्वस्थ पशु अपनी पूँछ और कानों को सदा स्वाभाविक रूप से हिलाता-डुलाता रहता है तथा सदैव चुस्त, चैतन्य और प्रसन्न रहता है। स्वस्थ पशु के शरीर के ऊपर कहीं हाथ रखने पर वह शरीर को सिकोड़ने या थरथराने लगता है। किसी पक्षी या मक्खी आदि के बैठ जाने पर भी शरीर का वह भाग हिलाता है,

फिर भी न उड़ने पर पूँछ झटकाकर उड़ा देता है। स्वस्थ पशु की श्वास की गति प्रतिमिनट १०-१२ बार होती है और नाड़ी एक मिनट में ४०-५० बार चलती है। पशु की नाड़ी सदा पूँछ के नीचे देखी जाती है। गाय, बैल का तापमान १०१-१०२° फा०, भैंस का ९८·८° फा०, घोड़ा आदि का ९९·१° से १००·८° फा०, बकरी का १०१·७° से १०५·३° तक और ऊँट का ९४° से ९४·६° फा० होता है। पशु का तापमान भी पूँछ के नीचे गुदा-स्थान पर लिया जाता है।

अस्वस्थ पशुओं के लक्षण

वैसे तो रुग्ण पशुओं के विशेष लक्षण तो उनके रोग के प्रकार के अनुसार भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। किन्तु सामान्य रोगों की स्थिति में ये लक्षण प्रायः सभी पशुओं में दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें देखकर पशु के किसी रोग से ग्रस्त होने का पता चल जाता है।

रुग्ण पशु का सर्वप्रथम लक्षण तो यह होता है कि वह चारा-दाना आदि खाना बन्द कर देता है, यदि खाता भी है तो बहुत कम और अरुचि से, गाय, भैंस आदि वर्ग के पशु जुगाली करना बन्द कर देते हैं और यदि थोड़ी-बहुत करते भी हैं तो इतने धीरे, मानो उन्हें जुगाली करने में बहुत कष्ट हो रहा हो। यह पशु के रुग्ण होने का मुख्य लक्षण है। अस्वस्थ पशु अन्य पशुओं का समूह छोड़कर अलग चुपचाप जाकर खड़ा होता है, वह अकेला रहना ही पसन्द करता है और उदास रहता है। रोगी पशु पानी पीना या तो बिल्कुल छोड़ देता है अथवा बहुत कम पीता है। अथवा फिर कुछ विशेष रोगों में इतनी प्यास बढ़ जाती है कि वह बार-बार पानी पीने की इच्छा करता है। सामान्य रोगों में वह २-४ घूँट पानी पीकर ही रह जाता है। रुग्ण पशु की आँखें निस्तेज और धूमिल हो जाती हैं। उनसे कीचड़ और पानी बहने लगता है। नथुने और मुख का थूथुन सूखे-सूखे, चमक और तेजहीन हो जाते हैं। उसका शरीर दुर्बल, क्षीण और निस्तेज हो जाता है। रुग्ण पशु पूँछ, कान आदि स्वाभाविक रूप से हिलाना बन्द कर देता

है। कभी-कदा विवश होकर पूँछ थोड़ी ही हिलाता है। रुग्ण पशु मल-मूत्र भी स्वाभाविक रूप से नहीं करता, या तो बहुत कम करता है या बहुत अधिक बार बार करता है। उसका गोबर कभी-कभी अधिक सूखा और कड़ा, मटमैला या अधिक पतला दुर्गन्धित होता है। उसकी गुदा का बाहरी भाग गोबर करते समय लिथड़ जाता है, गोबर गुदा के आसपास चिपक जाता है, क्योंकि रुग्ण पशु का गोबर प्रायः लेसदार होता हैं। रुग्ण पशु शरीर का स्पर्श करने पर किसी प्रकार का स्फुरण या थरथराहट नहीं करता। वह के निश्चेष्ट-सा पड़ा रहता है। कौवे आदि भी यदि उस पर बैठ जाते हैं तो उन्हें शरीर हिलाकर या पूँछ झटकाकर उड़ाने में असमर्थ रहता है। रुग्ण पशु की श्वास की गति भी या तो सामान्य गति से बहुत कम हो जाती है या बहुत बढ़ जाती है। इसी प्रकार उसकी नाड़ी की गति भी या तो बहुत तेज हो जाती है या बहुत कम हो जाती है। श्वास या नाड़ी की गति का घट जाना या बढ़ जाना रोगानुसार होता है।

दुधारू पशु रुग्णावस्था में दूध या तो बिल्कुल बन्द कर देता है या बहुत कम देता है। रुग्ण पशु का दूध निकाल तो लेना चाहिए, किन्तु उसे किसी को खिलाना-पिलाना नहीं चाहिए। उस दूध के प्रयोग से रोगग्रस्त हो जाने की आशंका रहती है। रोगी पशु के कान प्रायः नीचे लटक जाते हैं और उसके रोम खड़े हो जाते हैं। कभी-कभी कानों की जड़ के पास का भाग गरम और आगे का भाग ठंडा हो जाता है। यह भी पशु के रुग्ण होने का लक्षण है। पशु का वेग से हाँफना, घबड़ाया हुआ-सा दीखना, एक ही स्थान पर व्याकुलता से चक्कर काटना, अपने स्वामी को कातरता से देखना आदि भी उसकी रुग्णावस्था के द्योतक हैं। इन सामान्य लक्षणों के अतिरिक्त कभी-कदा कुछ विशेष रोगों की अवस्था में पशु भूमि पर पड़े-पड़े व्याकुलता से करवट बदले, कभी जीभ को बार-बार बाहर निकाले तो ये लक्षण उसके रोग की तीव्रता और उसके कष्ट को प्रकट करते हैं। किसी-किसी रोग में पशु बार-बार कांपता, आँखें फाड़-फाड़ कर देखता और सारे शरीर पर ठंडा पसीना आ जाता है।

पशु की आँखें स्वस्थावस्था में लाल हो जाना पशु के गरमाने का लक्षण है। आँखें सफेद हो जाना सर्दी लगने तथा रक्त की कमी होने का द्योतक है। आँखें पीली होने पर यकृत-विकार और पाण्डु-रोग समझना चाहिए। पेशाब लाल होने पर गर्मी और सफेद होने पर शीत का अनुमान करना चाहिए। पशु का गोबर काला, पतला, दुर्गन्धित होने पर पाचन-क्रिया की विकृति, उदर-विकार या किसी संक्रामक रोग का प्रभाव समझना चाहिए। यदि गोबर शुष्क दीखे तो कब्ज, यकृत-विकार और यदि ऊँट की लेंड़ी के समान दीख पड़े तो कोष्ठ-विकार, पित्त-दोष आदि समझना चाहिए।

उपरोक्त लक्षणों को देख-समझकर कि पशु रुग्ण हो गया है, उसे अन्य पशुओं से अलग बाँध देना चाहिए। आगे रोगों के प्रकरण में लिखे गये लक्षणों के आधार पर उसके रोग का ठीक निदान करने का प्रयास करके तदनुसार उपचार करें या समीपस्थ पशु-चिकित्सालय में ले जाकर दिखलायें। रुग्ण पशु की परिचर्या, देखभाल और चिकित्सा पूर्ण मनोयोग और सहानुभूति से करना चाहिए। ये निरीह और मूकप्राणी न तो अपना कष्ट ही बताने में समर्थ हैं और न स्वयं अपने रोग-निवारण का कुछ यत्न कर सकते हैं, अतः पशुपालक का पावन कर्तव्य और नैतिक दायित्व है कि वह अपने रुग्ण पशु की सेवा-सुश्रूषा, देखभाल और उपचार बड़ी सावधानी और परिश्रम से करें।

रुग्ण पशु की परिचर्या और देखभाल

रोगी पशु की परिचर्या, उपचार और देखभाल में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

रुग्ण पशु को खुले स्थान में, जहाँ हवा के तेज झोंके आते हों, न बाँधकर छायादार, निर्वात स्थान में बाँधना चाहिए। तीव्र शीत से रक्षा के लिए पशु के शरीर पर मोटे टाट या मोटे दोहरे कपड़े की झूल या कम्बल आदि डालकर उसके शरीर को ढक देना चाहिए। यदि अत्यधिक शीत हो तो उसके आस-पास आग जलाकर उस स्थान का वायुमण्डल गर्म कर देना चाहिए। किन्तु आग जलाकर

पशु की कोठरी गर्म करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कमरे में खिड़कियाँ, झरोखे खुले हों, जिससे हवा आती रहे और धुवाँ भी बाहर निकल जाय। धुवाँ कोठरी में ही घुमड़ता रहा तो पशु के दम घुट जाने की आशंका है। रुग्ण पशु को मच्छरों, मक्खियों आदि से बचाने और वहाँ की वायु शुद्ध रखने के लिए उसके बाँधे जाने के स्थान पर नित्य प्रातः-सायं लोबान, गूगुल, राल गन्धक आदि कीटाणुनाशक वस्तुओं की धूनी कर देनी चाहिए। पशु के बाँधे जानेवाले स्थान की भूमि को स्वच्छ और कीटाणुरहित रखने तथा रुग्ण पशु के कीटाणुओं के प्रसार को रोकने के लिए वहाँ पर फिनाइल, सोडियम कार्बोनेट (कपड़ा धोने का सोडा), चूने के पानी, लाल दवा आदि कीटाणुनाशक औषधियों के घोल से प्रतिदिन प्रातः-सायं धोते रहना चाहिए। विशेषतः संक्रामक रोगों से आक्रान्त होने की अवस्था में तो यह विसंक्रमण क्रिया परमावश्यक है। कीटाणुनाशक दवाओं के विषय में कुछ आवश्यक जानकारी दी जा रही है—

फिनायल—फिनाइल एक भरोसे का कीटाणुनाशक द्रव्य है। १०० भाग पानी में ५ भाग फिनायल मिलाकर घोल बनाया जाता है। फिनायल की गंध देर तक रहती है। अतः दुधारू पशुओं के स्थान पर इसका प्रयोग न करना चाहिए। रोगी पशु के स्थान को कीटाणुरहित करने के लिए यह ठीक है।

चूना – चूना या कलई जिससे दीवालें पोती जाती हैं कीटाणुनाशक पदार्थ है। पानी में डालने पर चूना अपने-आप खौलने लगता है। जब खौलकर ठंडा हो जाय तो उससे दीवालें और फर्श पोत देना चाहिए। संक्रामक रोग से मुक्त हो जाने के पश्चात् तो चूना से पोताई करना परमावश्यक है जिससे उस स्थान के कीटाणु नष्ट हो जायँ। संक्रामक रोगों से ग्रस्त पशुओं के गोबर-पेशाब पर भी सूखी-सूखी कलई छिड़क देना चाहिए, जिससे उसमें उपस्थित कीटाणु मर जायँ और रोग अन्य पशुओं में न फैले।

धोने वाला सोडा (Sodium Corbonate)—कपड़ा धोने वाला, प्रत्येक पंसारी के यहाँ मिल जाता है। इसे खौलते हुए पानी में डालकर घोल बनाकर,

उस गर्म जल से ही पशु के बाँधे जाने के फर्श और उसके चारा खाने की चरही को धोकर कपड़े से पोंछ देना चाहिए।

चूने का क्लोराइड—यह दवा चूर्ण के रूप में मिलती है। ढाई-तीन किलो पानी में आधा किलो क्लोराइड मिलाकर घोल बनाया जाता है। इसमें कीटाणु-नाशक प्रभाव कम होता है, किन्तु दुर्गन्ध दूर कर देता है।

पोटैशियम परमैंगनेट (लाल दवा)— साधारण रोगों में इस औषधि का घोल कीटाणुरोधक दवा के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह पदार्थ प्रायः पेय-जल को शुद्ध और कीटाणु-रोधक बनाने के लिए प्रयुक्त है। यह विशेष कीटाणुनाशक नहीं है।

कोलतार—यह भी एक कीटाणुनाशक वस्तु है। अतः प्रायः दीवालों के नीचे के भागों पर कोलतार से पुताई की जाती है। इसमें केवल यह दोष है कि गर्मी के मौसम में पिघल जाता है और कपड़ों में लग जाने पर चिपक जाता है।

इनके सिवा डिटोल, लायसोल, लिस्टराइन, फोरमेल्डेहाइड आदि औषधियाँ भी रोगाणुनाशक (Antiseptic) होती हैं। इन्हें पानी में पर्याप्त बड़ी मात्रा में घोलकर स्प्रेयर द्वारा छिड़काव किया जाता है। ये सभी तीव्र गन्धवाली दवायें हैं।

रुग्ण पशु के रोग के लक्षणों को भलीभाँति देख समझकर दूसरे अनुभवी पशुपालकों से परामर्श लेकर उसके रोग का निदान निश्चित कर लेने के पश्चात् उसका उपचार करना चाहिए। ऐसा न हो कि अज्ञान और प्रमादवश उसे कोई विषैली औषधि अधिक परिमाण में दे दी जाय, जिससे उसे लाभ के स्थान पर हानि हो जाय और उसका प्राणान्त हो जाय। रुग्ण पशु की देखभाल और औषधियाँ देने का कार्य, लापरवाह नौकरों या नासमझ बच्चों पर न छोड़कर यथासम्भव स्वयं करें। उत्तरदायी और विश्वस्त नौकर को ही यह कार्य सौंपना चाहिए। रुग्ण पशु को दूसरे स्वस्थ पशुओं से दूर रखें। संक्रामक रोगों में पशु की सुश्रूषा करने-वाले व्यक्ति को अपनी सुरक्षा और स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए। अन्यथा स्वयं रोगग्रस्त होने और दूसरे स्वस्थ पशुओं के रोगाक्रान्त हो जाने की सम्भावना रहती है। रुग्ण पशु को शुद्ध हवा में रखना परमावश्यक है। शुद्ध वायु रोगाणु-

नाशक होती है। श्वास द्वारा शुद्ध वायु के प्रविष्ट होने से रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। सूर्य की धूप और ताप दोनों प्रबल रोगाणुनाशक हैं। अतः स्वस्थ और रुग्ण सभी पशुओं को कुछ देर ऐसे स्थान पर अवश्य रखना चाहिए जहाँ सूर्य की किरणें पशु के शरीर पर पड़ें। हाँ, गर्मी के दिनों में दोपहर की तेज धूप में अधिक समय तक न रखें। इसी प्रकार तीव्र शीत में रुग्ण पशु के आसपास आग जलाकर गर्मी पहुँचाना चाहिए जो लाभप्रद होगा। रुग्ण पशु की झूल या उसे ओढ़ाये गये कपड़ों को सोडे, साबुन या निरमा, सर्फ आदि डिटरजेंट पाउडर मिले पानी में भली-भाँति उबालना चाहिए तथा परिचर्या करने वाले व्यक्ति को भी अपने कपड़े नित्य उपरोक्त किसी चीज के घोल में उबालना चाहिए, जिससे अदृश्य कीटाणु मर जायें। रुग्ण पशु के गोबर-मूत्र को भी ब्लीचिंग पाउडर या कलई आदि डालकर कीटाणुरहित कर देना चाहिए।

रुग्ण पशु को नाल, ढरका (घोटा—बाँस की नली) या बोतल आदि से दवा पिलाते समय, या भूमि पर अशक्त पड़े हुए पशु को करवट बदलवाते समय, या उसे बाँस-लकड़ी आदि द्वारा उठाकर खड़ा करते समय या पशु को लिटाकर दवा लगाते समय उससे बलात्कार या निर्ममतापूर्ण व्यवहार न करके उसे पुचकारते-सहलाते हुए उससे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उसे तनिक भी कष्ट न हो या कम से कम कष्ट हो। रुग्ण पशु के साथ स्नेहपूर्ण सदय व्यवहार करना चाहिए। यदि किसी घाव या फोड़े आदि पर कोई तीव्र विषैली दवा लगानी हो तो बहुत सावधानी से लगायें, जिससे वह शरीर के अन्य कोमल अंगों—आँख, मुख, नाक आदि पर न लग जाये।

यदि पशु में किसी असामान्य और सांघातिक रोग के लक्षण दिखाई दें, आप यह अनुभव करें कि अब उसका उपचार करना आपके ज्ञान और सामर्थ्य से बाहर है तो उसे तुरन्त ही समीपस्थ पशु-चिकित्सालय ले जायें या पशु-डाक्टर को अपने यहाँ बुलाकर उसकी चिकित्सा करायें। इसमें तनिक भी प्रमाद न करें।

बहुत ही अशक्त होकर यदि रुग्ण पशु एक ही करवट पड़ा रहता है तो उसके नीचे की त्वचा सड़ने लगती है। अतः इस बात का ध्यान रखें कि पशु एक ही करवट न पड़ा रहे और उसे प्रतिदिन दो-एक बार और लोगों की सहायता से करवट बदलवा दें।

रुग्ण पशु के स्वस्थ हो जाने के उपरान्त उसे एकदम पेटभर चारा-दाना न देने लगना चाहिए, क्योंकि रुग्णावस्था में उसकी पाचन-शक्ति निर्बल हो जाती है और उसका सर्वांग शिथिल और दुर्बल हो जाता है। अतः उसका आहार क्रमशः धीरे-धीरे बढ़ाते हुए १०-१२ दिन बाद पूरी मात्रा में चारा-दाना दें, अन्यथा पशु के फिर बीमार हो जाने की आशंका रहती है।

उक्त नियमों का पालन करने से रुग्ण पशु शीघ्र ही नीरोग हो जायगा और अन्य पशुओं में भी रोग का प्रसार न होगा।

आवश्यक चिकित्सकीय निर्देशन

चिकित्सा चाहे मनुष्य की हो या पशु की, उसका प्रयोगात्मक ज्ञान आवश्यक और अनिवार्य है। निदान के अनुसार उपयुक्त और गुणकारी औषधियां उपलब्ध होने पर भी, यदि समुचित रूप से उसका प्रयोग न किया जाय तो कोई लाभ न होगा; अतः पशुओं को औषधियाँ देने की विधि जान लेना आवश्यक है। एतदर्थं पशुओं की औषधियों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य और आवश्यक बातों का सार संक्षिप्त रूप में उल्लेख किया जा रहा है।

पशुओं की विविध व्याधियों के प्रतिरोध और उपचार के लिए सहस्रों औषधियाँ—तेल, मिक्स्चर, चूर्ण, गोलियों, इन्जेक्शन, पलस्तर आदि के रूप में आविष्कृत और निर्मित हो चुकी हैं। पशु-चिकित्सा के लिए प्रयोग की जानेवाली मुख्य औषधियाँ सामान्यतः पाँच प्रकार की होती हैं।

(१) मुख से खिलाई जानेवाली औषधियाँ—जैसे गोलियाँ, चूर्ण, या कोई अन्य कल्क (लुगदी) के ढंग की औषधियाँ। ये औषधियाँ पशुओं को रोग

या गुड़ आदि के साथ खिलाई जाती हैं। कुछ मीठी दवायें पशु स्वयं ही खा लेते हैं।

(२) पीने की तरल औषधियाँ—जैसे तेल, काढ़ा या अन्य मिक्श्चर आदि को पिलाने के लिए सामान्यतः ढरका (घोटा—बाँस का चोंगा, बोतल का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी चिकित्सकीय निर्देशन में नलियों आदि के द्वारा भी दवा प्रविष्ट की जाती है। प्रत्येक दशा में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि दवा की पूरी मात्रा पशु के पेट में पहुँच जाय।

(३) बाहर लगाने की औषधियाँ—बाह्य प्रयोग की दवाओं में अनेक प्रकार के मलहम, तेल, पाउडर, पलस्तर आदि हैं। इन दवाओं का पशु पर प्रयोग करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आक्रांत स्थान को भली-भाँति साफ करके ही उनका प्रयोग किया जाय। एतदर्थं नीम की पत्तियाँ डालकर उबाले हुए पानी या डेटॉल आदि के लोशन का प्रयोग करना उपयुक्त है। दवाओं को किसी लकड़ी में रुई लपेटकर फुरेरी बनाकर उसमें उचित मात्रा में दवा लगाकर, हाथों को गरम पानी और साबुन से धो लें।

(४) डूश या एनिमा द्वारा प्रयोग की जानेवाली औषधियाँ—पशु के योनि-मार्ग से पिचकारी द्वारा भीतर दवा प्रविष्ट करना डूश और गुदा-मार्ग से प्रविष्ट करना एनिमा या हुकना देना कहा जाता है। डूश का प्रयोग किसी विशेष अंग, विशेषकर गुदा, योनि या मुख की सफाई के लिए किया जाता है। इसके लिए रबर की नली, तेल डालने की कुप्पी अथवा रबर की एक विशेष प्रकार की टोंटीदार चमड़े या रबर की मशक का प्रयोग किया जाता है। डूश देते समय पशु को स्थिर रखना आवश्यक है। दवा पूर्ण रूप से अभीष्ट स्थान तक पहुँच जाय इसका ध्यान रखना चाहिए। आँतों को साफ करने के लिए पशु को तीन दिन एनिमा देने की आवश्यकता होती है।

(५) इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग की जानेवाली औषधियाँ—इन्जेक्शन या सुई द्वारा प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ—कई गुणकारी औषधियों का सारतत्त्व लेकर निर्मित होती हैं। ये इन्जेक्शन द्वारा शरीर की आन्तरिक शिराओं या सीधे

रक्त में प्रविष्ट की जाती हैं, जिससे बहुत जल्दी उनका प्रभाव हो सके। शीघ्र प्रभावकारी होने के कारण ही मनुष्य तथा पशु के रोगों में इन्जेक्शन औषधि-प्रणाली का प्रचलन अधिक हो गया है। यद्यपि इन्जेक्शन के प्रयोग से वह रोग तो तुरन्त दब जाता है, किन्तु प्रायः उसकी हानिकर प्रक्रिया से अन्य व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, तथापि रोग के कष्टों का तत्काल निवारण करने में सद्यः प्रभावशाली होने से अधिकांश मनुष्य इन्जेक्शन का ही प्रयोग करना ठीक समझते हैं।

औषधियों की व्यवहार-विधि

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है खिलाने वाली औषधियाँ प्रायः गोलियों या चूर्ण के रूप में आती हैं। गोलियों को पहले खरल या सिल-बट्टे द्वारा कूट-पीस महीन चूर्ण कर किसी झीने वस्त्र या महीन चलनी से छानकर सूक्ष्मचूर्ण बना लें। फिर प्रयोग-विधि के अनुसार दवा को आटे या गुड़ या रोटी के अन्दर भरकर पकाकर खिला दें। कुछ सामान्य दवाओं के चूर्ण यों ही पशु की जीभ पर लगा दिये जाते हैं जिन्हें पशु चाट लेता है। हाँ, कड़वी दवाओं को नहीं चाटता, उन्हें आटे की लोई आदि में देना चाहिए। कुछ औषधियाँ पशु के चारे-दाने में मिला दी जाती हैं जिन्हें पशु खा लेता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से खिलाई जानेवाली औषधियाँ अलग-अलग रीति से खिलाई जाती हैं, जिनकी सेवन-विधि रोगों के प्रसंगानुसार आगे लिखी जायगी। पशुओं को खिलाई जानेवाली दवाएँ सामान्यतः विषैली नहीं होतीं। किन्तु यदि कोई औषधि विषैली हो तो उसे आटे की लोई या गुड़ के अन्दर लपेट कर ही खिलाना चाहिए। क्योंकि ऐसी औषधियाँ मुंह-जीभ में व्रण उत्पन्न कर देती हैं। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि विषैली औषधियाँ कूटे-पीसे जाने वाले खरल या सिल-बट्टे को भली-भाँति धोकर साफ कर लें।

मिक्श्चर, तेल, क्वाथ, घोल आदि तरल औषधियाँ जो पिलाई जाती हैं, उनमें कुछ शर्बत, चाशनी, तेल आदि के रूप में तैयार मिलती हैं, उन्हें वैसे ही

घोटा (ढरका) द्वारा पशु को पिलाया जाता है, किन्तु कुछ औषधियां पानी या किसी अन्य तरल वस्तु में घोलकर दी जाती हैं। सरलता से ठंडे पानी में न घुलनेवाली दवाओं को गरम पानी में घोलकर तैयार किया जाता है। गरम जल में न घुलने वाली दवाएँ जल में पकाकर चतुर्थांश क्वाथ बनाकर दिया जाता है। कुछ औषधियाँ एक निश्चित समय तक पानी में भिगोकर या सड़ाकर तरल रूप में बनाई जाती हैं। ये पेय औषधियाँ यदि पशु स्वतः न पी ले तो उसे किसी तसला या बाल्टी में भरकर पिलाना चाहिए अन्यथा घोटा या मजबूत बोतल द्वारा पिलाना चाहिए।

घोटा द्वारा औषधि पिलाने का उचित ढंग

घोटा (ढरका) या बोतल द्वारा औषधि पिलाने की उचित विधि यह है कि पशु के बायीं ओर खड़े होकर बायें हाथ से उसकी गरदन ऊपर उठाकर, उसका मुँह फैलाकर सावधानी से घोटा या बोतल उसके जबड़े में रखकर उसे ऊपर उठाकर धीरे धीरे उसके गले में उतार दें। बड़ा, बलवान या बिचकनेवाला पशु हो तो दो बलशाली आदमियों की आवश्यकता होती है। दवा पिलाते समय इस बात की सतर्कता बरतें कि दवा उसकी नाक में न चली जाय। दवा पिलाते समय यदि पशु खाँसने लगे तो तत्काल घोटा बाहर निकालकर उसका मुँह छोड़ दें, क्योंकि खाँसी के समय दवा पिलाने से दवा श्वासनलिका में चले जाने का डर रहता है।

औषधियों की मात्रा—आगे पशु रोगों के प्रसंग में पशुओं के अनेक रोगों की औषधियों की जो मात्रायें दी गयी हैं, उन्हें एक प्रौढ़ के लिए समझना चाहिए। अल्पायु पशुओं को उनकी आयु के अनुसार कम मात्रा देनी चाहिए। इसी प्रकार पशु की जाति, आयु, भार के अनुसार औषधि की मात्रा का ध्यान रखना चाहिए। एक ही आयु के हाथी, घोड़े और भेड़-बकरी के शरीर-भार और आकार में बड़ा अन्तर होता है, अतः इनकी औषधि मात्रा समान नहीं हो सकती। भेड़-बकरी की अपेक्षा हाथी के लिए अठगुनी मात्रा की आवश्यकता होगी।

इन्जेक्शन या टीके—एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली द्वारा आविष्कृत और प्रणीत इन्जेक्शन या टीके लगाने की रीति तत्काल प्रभावकारी और रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करनेवाली सिद्ध होने के कारण बहुत लोकप्रिय और सुप्रचलित है। इन्जेक्शन की छिद्रयुक्त सुई के द्वारा औषधि सीधे रक्त या मांस में प्रविष्ट कर दी जाती है, जिससे रक्त में उपस्थित कीटाणुओं का तत्काल संहार होकर सांघातिक और संक्रामक रोगों की रोक-थाम होती है। पशुओं के विविध रोगों, विशेषतया संक्रामक रोगों के लिए अत्युत्तम इन्जेक्शन तथा टीके निर्मित हो चुके हैं। किन्तु कोई अनुभवहीन अनभिज्ञ व्यक्ति न तो इन्जेक्शन लगा सकता है और न लगाने का प्रयत्न ही करना चाहिए। इन्जेक्शन सदैव प्रशिक्षित डाक्टर से, डाक्टर न हो तो अनुभवी कम्पाउण्डर से ही लगवाना चाहिए, क्योंकि गलत स्थान पर, गलत ढग से इन्जेक्शन लगा देने से पशु की तत्काल मृत्यु हो सकती है।

भाप, सेंक, धुआँ देने आदि के लिए पशु को स्थिर रखकर ठीक स्थान पर उनका प्रयोग निश्चित समय तक करना चाहिए। धूनी या भाप की सेंक कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए दी जाती है। यदि धूनी देना हो तो किसी मिट्टी की हाँड़ी में जलते हुए कोयलों की आग भरकर उसमें दवा डालकर हाँड़ी का मुख ऐसे ढक्कन से बन्द करें, जिसके बीच में छेद हो। उस छोटे छेद से ही हाँड़ी का धुआँ निकले। उस छेद के ऊपर रबर या लकड़ी की नली रखकर धुआँ सीधे पशु के उसी अंग पर दें, जहाँ धुआँ देने की आवश्यकता हो। अन्य अंग को बचायें। यदि भाप देनी हो तो पानी के साथ दवा को उबालें, जब पानी खौलकर भाप निकलने लगे तो उसी प्रकार छेद में नली लगाकर भाप भी सीधे वांछित भाग पर ही दें। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि धूनी या भाप निर्वात स्थान पर ही दी जाय, जिससे भाप या धुआँ उड़कर बाहर न चला जाय। यदि भाप या धूनी साँस द्वारा अन्दर प्रविष्ट करना हो तो धुयें या भाप के समीप पशु की नाक ले जायें, जिससे साँस के साथ वह भीतर जा सके। किन्तु ऐसी अवस्था में पशु की आँखों पर कपड़कर पट्टी बाँध देनी चाहिए; क्योंकि किसी-किसी औषधि का धुआँ या भाप आँखों के लिए हानि-

६

कर होता है। पशु को भाप या धूनी देने वाले व्यक्ति को स्वयं भी अपने नेत्रों और नाक की सुरक्षा का सम्यक् ध्यान रखना चाहिए।

एनिमा देने की विधि—एनिमा या डूश का प्रयोग पेट के आन्तरिक भाग तथा मेदे आदि साफ करने के लिए किया जाता है। डूश पशु की मूत्रनली, मूत्राशय आदि की सफाई के लिए दिया जाता है, जो योनि में लगाया जाता है और एनिमा मल-मार्ग (गुदा) द्वारा पेट, आन्त्र, मलाशय आदि को स्वच्छ करने के लिए दिया जाता है। इन कर्मों के लिए निम्नांकित उपकरण आवश्यक हैं—

एनिमा देने या डूश लगाने के लिए दो पाइण्ट का बड़ा एनिमा का डूश-केन होना चाहिए। इसमें पाट से जुड़ी हुई रबर की लम्बी नली लगी होती है, जो पशु की योनि या गुदा में प्रविष्ट करके उसके द्वारा तेजधार के साथ पानी प्रविष्ट किया जाता है।

यदि एनिमा-यन्त्र उपलब्ध न हो, तो कामचलाऊ एनिमा-यन्त्र इस प्रकार स्वयं बना लें। ढेबरी या लालटेन में तेल भरनेवाली एक बड़ी साइज की कीप (छव्वी या टीप)के नीचे के पतले भाग में पपीता या एरण्ड के पत्ते का २॥-३ फीट लम्बा डंठल लगा लें। इस डंठल के ऊपर के भाग को कीप में इस प्रकार फिट कर दें कि सांस न रहे। लगभग ८-१० लीटर पानी गुनगुना कर उसमें Pottassium Permagnate (लाल दवा) का ०·५ प्रतिशत घोल डालकर भली-भांति घोल लें या नीम की हरी पत्तियाँ डालकर उबाल लें। पानी कुछ ठंडा होने पर छानकर रख लें। हलके गरम पानी में डेटॉल डालकर भी पानी तैयार कर सकते हैं। यह पानी डूश देने के लिए उपयुक्त है। ध्यान रहे कि पानी अधिक गरम न हो। हाथ की कुहनी डुबोकर उसके तापमान का अनुमान कर लें।

एनिमा देने के लिए मनुष्यों के डूशकैन में, गुदा में प्रविष्ट करने के लिए रबड़ की नली के सिरे पर नॉजिल रहता है, वह पशु के लिए उपयुक्त नहीं है। रबड़ की नली के उस सिरे को जिसे गुदा-योनि में प्रविष्ट करना हो, तेज चाकू या छुरी से तराशकर इस प्रकार पतला, गोला और चिकना कर लें कि वह पशु की आन्तरिक त्वचा में चुभे नहीं।

उक्त सब वस्तुएँ तैयार करने के बाद पशु की पिछली दोनों टाँगों को इस प्रकार बाँध दें कि वह अधिक हिल-डुल न सके। फिर नली को नीम के तेल या कपूर मिले तिल तेल के तेल से चुपड़कर नीचे वाला शिरा पशु की गुदा अथवा योनि के अन्दर लगभग एक बित्ता धीरे-धीरे प्रविष्ट करें। नली का दूसरा सिरा जो कि टीप के साथ जुड़ा है या एनिमा पाट है, उसमें धार बाँधकर गंगासागर या बाल्टी द्वारा दवायुक्त पानी डालें। पानी डालनेवाला बर्तन पशु से काफी ऊँचा रखें, जिससे पानी आसानी से अन्दर जा सके। उस समय पशु को इधर-उधर हटने न दें, जब इस प्रकार काफी पानी अन्दर चला जायगा, तो पशु उसे निकालने के लिए जोर लगायेगा, किन्तु उस समय एक-दो मिनट तक कसकर दबाये रखें। १-२ मिनट तक पानी को अन्दर रोके रखने के पश्चात् छोड़ दें और नली बाहर खींच लें। पानी निकलना आरम्भ हो जायगा और उसके साथ ही अन्दर का जमा हुआ मल, कीड़े आदि सब बाहर आ जायेंगे। यह क्रिया २-३ दिन तक नित्य करने से शरीर के आन्तरिक अंगों की पूरी सफाई हो जायगी।

पशुओं के विविध रोग और उनका उपचार

मनुष्य की भाँति पालतू पशुओं को भी अनेक प्रकार के रोग होते हैं। कुछ रोग सूक्ष्म कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो सांघातिक होते हैं। अन्य कुछ रोग जीवाणुओं द्वारा या फफूँद द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो उतने भयंकर तो नहीं होते, समुचित उपचार से शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं। किन्तु यदि ठीक समय पर उचित और उपयुक्त उपचार न हो तो ये भी पशु के लिए घातक हो सकते हैं। अन्य रोगों में कुछ रोग किसी विशेष तत्त्व या पोषक-तत्वों की कमी या स्थानीय जलवायु-प्रदूषण से पैदा हो जाते हैं। कुछ परजीवी रोग अन्य कीटों-कृमियों, मच्छरों-मक्खियों आदि से उत्पन्न होते हैं। कुछ रोग पाचन-प्रणाली के विकारों, तीव्र शीत या धूप या वर्षा, चोट लगने या अन्य कारणों से उत्पन्न हो जाते हैं।

पशु के रोग स्थूल रूप से दो प्रमुख कोटियों में विभक्त किये गये हैं—

(१) संक्रामक या छूत के रोग (Contagious or Infectious diseases),

(२) साधारण रोग या बिना छूत के रोग (Non-Contagiousdiseases)

किसी पशु के रुग्ण हो जाने पर उसके संसर्ग में आनेवाले अन्य स्वस्थ पशु को उसी रोग से आक्रांत कर देने वाले रोग संक्रामक या छूत के रोग कहे जाते हैं, क्योंकि ये रोग, रोग के कीटाणुओं या सूक्ष्म कीटाणुओं से उत्पन्न होते हैं और ये सूक्ष्म कीटाणु रुग्ण पशु के मल-मूत्र, लार आदि द्वारा वायु में प्रसारित होकर अन्य पशुओं के शरीर में साँस द्वारा प्रविष्ट होकर उन्हें भी तत्काल उस रोग से आक्रांत कर देते हैं। जैसे—मनुष्यों को होनेवाले विशूचिका, प्लेग, चेचक आदि महामारियाँ भयंकर संक्रामक रोग हैं, उसी प्रकार पशुओं के संक्रामक रोग भी सांघातिक होते हैं। दूसरी श्रेणी के साधारण रोग बिना छूत के सामान्य रोग कहे जाते हैं, जो उतने भयंकर नहीं होते। तथापि इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि रुग्ण पशु को चाहे संक्रामक रोग हो या सामान्य, रुग्ण पशु के खाने से शेष चारा-दाना दूसरे स्वस्थ पशु को कदापि न दें। पहले तो बीमार पशु चारा-दाना खाता ही नहीं, कुछ खाता भी हो तो उतनाही दें, जितना सरलता से खा ले और शेष न रहे। यदि बच जाय तो उसे गोबर आदि के साथ खाद के गड्ढे में डाल दें। इसी प्रकार रुग्ण पशु का जूठा पानी भी दूसरे पशु को न पिलायें। इस प्रकार जूठे चारा-पानी के प्रयोग से रुग्ण पशु के रोग के कीटाणु दूसरे पशु में जाकर उसे रोगाक्रांत कर सकते हैं।

संक्रामक पशु-रोग (Infectious Diseases)

हमारे देश भारत में पशुओं में जो संकामक रोग सामान्यतः फैलते हैं, उनमें ८ प्रमुख रोग ये हैं—

१. खुरपका, मुँह पका (Foot & mouth Diseases)

२. मातारोग (Rinden pest)

३ गलाघोंटू रोग (Haemorrhagic septicaemia of Malignant Soar Throat)

४. विष-ज्वर या जहरी बुखार (Anthrax)

५. लँगड़ा ज्वर (B!ach Quarter)

६. क्षयरोग या तपेदिक (Tuberculosis)

७. निमोनिया या फेफड़े का ज्वर (Contagous pleuro Pneumonia)

८. सूखा रोग (John's Diseases)

ये संक्रामक रोग बहुत भयंकर और सांघातिक हैं; क्योंकि इन रोगों का इतना तीव्र वेग से आक्रमण होता है कि उपचार में एक-दो दिन का विलम्ब भी पशु के लिए प्राणघातक सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त ये रोग अन्य पशुओं में भी शीघ्र ही फैल जाते हैं। इनके सिवा कुछ और छुतहे रोग भी हैं जो उतने भयंकर नहीं हैं, और उपयुक्त उपचार से शीघ्र ही दूर हो जाते हैं। वे ये हैं—

१. चेचक (Cow Pox)

२. दुग्ध ज्वर (Milk fever)

३. छूत के कारण गर्भपात (Contagious Abortion)

४. छूत के कारण खूनी पेशाब (Red water)

५. गजचर्म या मैंज (Mange)

६. खुजली, खारिश (Pruritis-Scabies)

७. दाद (Ring worm)

८. कीड़े-मकोड़ों के दुम्बल, मूंजे या मनिया फूटना (Warble flies)

९. जूं (Lice)

उपर्युक्त संक्रामक रोगों में पहले के ८ भयानक रोगों के प्रभावी और आशु गुणकारी उपचार केवल एलोपैथिक इन्जेक्शन ही हैं। अतः यदि कभी आपके

किसी पशु को इनमें से कोई रोग हो जाय तो तत्काल समीपस्थ पशु-चिकित्सालय में ले जाकर दिखाना चाहिए या पशु-डॉक्टर को अपने यहाँ बुलाकर पशु की चिकित्सा करानी चाहिए। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही यदि उचित रीति से देशी चिकित्सा की जाय तो पशु स्वस्थ हो सकता है। किन्तु इन्जेक्शन अधिक विश्वस्त चिकित्सा है। शेष ९ छुतहे रोग अधिक भयानक नहीं हैं। ये रोग घरेलू चिकित्सा से भी अच्छे हो जाते हैं और एलोपैथिक उपचार से भी। अन्य स्वस्थ पशुओं को हर छूत के रुग्ण पशुओं से अलग रखकर सुरक्षित रखना आवश्यक है। पहले बताये गये ८ भयंकर संक्रामक रोगों का इस पुस्तक में देशी उपचार भी अंकित है और एलोपैथिक भी। डॉक्टरी एलोपैथिक चिकित्सा तत्काल उपलब्ध न होने की अवस्था में रोग का आरम्भ होते ही शीघ्र ही देशी उपचार आरम्भ कर देना चाहिए, जिससे रोग की रोकथाम हो जाय और बढ़ने न पाये। किन्तु अधिक उपयुक्त यही है कि भयंकर संक्रामक रोग का आरम्भ होते ही शीघ्र ही सरकारी पशु-चिकित्सालय के डॉक्टर को इसकी सूचना दें। वहाँ हर प्रकार के संक्रामक रोगों के प्रतिरोध और उपचार की औषधियाँ और इन्जेक्शन उपलब्ध रहते हैं।

संक्रामक रोगों के प्रतिरोध के उपाय

इस बात का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि संक्रामक रोग उन रोगों के सूक्ष्म कीटाणुओं से ही उत्पन्न होते और फैलते हैं। ये किटाणु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं और बिना दूरबीन के नंगी आँखों से नहीं देखे जा सकते। ये कीटाणु बहुत ही तीव्र गति से बढ़ते हैं। एक ही दिन में एक से हजारों कीटाणु हो जाते हैं। ये कीटाणु वायु द्वारा बड़ी तीव्रता से फैलते हैं। इसके अतिरिक्त रुग्ण पशु के मल-मूत्र, जूठे चारा-पानी, लार तथा पशु की सेवा करने वाले व्यक्ति के द्वारा भी अन्य पशुओं में इनका संक्रमण होता है। इसी कारण कोई संक्रामक पशुरोग जब किसी एक-दो पशु को हो जाता है, तो अन्य पशु भी उसी रोग से आक्रांत हो जाते हैं और यदि तत्काल ही उसकी रोकथाम न की गई तो सैकड़ों पशु उसी रोग से

मर जाते हैं। अतः किसी संक्रामक रोग का प्रसार आरम्भ होते ही अपने क्षेत्र के सरकारी पशु-चिकित्सालय के डॉक्टर को तत्काल उसकी सूचना दें अथवा गाँव-पंचायत के प्रधान या पंचायत सेवक या ग्रामसेवक द्वारा सूचना भिजवायें। सूचना मिलते ही वह गाँव आकर रुग्ण पशु की चिकित्सा करेगा और स्वस्थ पशुओं को टीके लगाकर रोग के प्रसार को रोकने का पूर्ण प्रयास करेगा। यदि सूचना देने पर भी पशु-चिकित्सक गाँव न आये तो स्वयं वहाँ जाकर उसे बुला लायें या अपने पशुओं को वहाँ ले जाकर टीके लगवा लें। यदि डाक्टर इसमें लापरवाही करे तो शीघ्र ही अपने गाँव के प्रधान के द्वारा या स्वयं जिला पशुधन अधिकारी या जिला अधिकारी को उसके प्रमाद की लिखित सूचना दें।

संक्रामक रोग के प्रसार के समय अपने स्वस्थ पशुओं को चराने के लिए मैदान में न ले जायें। घर में बाँधकर चारा-पानी दें। पशु की देखभाल सतर्कता से करें। यदि उसका मल-मूत्र साधारण रूप-रंग का न हो, पशु लँगड़ाकर चले, पागुर न करे, सुस्त दिखाई दे, मुँह से फेन आदि गिरे आदि किसी प्रकार के रोग के लक्षण प्रगट हों, तो उसे शीघ्र ही अन्य पशुओं से अलग कर दें। संक्रामक रोग के प्रसार के समय इस बात का ध्यान रखें कि पशुओं को सड़ा-गला चारा या दूसरे पशु का बचा जूठा चारा-दाना न दें। उनके बाँधने के स्थान पर सीलन न रहे; क्योंकि संक्रामक रोगों के कीटाणु गन्दगी में ही उत्पन्न होते हैं। बहुधा देखने में आया है कि बीमार पशु को तालाब में नहलाने से उसका पानी कीटाणुयुक्त हो जाने से, उसका पानी पीने से अन्य स्वस्थ पशु भी रुग्ण हो जाते हैं। अतः संक्रामक रोग के संक्रमणकाल में स्वस्थ पशुओं को तालाब का पानी न पिलाकर कुएँ का ताजा पानी पिलायें। रुग्ण पशु को तालाब में कदापि न नहलायें।

संक्रामक रोग से मरनेवाले पशु की खाल पैसे के लोभ में न उतरवाकर उसे भूमि में गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए, जिससे कुत्ते या सियार-भेड़िये आदि उसकी लाश को निकालकर क्षत-विक्षत कर रोग के कीटाणु न फैला सकें।

यदि आपका पशु रोगाक्रान्त हो गया है, तो उसे अन्य स्वस्थ पशुओं से अलग कर गाँव के बाहर छप्पर-झोंपड़ी डालकर वहाँ बाँधें। रुग्ण पशु के गोबर-मूत्र,

जुगाली के झाग आदि भी सूखी कलई या ब्लीचिंग पाउडर राख में मिलाकर उसके ऊपर बिखेरते रहें, जिससे कीटाणु मर जायें और रोग का प्रसार न हो सके। कलई या राख छिड़के हुए गोबर-मूत्र आदि को ताड़ के झाड़ू से खुरचकर गाँव के बाहर खाद के गड्ढे में डाल दें।

रुग्ण पशु की सुश्रूषा करने वाले व्यक्ति को भी यथेष्ट सतर्कता रखनी चाहिए। उसे डेटालयुक्त पानी या कार्बोलिक साबुन से नहाना तथा खौलते हुए पानी में कोई डिटरजेण्ट पाउडर डालकर अपने पहनने के वस्त्रों को साफ करने के पश्चात् ही घर या अन्य स्वस्थ पशुओं के पास जाना चाहिए।

रुग्ण पशु का दूध न तो उसके बच्चे को पिलाना चाहिए और न दुहकर स्वयं प्रयोग करना चाहिए। जब तक पशु पूर्णरूप से रोगमुक्त होकर स्वस्थ न हो जाय, उसके दूध का प्रयोग न करना चाहिए। हाँ, घी-दूध निकाल अवश्य लेना चाहिए और उसे बाहर फेंक देना चाहिए।

रुग्ण गाय, भैंस, बकरी के बच्चों को माँ के पास न जाने देना चाहिए, उसे दूर बांधकर रखें; अन्यथा उसके भी रुग्ण हो जाने की आशंका है।

इन सब बातों का ध्यान रखकर और पूर्ण सतर्कता रखकर आप संक्रामक रोगों के प्रसार का प्रतिरोध कर सकते हैं और अपने मूल्यवान पशुधन को नष्ट होने से बचा सकते हैं।

विभिन्न पशुओं के शरीर के तापमान, नाड़ी-गति और श्वास-गति

पशु के किसी रोग के सम्यक् निदान और उपयुक्त उपचार निश्चित करने के लिए उसके शरीर का तापमान, नाड़ी-गति और श्वास-गति का देखना आवश्यक है। पशु के शरीर का तापमान उसकी पूँछ के नीचे गुदा में थर्मामीटर लगाकर

देखा जाता है। एतदर्थ आवश्यक है कि विभिन्न पशुओं की स्वस्थ दशा का तापमान, नाड़ी-गति और श्वास-गति का ज्ञान हो। इसकी तालिका निम्नांकित है—

पशु की जाति	स्वस्थ दशा में तापमान
बैल-गायें	१०० से १०२ डिग्री फार्नहाइट के बीच
भैंसें-भैंसा	९८.८ ,, ,, ,, ,,
भेड़-बकरी	१०१.३ से १०५.०८ डिग्री फार्नहाइट के बीच
घोड़े-टट्टू आदि	१००.४ से १००.८ ,, ,, ,,
सुअर	१००.९ से १०४.९ ,, ,, ,,
ऊँट	सवेरे ९४ से ९८.६, शाम ९९ से १०७ ,,
कुत्ता	१००.९ से १०१.७ डिग्री फार्नहाइट के बीच
मुर्गा-मुर्गी	१०५ से १०७ ,, ,, ,,

स्वस्थ दशा में सामान्य नाड़ी-गति

बैल-गायें	४० से ५० प्रतिमिनट तक
भैंस-भैंसा	४० से ४५ ,, ,,
भेड़-बकरी	७० से ८० ,, ,,
घोड़ा-गधा	३२ से ४४ ,, ,,
ऊँट	२८ से ३२ ,, ,,
सुअर	६० से ८० ,, ,,
कुत्ता	८० से १२० ,, ,,
मुर्गा-मुर्गी	औसतन ३०० ,, ,,

विभिन्न पशुओं की सामान्य श्वास-गति

पशु	सामान्य श्वास-गति
गाय-बैल	२० से २५ प्रतिमिनट तक
भैंस-भैंसा	१६ " "
भेड़-बकरी	१२-२० " "
घोड़ा-गधा	८ से १६ " "
ऊँट	५ से ७ " " (दोपहर में कुछ बढ़ जाती है)
सुअर	१० से १६ प्रतिमिनट तक
कुत्ता	१० से ३० " "
मुर्गी-मुर्गा	१५ से ३० " "

तीव्र गर्मी या दोपहर तथा परिश्रम के समय सभी पशुओं की श्वास-गति कुछ बढ़ जाती है।

पशुओं की नाड़ी का ज्ञान उनके कान की जड़ के पास स्पर्श करके किया जाता है। ज्वर, दर्द की अवस्था आदि में नाड़ी अधिक तेज चलती है। दुर्बलता, दुबलेपन, अतिसार, रक्तस्राव की अधिकता से उत्पन्न निर्बलता आदि में नाड़ी सामान्य अवस्था से अपेक्षाकृत मन्द और क्षीण चलती है। घोड़े की नाड़ी को नीचे के जबड़े और नीचे के अगले दाँत के बीच के कोण पर कपूर सन्धि के अन्दर और पूँछ के नीचे स्पर्श करके देखना सुविधाजनक है। उसी प्रकार गाय या बैल में नाड़ी नीचे के जबड़े पर तथा पूँछ की जड़ के नीचे देखनी चाहिए। भेंड़, सुअर, कुत्तों की नाड़ी जाँघ के स्पर्श से देखनी चाहिए। हाथी में सामान्य नाड़ी की गति २५ से २८ बार प्रतिमिनट होती है।

तापमान—पशु का तापक्रम लेते समय थर्मामीटर को पशु की गुदा के अन्दर पूरी लम्बाई में प्रविष्ट करके कम से कम तीन मिनट रखकर टेम्परेचर देखा जाता है। लम्बी बीमारी या रक्तस्राव के कारण रक्ताल्पता की अवस्था में, शीतांग, गुर्दे

के कुछ रोगों, उपवास और पुरानी बीमारियों में तापक्रम सामान्य से कम हो जाता है और ज्वर, पीड़ा, उत्तेजना, तेज धूप में रहने आदि की अवस्था में सामान्य अवस्था से अधिक बढ़ जाता है।

पशुओं की महासंक्रामक महामारियां और उनकी चिकित्सा

(Contagious Diseases of Animals and their Treatments)

खुरपका-मुँहपका (Foot & Mouth)

खुरपका-मुँहपका रोग—जिसको देश के विभिन्न प्रदेशों में खुरहा, खुरिया, खुरफूटा, मुँह-पाँव का रोग, खुरपका, रुरी, फूटखूरा, खोंग, गेड़ा, खुसीढा आदि कहते हैं। फटे खुरवाले पशुओं—गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी इत्यादि को होनेवाला हमारे देश का एक बहुत ही संक्रामक और व्यापक रोग है। यद्यपि यह रोग सांघातिक नहीं है, इसमें पशु मरते तो नहीं हैं किन्तु इससे पशु बहुत निर्बल हो जाता है। इस रोग से आक्रान्त दुधारू पशुओं का दूध कम हो जाता है और श्रमशील पशुओं की कार्यक्षमता घट जाती है। सामान्यतः पशुपालक इस रोग की चिन्ता नहीं करते, इसलिए इसके उपचार आदि पर भी ध्यान नहीं देते। किन्तु रोग हो जाने पर प्रमाद करना उचित नहीं है। इस रोग में पशु को जो कष्ट होता है वह तो होता ही है, इस रोग की छूत से अन्य पशु भी इस रोग से शीघ्र ही आक्रांत हो जाते हैं। यह रोग असाध्य नहीं है। उचित उपचार से पशु कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है; किन्तु लापरवाही करने पर कभी-कभी खुरी गिर भी जाती है जिससे पशु सदैव के लिए बेकार हो जाता है और पशु की मृत्यु भी हो सकती है।

पशु के लँगड़ाकर चलने या उसके ओंठ लटक जाने और मुँह से लार गिरने से पशुपालक को इस रोग का पता चल जाता है। ये लक्षण अनेक पशुओं में एक साथ प्रगट होते हैं। छूत लगने के दो से तीन दिन बाद रोग के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। हल्का ज्वर सामान्यतः १०२° फा० से १०५° तक

रहने लगता है। पशु सुस्त और सिर झुकाये रहता है। जुगाली कम करता या बिल्कुल नहीं करता। चारा नहीं खाता। प्रमुख लक्षण यह है कि मुख के भीतर और खुरों के किनारे पर पीबयुक्त छाले और दाने हो जाते हैं। प्रायः छाले मटर के दाने के बराबर होते हैं। मुँह से लार बहती है और पशु अपने ओठ चाटता है। पशु बार-बार पैर झटकता है और कभी जीभ से चाटता है। उसके जबड़ों तथा जीभ आदि पर विभिन्न प्रकार के छाले पड़ जाते हैं, जो १८ से २४ घंटे के अन्दर स्वतः फूट जाते हैं। पाँवों के घावों के कारण पशु का चलना-फिरना कठिन हो जाता है। यह रोग लगभग दो सप्ताह तक रहता है और इसकी समाप्ति पशु के स्वस्थ हो जाने पर ही होती है, पशु के पैर के घावों में प्रायः कीड़े पड़ जाते हैं। जब समुचित चिकित्सा नहीं की जाती तो प्रायः खुरी गिर जाती है। पशु के खुर के और मुख के छालों के फूटने पर जो पानी निकलता है, उसमें इस रोग के विषाणु भरे रहते हैं। फूटने पर छालों के स्थान पर लाल-लाल घाव हो जाते हैं। पशु के मुख में छाले पड़ जाने के कारण वह कुछ खाने-पीने में असमर्थ रहता है, जिससे धीरे-धीरे दुर्बल हो जाता है। किन्तु दो-तीन सप्ताह बाद जब रोग की अवधि समाप्त हो जाती है, पशु पूर्ववत् क्रियाशील हो जाता है। यह रोग जब बहुत बढ़ जाता है तो कभी-कभी रुग्ण पशु के नथुने में भी छाले पड़ जाते हैं और मादा-पशुओं के अयन तथा स्तनों पर छाले होते देखे गये हैं। बहुधा भेड़-बकरियों के पैर के खुरों पर ही इस रोग के छाले होते हैं, मुख में नहीं।

इस रोग का कारण एक विशेष प्रकार का विषाणु (Virus) होता है, जो उच्चशक्ति के अनुवीक्षण यन्त्र (Microscope) के बिना दिखाई नहीं पड़ सकता। इस विषाणु का आकार एक मिलिमीटर का लाखवाँ भाग होता है। ये विषाणु चार प्रकार के होते हैं—ए. ओ. सी. और एशिया-१। इन चार प्रकार के विषाणुओं के अतिरिक्त भी कुछ जातियाँ होती हैं। इन पचीसों प्रकार के विषाणुओं का उद्गम स्थान भारत के भिन्न प्रान्त हैं। कुल मिलाकर इस रोग के ७४ प्रकार के विषाणुओं का पता चला है।

रोग-संक्रमण के कारण :—जूठा चारा खिलाने और रुग्ण पशु के निकट दूसरे पशु के रहने से यह रोग एक पशु से दूसरे पशु में प्रविष्ट हो जाता है। इस रोग से ग्रस्त पशुओं के मुँह से गिरनेवाली लार बहुत विषैली और विषाणु-युक्त होती है। जब भी यह लार स्वस्थ पशु के मुख, नाक के छिद्र, आँख या शरीर व खुर में लगे किसी घाव या खरोंच में लग जाती है, तो उसे भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। रुग्ण पशु की लार से लिप्त दूषित घास, चारे और दूध से इसका संक्रमण प्रसारित होता है। इस रोग के विषाणु उक्त वस्तुओं में प्रविष्ट होकर महीनों जीवित बने रहते हैं और अनुकूल परिस्थितियों में फैलकर एकाएक महामारी पैदा कर देते हैं। गाँवों के सार्वजनिक तालाबों, चारागाहों आदि से भी यह संक्रामक रोग फैलता है। बिक्री के लिए बाजार जाने वाले पशुओं, चारा-दाना पहुँचाने वालों, उनकी देखभाल करने वालों तथा दूध दुहनेवालों से भी इस रोग का संक्रमण फैल सकता है। इस रोग में सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात यह देखी गई है कि स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट पशु जितना इस रोग से आक्रांत होते हैं, उतना निर्बल और अल्पायु पशु नहीं।

पका रोग से सुरक्षा :—ज्योंही कोई पशु इस रोग से पीड़ित हो जाये, उसे अन्य पशुओं से अलग कर दें। रुग्ण पशु के लिए खुला और स्वच्छ हवादार स्थान बहुत उपयुक्त है। रुग्ण पशु के बाँधने के स्थान को सूखी कलई, फिनायल के द्वारा विषाणुरहित करते रहें और वहाँ गंधक, लोबान आदि की धूनी देते रहें। पशु को गन्दे और नमीवाले स्थान में न रखें। रोग के संक्रमण-काल में पशुओं के घावों और खुरों पर कर्पूरादि तेल लगाते रहें। यह कर्पूरादि तेल या कोई कीटाणुनाशक तेल रोगी-निरोगी दोनों प्रकार के पशुओं के खुरों पर दिन में कई बार चुपड़ते रहना चाहिये। पशुओं के संसर्ग में रहनेवाले व्यक्ति को भी अपने शरीर और वस्त्रों को कीटाणुनाशक घोलों से धोते रहना चाहिए। इस रोग के जो प्रतिरोधक टीके आविष्कृत हुए हैं, वे अन्य पशुओं को शीघ्र लगवा लें। देशी उपचार में पद-डुब्बी (Foot Bath) में रुग्ण पशु के अतिरिक्त स्वस्थ पशु के पैर डुबवाते रहने से इस रोग की आशंका कम हो जाती है।

ये सावधानियाँ इस रोग के प्रसार के प्रतिरोध में यथेष्ट सहायक और सुफलदायी सिद्ध होती हैं।

पका रोग का उपचार व सुरक्षा

खुरपका मुँहपका रोग से सुरक्षा के हेतु विविध वैक्सीनें जैसे—क्रिस्टल वायलेट वैक्सीन (Crystal Violet Vaccine) और एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड वैक्सीन (Aluminium Hydroxide Vaccine) इत्यादि प्रयोग की जाती हैं।

एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड वैक्सीन के एक टीके की मात्रा ३० मि० ली० है। यह वैक्सीन गर्मी से बिगड़ जाता है, अतः इसे सदैव २° से ८° से० ग्रे० तक तापमान (शीतल स्थान) पर रखना पड़ता है। इस वैक्सीन का टीका लगाने के पश्चात् पशु में रोगप्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होने में करीब १२ दिन लग जाते हैं और इसका प्रभाव ६ से ८ महीने तक रहता है। क्रिस्टल वायलेट वैक्सीन की एक मात्रा ३० से ४० मि० ली० तक है, जो पशु के शरीर के आकार तथा भार के अनुसार न्यूनाधिक हो सकती है। रुग्ण पशु पर इस टीके का प्रभाव बहुत धीरे-धीरे होता है। लगभग एक सप्ताह में इससे रोग दूर हो जाता है। टीका लगाने से दुधारू पशु के दूध में कुछ कमी नहीं होती।

नवीन अनुसंधान से टीके की मात्रा कम करने के लिए 'कंसेन्ट्रैटेड क्रिस्टल वायलेट वैक्सीन' का निर्माण किया गया है, जिसकी मात्रा केवल ५ मि० ली० होती है। बाहर गाँवों में जाकर इसका टीका लगाना अधिक सुविधाजनक होता है। यह वैक्सीन परीक्षणों से बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इसके प्रयोग से पशुओं को इस रोग के प्रति अत्यधिक रोगप्रतिरोधक शक्ति मिलती है।

कुछ समय पूर्व वैक्सीन निर्माण की एक और उत्तम विधि खोजकर 'टिश्यूकल्चर वेक्सीन' बनाई गई है। इनके अतिरिक्त 'इण्ट्राडर्मल वैक्सीन' का भी निर्माण हुआ है। परीक्षणों से सिद्ध हुआ है कि यह वैक्सीन अन्य दवाओं से

उत्तम और सस्ती भी है। एक सामान्य पशु के लिए इस टीके की औषधि की मात्रा २ मि० ली० (३० बूंद) है। इसके प्रयोग से पशु में रोग-निरोधक शक्ति अधिक समय तक रहती है। 'वेलिन की वैक्सीन' भी ऐसी ही प्रभावशाली है। इसकी एक मात्रा ३० से ४० मि० ली० तक होती है।

वाह्य उपचार :—मुँह और जीभ को पोटाशियम परमेंगनेट (लाल दवा) के १ : २००० गुलाबी लोशन या दो प्रतिशत फिटकिरी के पानी से धोना चाहिए। वोरिक लोशन भी उपयोगी है। पैरों के घावों को फिनायल के लोशन से धोना चाहिये या पोस्ता के डोंड़े और नीलाथोथा पानी में उबालकर उस पानी से धोयें। केवल १ प्रतिशत का नीलाथोथा के मिश्रण से धोना चाहिए।

कोलतार ५ भाग और नीलाथोथा १ भाग के मिश्रण से पाँव के घाव की भली-भाँति ड्रेसिंग करें। पशु को चलने-फिरने न दें।

बहुत-से खुरपका रोग से पीड़ित पशुओं की चिकित्सा एक साथ करने के लिए पैरडुब्बी प्रणाली (Foot Bath) बहुत उत्तम है। पशुओं के बाँधने के स्थान के पास या गाँव के बाहर पशुओं के आवागमन के मार्ग में ८–९ इंच गहरा, १०–१२ फीट लम्बा और रास्ते की पूरी चौड़ाई में एक पक्का गड्ढा बनवा दिया जाय। इस गड्ढे में १२ लिटर पानी में ३ ग्राम नीलाथोथा के चूर्ण के हिसाब से पानी या फिनायल या लाल दवा या किसी अन्य कीटाणुनाशक औषधि का घोल भर दें। इस प्रकार उस मार्ग से जितने भी पशु निकलेंगे उनके खुर-पैर उस घोल के गड्ढे में डूबेंगे और उनके खुरों के रोग के कीड़े मर जायंगे। जब बीमारी समाप्त हो जाय तो उस गड्ढे को मिट्टी से भर दिया जाय और जब फिर कभी खुरपका रोग का प्रकोप हो तो गड्ढे की मिट्टी निकालकर उसमें कीटाणुनाशक घोल भरकर उसका प्रयोग किया जाय। इस प्रकार इस रोग के लिए एक स्थायी गड्ढा होगा।

पशु के पैर को पानी में फिनायल मिलाकर धोयें और उसपर फिनायल का फाहा बाँधें। मेथिलेटेड स्प्रिट भी अच्छी कीटाणुनाशक होती है और घावों को

ठीक करती है। अतः इसका फाहा बनाकर उसे खुरों के बीच में प्रविष्ट कर दें। मुँह तथा थन इन कीट-नाशक दवाओं से नहीं धोया जा सकता। अतः उन्हें लाल-दवा के घोल से धोना चाहिए।

कुछ घरेलू उपचार

ज्वरनाशक औषधियाँ :—चूँकि इस रोग में पशु को तीव्र ज्वर आ जाता है जिससे वह निर्बल तो हो ही जाता है, ज्वर के कारण पशु खाता-पीता नहीं है और उसके घाव भी नहीं भर पाते; अतः उसका ज्वर उतारने की भी औषधि करनी चाहिए।

प्रारम्भ में जबकि पशु को ज्वर है, पाव-आध सेर देशी घी में चौथाई से आधी छटाँक पिसी हुई काली मिर्च मिलाकर पिला दें। इसके पिलाने से पशु को शक्ति और शान्ति मिलेगी। फिर एक तोला कलमीशोरा को सवा सेर पानी में घोलकर उसमें ९ ग्राम कपूर, २५ ग्राम शराब में घोलकर मिला दें। दोनों का मिश्रित घोल कर पशु को दिन में तीन बार पिलायें।

मुँह के छालों के लिए—बबूल की छालों को थोड़ा कूट कर पानी में उबाल कर उसमें कपड़ा भिगोकर मुँह के छालों पर रखें। इसी प्रकार १ (एक) तोला फिटकिरी को एक सेर पानी में उबालकर उससे छाले धोना और कपड़ा भिगोकर मुंह में रखना लाभदायक है। फिटकिरी और बबूल की छाल एक साथ पकाकर उससे कई बार पशु का मुख धोना गुणकारी है। इससे पैर का घाव भी धोया जा सकता है। पैर के घाव में मिट्टी के तेल में कपूर मिलाकर लगायें। यदि घाव अधिक कष्टदायी हो तो उसमें कपड़ा भिगोकर बाँधें। घाव के कीड़े नष्ट करने के लिए शरीफे की पत्तियों का रस घाव में भरना चाहिए। खुरों के घावों में कोयले का महीन चूर्ण अलसी के तेल में मिलाकर लगाना लाभप्रद है।

१ छटांक सुहागा आग में फुलाकर पीस लें। इसमें १ तोला कपूर पीसकर मिलाकर पाव भर शहद में मिलाकर पशु के मुख के घावों में दिन में ४-६ बार लगाने से मुख के जख्म जल्दी ही ठीक हो जाते हैं।

इस रोग में पशु को आम-जामुन की पत्तियाँ और नित्य एक प्याज खिलाना लाभदायक है।

यदि पशु के अयन और थन में घाव हो गये हों तो नारियल के तेल में जस्ते की भस्म मिलाकर लगाना चाहिए।

यदि खुरी गिर गई हो तो तूतिया ५० ग्रा०, फिटकिरी १०० ग्राम, खड़िया मिट्टी और कोयला २००-२०० ग्राम सबको महीन पीसकर रख लें। इसे प्रतिदिन भुरककर पट्टी बांध दिया करें।

यदि मांस खुरियों में बढ़ आया हो तो तूतिया के रगड़ने से ठीक हो जायगा।

भेड़-बकरियों का खुरगलन रोग

सामान्यत: भेड़-बकरियों में अधिकता से फैलनेवाला यह रोग खुरपका रोग से कुछ मिलता-जुलता संक्रामक रोग है। जब इस रोग का संक्रमण होता है तो सैकड़ों भेड़-बकरियाँ इससे आक्रांत हो जाती हैं। भारत के कुछ खेड़ों में यह रोग प्राय: देखा जाता है।

रोगी भेड़ के जिस एक खुर या कई खुरों में यह रोग होता है, उससे वह लँगड़ाने लगती है और उसे चलने-फिरने में बहुत कष्ट होता है। खुर कुछ बढ़ जाता है और पैर भद्दा-सा तथा बेडौल हो जाता है। वह घूम-फिर कर चर नहीं पाती, फलत: दिन-प्रतिदिन निर्बल होती जाती है और शरीर का भार कम होता जाता है। खुर के कोमल उतकों में गलन उत्पन्न हो जाती है तथा उसमें पीब पैदा हो जाती है और खुर या तो लटकने लगते हैं या अलग होकर गिर जाते हैं। खुरों की जड़ का भाग सड़कर बिल्कुल नरम और पिलपिला हो जाता है और

उससे दुर्गन्ध आने लगती है। यदि इसे छुरी आदि से छीलकर देखा जाय, तो उसमें एक सूखा खरोंट पड़ा हुआ घाव-सा दीखता है।

उपचार :—ग्रीष्मकाल में जब यह मंद होता है, भेड़-बकरियों के खुरों की अच्छी तरह जाँच करनी चाहिए और रोगी खुरों को काट-छाँटकर ठीक कर देना चाहिए।

१० प्रतिशत नीलाथोथा मिले पानी को लम्बी-चौड़ी पक्की नाली में भरकर दिन में दो बार करीब आधा-आधा घंटे खड़े रखना चाहिए। नाली इतनी गहरी हो कि उनके पैर खुर से १ इंच ऊपर तक डूबे रहें। यह उपचार पशु के खुर ठीक न होने तक चालू रखना चाहिए। पानी भरे चारागाहों में पशुओं को न चराया जाय जिससे चरते समय उनके पैर कीचड़ में न फंसें। संक्रामक रोग होने के कारण इस रोग की रोकथाम के लिए नीरोग पशुओं को रुग्ण पशुओं से अलग रखना चाहिए और छूत के प्रतिरोध के लिए पूर्वकथित नियमों का पालन करते रहना चाहिए।

शीतलामाता (Rinderpest)

माता रोग या शीतलामाता अथवा महामारी कहा जानेवाला यह भयंकर संक्रामक रोग फटे हुए खुर वाले और जुगाली करने वाले सभी पशुओं को हो सकता है, किन्तु इस रोग से अधिकतर गायें, भैंसें, भेड़ें और बकरियाँ आक्रांत होती हैं। यदि इस रोग की भलीप्रकार रोकथाम और सुरक्षा न की जाय तो एक पशु के रुग्ण होने पर आस-पास के क्षेत्र के सैकड़ों पशुओं में इस रोग का प्रसार हो जाता है। यह पशुओं का प्राणघातक संक्रामक रोग है। यह रोग प्रायः पहाड़ी क्षेत्रों के पशुओं में अधिक और मैदानी क्षेत्रों में अपेक्षाकृत कम होता है। इस रोग से अनुमानतः ४ से ५ लाख पशु प्रतिवर्ष पीड़ित होकर मर जाते हैं, और जो रोगाक्रांत होकर चिकित्सा से बचा लिये जाते हैं, उनमें बैल, डाँगर आदि परिश्रमी पशुओं की शक्ति बहुत कम हो जाती है तथा दुधारू पशुओं का दूध बहुत कम हो जाता है।

इस रोग का कारण एक विशेष प्रकार का विषाणु (वायरस) होता है। इस रोग के विषाणु प्रायः पशु की लार, मुख के फेन, आँख व नाक से बहनेवाले स्राव तथा गोबर-मूत्र में पाये जाते हैं। यह रोग वायु, जल, चारे-दाने, बर्तन, पशु की सेवा करनेवाले व्यक्ति द्वारा एक रुग्ण पशु से अन्य स्वस्थ पशुओं में फैलता जाता है।

लक्षण :—किसी स्वस्थ पशु को इस रोग का संक्रमण लगने के चौथे या छठे दिन के भीतर रोग के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। सर्वप्रथम पशु को तीव्र ज्वर चढ़ता है, जो २४ घण्टे में बढ़कर १०४ से १०६ डि० फा० हा० तक पहुँच जाता है। उस समय पशु अत्यधिक शिथिल होकर काँपता है, रोयें खड़े हो जाते हैं, आँखों की पुतलियां सिकुड़ जाती हैं, नाक के नथुने शुष्क हो जाते हैं, पीठ अकड़कर कमान की तरह मुड़ जाती है। पशु चारा खाना छोड़ देता है, बहुत व्याकुलता, निर्बलता और सुस्ती प्रतीत होती है। मुँह, मुख के भीतर, जीभ, तालू, मसूढ़ों की श्लेष्मिककला तक पहुँच जाते हैं। जिसके कारण पांचवें या छठवें दिन अधिकता से दुर्गन्धित पतले दस्त आने लगते हैं। मुँह और आँख से गाढ़ा स्राव बहता है। प्रायः न्यूमोनिया की भी व्याधि उत्पन्न हो जाती है। प्यास बहुत लगती है, पशु दांत पीसता है, पट्ठे ऐंठने लगते हैं, कान और गर्दन लटक जाती है। मुख के छालों और प्रबल अतिसार के कारण पशु कुछ खा-पी सकने में असमर्थ होने के कारण बहुत ही दुर्बल अस्थि-कंकालमात्र रह जाता है। सामान्यतः ८-१० दिन तक इसी अवस्था में रहकर पशु मर जाता है। परन्तु यदि २०-२५ दिन तक रोग के वेग को झेल जाता है, तो प्रायः बच जाता है।

गाय, भैंस, बैल इत्यादि पशुओं के सिवा यह रोग भेड़-बकरियों को भी होता है, जो इसी रोग के विषाणुओं से पैदा होता है, किन्तु भेड़-बकरियों में इस रोग के लक्षण गाय, भैंस आदि से पूर्णतः पृथक् होते हैं। मैदानी क्षेत्रों में तो ये लक्षण बिल्कुल नहीं देखे जाते। भेड़-बकरियों के मुंह में छाले नहीं पड़ते। प्रबल अतिसार, शिथिलता, न्यूमोनिया हो जाना ही प्रमुख लक्षण होते हैं। भेड़-बकरियों

पर इस रोग का संक्रमण होने पर वे प्रायः मर ही जाती हैं, क्योंकि वे इस रोग की तीव्रता सहन करने में अक्षम होती हैं।

सुरक्षा :—रुग्ण पशु को अन्य पशुओं से तुरन्त अलग कर दें। इस रोग की सूचना शीघ्र ही अपने क्षेत्र के पशु-चिकित्सालय को दें। एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में इस रोग की रोकथाम के लिए कई प्रकार के टीके और इन्जेक्शन आविष्कृत हुए हैं। माता रोगनाशक सीरम रोग में बहुत सफल रोगावरोधक सिद्ध हुई है। यह सीरम रोगी पशु तथा अन्य स्वस्थ पशुओं को लगवा दें। सुरक्षा के लिए 'एण्टी रिण्डर पेस्ट सोरम' के अतिरिक्त अन्य दूसरे इन्जेक्शन भी इस कार्य के लिए प्रयुक्त होते हैं। पशु-शाला की स्वच्छता की विशेष व्यवस्था रखें। वहाँ सूखी कलई छिड़कें। नीम की सूखी पत्तियों, गन्धक, लोबान की धूनी दें। इस रोग से बचाने के लिए सभी पशुओं को इन्जेक्शन लगवा दें। केवल एक बार इन्जेक्शन लगने से जीवन भर यह रोग होने का भय नहीं रहता। रोग फैलने पर पशुओं को इधर-उधर घूमने-चरने न दें। रुग्ण पशु तथा उनके सम्पर्क में रहने वाले पशुओं को शीतला अवरोधक सीरम का इन्जेक्शन लगवायें।

जब किसी पशु को समीप ही यह रोग हो जाय तो अपने पशुओं को महुवा खिलायें। बहुत-से अनुभवी लोगों की सम्मति है कि महुआ के फूल खिलाने से पशु के शरीर में माता रोगप्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो जाती है और उनपर इस रोग का संक्रमण नहीं होता। अनुभवी लोग सेमर के बीज को भी माता-रोगनिरोधक कहते हैं। माता निकलने से पूर्व सबल पशु को २५ सेमर के बीज गुड़ के साथ प्रथम बार, चार घण्टे बाद २८ बीज दूसरी बार दें। दूसरे दिन प्रथम बार १५ बीज, १२ घंटे बाद दूसरी बार १० बीज। तीसरे दिन प्रथम बार ७ बीज, दूसरी बार ३ और तीसरी बार केवल १ बीज। बछड़े या बछिया को पहले दिन प्रथम बार ७ और दूसरी बार ३ बीज, दूसरे दिन प्रथम बार २, दूसरी बार एक और तीसरे दिन एक बार केवल एक बीज।

पशु को कुएँ का लाल दवा मिला पानी पिलायें। पशु-सेवक को चाहिए कि जब तक वह नीम की पत्तियाँ डालकर उबाले हुए पानी या लाइफब्वाय या कार्बोलिक

साबुन से भली-भाँति स्नान न कर ले और अपने कपड़ों को उबलते पानी में डालकर साफ न कर ले, तब तक अन्य स्वस्थ पशुओं के पास न जाय। यदि पशु मर जाय तो या तो उसे जला दें या भूमि में गहरा गड्ढा खोदकर उसको गाड़ दें। उसकी खाल न निकलवायें।

चिकित्सा

माता रोगनाशक सीरम की मात्रा देशी नस्ल की गायों-बैलों को २० घ० से० मी०, भैंस के शरीर के आकार के अनुपात के अनुसार ५० घ० से० मी० १०० घ० से० मी० तक, संकर जाति के पशुओं को भी १०० घ० से० मी० तक, भेड़-बकरियों को १० घ० से० मी० प्रति पशु दवा का टीका लगवायें। इस सीरम का टीका लगवाने के १५ दिन पश्चात् उनको निम्नांकित किसी उपयुक्त वैक्सीन का टीका लगवा देना चाहिए। अधिक मूल्यवान पशुओं को रोग मुक्ति हेतु सीरम साइनलटेंनियम विधि द्वारा सरकारी पशु-चिकित्सालय में टीके लगवा दें।

रिंडर पेस्ट की रोकथाम और उपचार के लिए मातानाशक सीरम के अतिरिक्त निम्नांकित तीन प्रकार के सीरम उपलब्ध हैं—

(१) गोट वाइरस या गोट एडेप्टेड वाइरस (Goat Virus or Goat Adapted Virus)

(२) रैबिट एडेप्टेड या लेपीनाइज्ड वाइरस (Robbit Adapted or Lepinised Virus)

(३) चिक एम्ब्रियो एडेप्टेड या एवियोनाइज्ड वाइरस (Chick Embrio Adapted or Avionised Virus)

इन तीनों टीकों में गोट वाइरस ही सबसे अधिक लाभप्रद और प्रभावशाली सिद्ध हुई है; क्योंकि इसके एक बार के प्रयोग से करीब १२ साल तक रोग के आक्रमण की सम्भावना नहीं रहती, जबकि रैबिट वाइरस का प्रभाव केवल ४ वर्ष ही रहता है। मुर्गी के अण्डों में पालित विषाणुओं से निर्मित तीसरी वैक्सीन उन पशुओं के लिए उपयुक्त सिद्ध हुआ है, जिनको केवल 'गोट वाइरस'

लगाना भयप्रद होता है। किन्तु यह वैक्सीन लगभग ४० डि० से० तापमान में फ्रिज करके रखना आवश्यक है, अन्यथा यह शीघ्र ही बिगड़ जाती है। गर्मी में नहीं रखी जा सकती। अतः बाहर भेजने योग्य नहीं है। वैज्ञानिक इसे सूखे टीके के रूप में बनाने का प्रयास कर रहे हैं, जिससे बाहर भेजी जा सके।

यद्यपि इस रोग में पूर्ण विश्वस्त और प्रभावशाली उपचार और प्रतिरोध के मुख्य साधन उक्त टीके ही हैं, तथापि कुछ अन्य उपचार भी हैं, जो यथावसर प्रयुक्त होते हैं और सफल होते हैं।

१ से २ ड्राम टिंचर आयोडीन पानी में मिलाकर पशु को पिलाते रहने से पशु रोग से सुरक्षित रहता है और रुग्ण पशु को पिलाने से उसके रोग के कीटाणुओं को नष्ट कर देती है। यह भी यथेष्ट गुणकारी और प्रभावशाली है। 'कुनीन' नामक एलोपैथिक दवा ४-४ ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार खिलाने से भी पशु इस रोग के संक्रमण से बचा रहता है।

सोल्यूशन आयोडीन का इन्जेक्शन भी इस रोग में यथेष्ट गुणकारी है, किन्तु इसका प्रभाव ८-१० दिन तक ही रहता है; इसलिए ८-१० दिन बाद पुनः इंजेक्शन लगवाना आवश्यक होता है। यदि पशु की प्रारम्भिक रुग्णावस्था में ही ये इंजेक्शन लगवायें जायें, तो रोग का वेग अधिक नहीं होता और पशु बच सकता है। नित्य लाल दवा मिला हुआ पानी पिलाते रहने से रोग के कीटाणुओं पर नियंत्रण होता है। निकटस्थ क्षेत्र में इस रोग का प्रसार होते ही स्वस्थ पशुओं को लाल दवायुक्त पानी ही प्रतिदिन पिलाना चाहिए।

रुग्ण पशुओं को स्वच्छ हवादार और प्रकाशयुक्त स्थान में रखना और ताजा चारा खिलाना चाहिए।

गलघोंटू

Haemorrhagic Septicaemia Malignant Sore Throat

गलघोंटू, गलफुलवा, गलसा, घुड़का, घुरवा, बेल्लई, घटरोदन आदि नामों से अभिहित यह भयंकर संक्रामक रोग पास्चूरेला सैप्टिका नामक एक अति सूक्ष्म

ग्राम निगेटिव कोक्रो वैसिलस रोगाणु द्वारा उत्पन्न होता है। यह रोगाणु गायों-भैंसों के अतिरिक्त अन्य पशुओं में भी गलघोंटू रोग उत्पन्न करता है। माता रोग (Rinder Pest) के बाद दूसरे नम्बर का भयंकर विनाशकारी रोग यही है। इसका छूत भी अन्य प्रशुओं में बड़ी शीघ्रता से फैलता है और हजारों पशु प्रतिवर्ष इस रोग में कालकवलित हो जाते हैं। सामान्यतः यह रोग उन निचले स्थानों में अधिक फैलता है, जो कि वरसात में पानी से डूबे रहते हैं। जब यह कीटाणु मुर्गियों पर आक्रमण करता है, तो इससे उत्पन्न हुए रोग को 'फाउल कालरा' कहते हैं। यद्यपि यह रोग कभी भी हो सकता है, किन्तु वर्षा ऋतु में प्रायः अधिक होता है। इसका संक्रमण एक पशु से दूसरे पशु में कीटाणुओं द्वारा पहुँचता है। कई प्रकार के सूक्ष्म कीटाणु भिन्न-भिन्न प्रकार के पशुओं को रोगाक्रांत करते हैं।

इस रोग के कीटाणु पशु के शरीर में ही जीवित रहकर बढ़ते हैं। वाह्य रूप से पूर्ण स्वस्थ दिखाई देने वाले अनेक पशुओं को श्वासनली के ऊपरी भाग में ये रोगाणु पाये जाते हैं और वर्षारम्भ होने पर इन्हीं पशुओं द्वारा यह रोग फैल जाता है। प्रायः दुर्बल पशु इस रोग से अधिक आक्रांत होते हैं और ये जीवाणु शीघ्र ही गलघोंटू रोग उत्पन्न कर देते हैं। प्रायः सामान्य रूप से यह देखने में आता है कि अधिक आयुवाले पशुओं की अपेक्षा कम आयुवाले पशुओं को और गोवंश की अपेक्षा भैंस वंश को अधिक ग्रस्त करता है। इस रोग के आरम्भ होने पर यह विशाल और विकराल भयंकर रूप धारण कर लेता है। इसका संक्रमण अतिशीघ्र फैलता है। पशु का इस रोग की छूत लग जाने के ६ घंटे पश्चात् से दो दिन के अन्दर इस रोग के लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

लक्षण—इस रोग का आरम्भ अचानक तीव्र ज्वर से होता है। पशु शीघ्र ही निर्बल हो जाता है। यहाँ तक कि यह रोग कुछ ही घंटों में पशु का प्राणान्त कर देता है। ज्वर के साथ ही उसके सिर, गर्दन के आसपास या किसी अंग में सूजन आ जाती है, जिसके कारण कोई भी वस्तु गले से नीचे नहीं उतरती। यदि पशु २४ घंटे से अधिक इस रोग के प्रचंड वेग को झेल ले जाता है तो उसकी आँतों में

भी सूजन आ जाती है और तीव्र वेदना से व्याकुल होकर वह छटपटाता है। तत्पश्चात् उसे खूनी दस्त आने लग जाते हैं। फिर ब्रांकोनिमोनिया जैसे लक्षण प्रगट होते हैं। साँस लेने में कठिनाई, फेफड़ों में पीड़ा, धाँसना आदि कष्ट होते हैं। पशु के होंठ काफी लाल हो जाते हैं और मुँह से लार बहती है। गले में सूजन बहुत तेजी से बढ़ती जाती है जिससे श्वास रुककर मृत्यु हो जाती है। रोग के आरम्भ में तो कब्ज और पेट में दर्द होता है, फिर दस्त आने लगते हैं। कंठ, सिर, गर्दन की सूजन बढ़कर अगले पैरों, कंधों और कभी-कभी पशु के पूरे अगले भाग पर आ जाती है। सूजन के स्थान पर जलन और पीड़ा होती है। साथ ही पशु की आँखें फूल जाती हैं, जीभ काली होकर बाहर लटक जाती है और शरीर का तापमान बढ़कर, सांस रुककर ६ से २४ घंटे के अन्दर पशु की मृत्यु हो जाती है। इस रोग की चपेट में आने वाले ७० से १०० प्रतिशत पशु छूतग्रस्त होकर मर जाते हैं।

गलघोंटू रोग के बहुत-से लक्षण अन्य रोगों के लक्षणों से सादृश्य रखते हैं; अतः प्रायः इस रोग की पहचान में भूल हो जाती है। अतः यहाँ माता रोग, लँगड़ी रोग और बावला रोग (Anthrax) से मिलते-जुलते लक्षणों का अन्तर दिखाया जाता है, जो कि इस रोग की ठीक पहचान करने में सहायक सिद्ध होगा।

गलघोंटू रोग में पशु के ज्वर का टेम्परेचर १०८ डि० फा० तक जाता है, जबकि माता रोग में १०३ से १०५ डि० फा० तक ही रहता है। गलघोंटू में पशु को खून दस्त आते हैं, जब कि माता रोग में आँव जैसा लेसदार अंश रक्त के साथ मिलकर आता है। गलघोंटू में सिर और गर्दन की सूजन कड़ी होती है और दबाने से न दबती है, न किसी तरह की आवाज होती है, लँगड़ी रोग में गले या कमर या जांघ की सूजन दबाने से दब जाती है और कर्र-कर्र आवाज होती है। माता रोग में पशु के मुख के भीतर छाले हो जाते हैं, किन्तु गलघोंटू में छाले नहीं होते। बावला रोग में पशु के खून का रंग बदल जाता है किन्तु इस रोग में नहीं बदलता। माता और बावला रोग में पशु के कंठ में शोथ नहीं होता, जबकि इस रोग में गले की सूजन प्रमुख लक्षण है, जो कड़ी होती है।

सुरक्षा :—उन स्थानों पर जहाँ प्रायः यह रोग फैलता है वर्ष में दो बार एलम प्रेसिपिटेड एच० एस० वैक्सीन ५ मि० ली० सबक्यूटेनियस का इन्जेक्शन लगवा देना चाहिए। इसकी रोगप्रतिरोधक क्षमता ६ मास होती है। आयल एडजुवेंट वेक्सीन २.५ मि० लि० का मांस में इन्जेक्शन लगवाना चाहिए। इसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता एक वर्ष होती है। यह इन्जेक्शन बरसात शुरू होने से पहले ही लगवाने चाहिए।

ज्योंही कोई पशु इस रोग से रुग्ण हो, उसे तुरन्त अलग रखें। रोग वाले चारागाहों में पशुओं को न चराया जाय। रोग से मृत पशु का शव, गोबर, मूत्र, रक्त बाहर ले जाकर जला दें या भूमि में गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ दें। उसके बाँधने के स्थान को दूसरी मिट्टी से ढँककर उस पर कलई डाल दें। पर्याप्त स्वच्छता रखें। रुग्ण पशुओं के तनिक भी सम्पर्क में आने वाले स्वस्थ पशुओं को 'गलघोंटू अवरोधक सीरम' का इन्जेक्शन लगवायें।

गलघोंटू की चिकित्सा

एलोपैथिक चिकित्सा—रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही रोग का पता चलते ही सल्फामेथाजीन (आई०सी०आई० द्वारा निर्मित) १०० से २०० मि० लि० की मात्रा में ३३⅓ प्रतिशत की शक्ति का विलयन प्रारम्भिक मात्रा के रूप में लें। इसकी आधी मात्रा शिरा मार्ग (I. V.) से तथा आधी मात्रा त्वचा में (S. C.) प्रविष्ट करें। २४ घंटे पश्चात् उक्त मात्रा की आधी मात्रा दोहरा दें। या एन्थिसान (Anthisan) मे० एण्ड बेकर कं० द्वारा निर्मित या हैक्स्ट निर्मित होस्टाकार्टिन एच० (Hostacortin H.) दोनों में किसी एक की १० मि० लि० की त्वचा में सूई लगवायें या फाईजर कं० का टेरामाइसीन (Terramycin) या साराभाई केमि० कं० का आक्सीस्टेक्लिन (Oxystaclin) ४० से ६० मि० लि० की शिरा में (I. V.) सुई लगवायें। ये सब औषधियाँ रोग की प्रारम्भिक दशा में विशेष लाभदायक हैं या मे० एण्ड बेकर कं० द्वारा निर्मित वेसेडिन (Vesadin) ३३.५ प्रतिशत शक्ति का विलयन १०० से २०० मि० लि०

की मात्रा में दें। इसकी आधी मात्रा शिरामार्ग से तथा आधी मात्रा त्वचा से (S. C.) इन्जेक्शन लगवायें। २४ घंटे के बाद इसकी आधी मात्रा दुबारा दें।

टी० सी० एफ० कं० निर्मित वेटीडीन (Vetydine) ३३½ प्रतिशत का विलयन १०० से २०० मि० लि० प्रारम्भिक मात्रा के रूप में दें। इसकी आधी मात्रा शिरा-मार्ग से (I. V.) तथा आधी मात्रा त्वचा में (S. C.) दें। २४ घण्टे बाद इसकी आधी मात्रा दुबारा दें। इसी प्रकार फाईजर कं० के डायेडीन (Diadin) की प्रयोग-विधि है या सायनेमाइड कं० द्वारा निर्मित एक्रोमाइसीन २ से ४ मि० ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर-भार के अनुसार प्रतिदिन मांस में सुई लगायें। औरियोमाइसिन आधी से १ ओब्लेट्ल को प्रति २० कि० शरीर भार के अनुसार लेकर, चूर्ण करके पानी में घोलकर पिलायें। आवश्यकता पड़ने पर औरियोमाइ-सिन के घुलनशील पाउडर को २ से ४ छोटे चम्मच की मात्रा में लेकर प्रत्येक १०० लिटर पानी में घोलकर पशु के पूर्ण स्वस्थ होने तक पिलाते रहें।

पेनिसिलीन भी इस रोग की विश्वसनीय औषधि है, जबकि रोग की छूत लगने का पता चलते ही तत्काल उपचार आरम्भ कर दिया जाय।

देशी चिकित्सा—देशी चिकित्सा प्रणाली के अनुसार सबसे पहले इस रोग के शरीर में व्याप्त विष के निष्कासन के लिए पशु को दस्त कराने आवश्यक हैं, साथ ही गले की शोथ की वृद्धि रोकने और दूर करने का विशेष रूप से प्रयास करना चाहिए।

विरेचक औषधियाँ—अलसी (तीसी) का तेल १ पाव, गंधक चूर्ण २ (दो) तोला, सोंठ चूर्ण १। (सवा) तोला—सबको आधा सेर चावल के माँड़ या आधा सेर गरम पानी में मिला कर पिलायें या आधा सेर घी गुनगुना कर उसमें १ से २ तोला फिनायल मिलाकर दिन में दो मात्रायें दें।

शोथ-निवारक दवायें—जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है। इस रोग में गले की सूजन ही सबसे भयावह होती है, क्योंकि शोथ-वृद्धि से श्वास-नलिका अवरुद्ध हो जाने से श्वास न ले पाने से दम घुटकर पशु की मृत्यु हो जाती है, अतः कंठशोथ को दूर करने का शीघ्र यत्न करना चाहिए।

शोथ-निवारक कुछ उपचार निम्नांकित हैं—

(१) अमर बेल (आकाश बेल) को पानी में उबालकर कंठ और गले में भाप दें और इसी को गले में बाँधें।

(२) नीम की पत्तियाँ, मकोय की पत्तियाँ, अमलतास का गूदा—तीनों समान भाग पीसकर थोड़ा गर्म कर कंठ पर लेप करें।

सूजन को दूर करने का सर्वाधिक प्रभावकारी यत्न बहुत-से अनुभवी वयोवृद्ध लोगों के कथनानुसार दान देना है। एतदर्थ एक लोहे की छड़ को आग में तपाकर खूब लाल कर लें। उस तप्त छड़ से रुग्ण पशु के एक कान से दूसरे कान की जड़ तक और गले की लटकती हुई खाल में ३-३ अंगुल की दूरी पर ३-४ लकीरों में दाग दें। इसी प्रकार जबड़े की खाल और जबड़ों के नीचे की खाल को भी दो-तीन जगह में दाग दें। इसके अतिरिक्त शरीर में और जहाँ भी सूजन हो वहाँ भी दाग दें। दागने के पश्चात पशु के गले-जबड़े आदि की त्वचा पर निम्नांकित विधि से तेल बनाकर मलें। इस तेल के लगाने से पशु की त्वचा में फफोले पड़ जायेंगे और उन फफोलों द्वारा उस स्थान का समस्त आंतरिक विष बाहर आ जायगा। तेल निर्माण की विधि इस प्रकार है—

१०० ग्राम कड़ुवा तेल में १५-२० ग्राम जमालगोटे का तेल भली-भांति मिलाकर यही तेल दागे हुए स्थान की त्वचा पर लगा दें।

रुग्ण पशु को चार सेर पानी में डेढ़ सेर अलसी का तेल और थोड़ा-सा नमक डालकर पिलाते रहें। खाने के लिए केवल पतली दलिया या दूध दें।

अतः गलघोंटू एक संक्रामक रोग है, जो अन्य पशुओं में बहुत शीघ्रता से फैलता है, अतः इस रोग की रोकथाम तथा अन्य पशुओं को बचाने के लिए पूर्व-कथित सभी निर्देशों का सावधानी से पालन करना नितान्त आवश्यक है।

पशु के रोग-मुक्त हो जाने पर उसे यथेष्ट सुपाच्य और पौष्टिक चारे-दाने की व्यवस्था करनी चाहिए। पशु के रोग-मुक्त होकर स्वस्थ हो जाने पर १२ दिन बाद ही उसे अन्य पशुओं के सम्पर्क में लाना चाहिए।

विष ज्वर या जहरी बुखार
(Anthrax)

विषज्वर, जहरी बुखार, गुरही, गिल्टी, अंगारव्रण, गोली, घुड़का, चक्कर, खुदरुवा, ओवरो, भौंरा, सेड़ा, पूटा, बाबूना, बोगमा, वेसारी, ववला, वेश्री तिल्लहा आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाने वाला यह महाभयंकर संक्रामक रोग है। यह गाय, बैल और बकरी, भेड़, भैंस, घोड़ा इत्यादि और कभी-कभी ऊँट, हाथी और कुत्ते को भी हो जाता है। यह भीषण संक्रामक व्याधि है, जिससे शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

यह रोग संसार के प्रायः सभी देशों में फैलता है। इस रोग के आक्रमण के बाद पशु तुरन्त ही मर जाते हैं और उनकी प्राण-रक्षा करना बहुत कठिन हो जाता है। संक्रामक रोग होने के कारण यह पशुओं में बड़ी तीव्रता से से फैलता है।

इस रोग का कारण दण्डाकार कीटाणु 'बैसिलस एन्थ्रेक्स' है, जो बहुत सूक्ष्म होता है। इन सूक्ष्म रोगाणुओं के रक्त में प्रवेश हो जाने से यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोग के कीटाणु बड़ी तेजी के साथ लाखों की संख्या में बढ़कर १२ से ४८ घंटे के भीतर रोग के लक्षण प्रगट कर देते हैं। संक्रामक रोग होने के कारण जल, वायु, जूठे चारे-दाने, मल-मूत्र, स्पर्श आदि के द्वारा इसके कीटाणु बड़ी शीघ्रता के साथ अन्य स्वस्थ पशुओं में फैलकर सैकड़ों पशुओं को इस रोग में आक्रांत कर लेते हैं।

लक्षण—यदि अचानक ही किसी पशु की मृत्यु हो जाय और उसके मुख, नाक और गुदा के मार्ग से काला रक्त निकला दिखाई दे, तो तुरन्त समझ लेना चाहिए कि पशु विषज्वर से मरा है। उसके रक्त में रोग का विष व्याप्त हो जाने से उसका रंग काला तथा नीला-सा पड़ जाता है। उसकी त्वचा का रंग नीलिमायुक्त काला हो जाता है और मृत पशु का शरीर शीघ्र ही सड़ने लगता है। ऐसे पशु के शव, मल-मूत्र, रक्त, थूक, लार, चारे-दाने आदि को या तो जला दें

या गहरा गड्ढा खोदकर गाड़ दें। उसके बाँधने के स्थान पर सूखा चूना बिखेर दें, जिससे रोग के कीटाणु न फैल सकें।

किसी पशु पर जब इस रोग का आक्रमण होता है तो प्रारम्भ में लगभग १०६ से १०७ डि० फा० तक तीव्र ज्वर चढ़ता है। प्रायः मुँह या गुदा से रक्त बहने लगता है। पशु की नाड़ी की गति बहुत मंद हो जाती है, त्वचा का रंग मटमैला या नीला-सा हो जाता है। पशु बड़ी व्याकुलता के साथ चक्कर काटता है और पीड़ा से चिल्लाता है। साथ ही सिर, गर्दन, छाती, पेट, पीछे के पैरों में शोथ हो जाती है और पीड़ा होती है। शीघ्र ही पशु अत्यधिक दुर्बल और क्षीण होकर लड़खड़ाने लगता है और इसी प्रकार छटपटाते हुए अंत में मर जाता है। रोगाक्रांत होने पर आँख और मुँह के अन्दर की त्वचा पर लाली आ जाती है। प्लीहा बहुत बढ़ जाती है और पेट बुरी तरह फूल जाता है। गोबर पतला रक्त-मिश्रित और बहुत दुर्गन्धित होता है। शरीर तथा आँखें नीली हो जाती हैं। १-२ दिन में ही रुग्ण पशु कराहते हुए मर जाता है।

इस रोग में पशु को गेहूँ का पतला दलिया और दूध देना चाहिए। यदि खा सके तो मुलायम हरी घास और पत्तियाँ भी दें।

सुरक्षा—रुग्ण पशुओं को एन्थ्रेक्स विरोधी सीरम (Anti Anthrax Serum) का इन्जेक्शन लगवायें और स्वस्थ पशुओं को 'एन्थ्रेक्स स्पोर वैक्सीन' (Anthrax Spore Vaccine) का १ मि० लि० त्वचा में इन्जेक्शन लगवायें। इसकी रोगप्रतिरोधक क्षमता १ वर्ष है। स्वस्थ पशुओं को रुग्ण पशु से तत्काल अलग कर दें। मृत पशु के शव, और उसके नीचे के बिछावन को जला दें या गड्ढे में दबा दें। मृत पशु की खाल के प्रयोग का लोभ न करें। बीमारी फैलने-वाले स्थान पर फिनायल आदि कीटनाशक दवायें छिड़कते रहें और सुखा दें। स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें। पशु-चिकित्सक को शीघ्र सूचना दें।

चिकित्सा—प्रायः इस रोग में कोई भी औषधि शत-प्रतिशत सफल नहीं होती; क्योंकि इस रोग का आक्रमण ऐसे प्रचण्ड वेग से होता है कि पशु रोग के आघात को झेल नहीं पाता और शीघ्र ही उसका प्राणान्त हो जाता है। तथापि

पशु डाक्टरों की राय के अनुसार यदि पशु के रोगाक्रांत होने के २४ घंटे के अन्दर एन्टीएन्थ्रेक्स सीरम का इन्जेक्शन लगा देने से प्रायः पशु बच भी जाता है।

क्रिस्टेलीन पेनिसिलीन ४० से ८० लाख अ० इ० शिरा में तथा प्रोनापेन (Pronapen —फाईजर कं० निर्मित) या प्रोकेन पेनिसिलीन (साराभाई द्वारा निर्मित) ४० लाख अ० इ० का मांस में इन्जेक्शन लगवायें। एन्थ्रेक्स विरोधी सीरम (Anti Anthrax Serum) १०० से २०० मि० लि० की मात्रा में शिरा में इन्जेक्शन लगाना विशेष लाभदायक है। हर ६ घंटे के अन्तर पर पेनसिलीन का प्रयोग दुबारा करें।

इसके अतिरिक्त सल्फाडायजीन और पेनिसिलीन का प्रयोग इस रोग में विशेष लाभप्रद है। एक्रोमाइसीन २ से ४ मि० ग्रा० प्रतिकिलो शरीर-भार के अनुसार प्रतिदिन मांस में इन्जेक्शन लगायें। साथ ही मे० एण्ड वेकर क० का सल्फा-डायजीन गोली खिलायें।

घोड़ों-हाथियों का विषज्वर

यह रोग घोड़ों और हाथियों में भी फैलता है। जब घोड़ों को होता है तो उसे घोड़ों का विषज्वर या बोगमा कहते हैं। इस रोग का संक्रमण होने पर घोड़े या हाथी को तीव्र ज्वर के साथ शरीर से बहुत पसीना आता है तथा पेट पर सूजन आ जाती है। इनमें केवल यही लक्षण प्रगट होते हैं।

चिकित्सा—घोड़ों, हाथियों के लिए भी एन्टीएन्थ्रेक्स सीरम का इन्जेक्शन ही लाभप्रद सिद्ध होता है।

४ ग्राम कार्बोलिक एसिड आधा सेर गुनगुना घी में मिलाकर पिलाना गुणकारी है।

शोथ के स्थान को लोहे की तप्त लाल गरम छड़ों से दागना भी प्रायः लाभप्रद हो जाता है।

अन्य घोड़ों-हाथियों की सुरक्षा के लिए उन्हें शीघ्र ही एन्टीएन्थ्रेक्स सीरम का टीका लगवा देना चाहिए।

लँगड़ा ज्वर

(Black Quarter)

लँगड़ा ज्वर—लँगड़ी, जहरवाद, जहरबात, अकड़ा रोग, चिरचिरा, चेवड़ा, गोली, फलसूजा आदि कई नामों से देश के विभिन्न भागों में इस रोग को जाना जाता है। अंग्रेजी में ब्लैक क्वार्टर, सिउडी, एन्थ्रेक्स, ब्लैक लेग कहा जाता है। यह रोग विशेष रूप से मैसूर, हैदराबाद, तमिलनाड, महाराष्ट्र इत्यादि प्रान्तों में वर्षा ऋतु में होता है। इसकी विशेषता यह है कि यह अधिकतर ६ मास से डेढ़ साल के बछड़ों को ही आक्रांत करता है। यह रोग क्लोस्ट्राइडियम चेकई और क्लोस्ट्राइडियम नामक दण्डाकार सूक्ष्म कीटाणुओं द्वारा चारे-पानी या घाव द्वारा पशु के शरीर में प्रविष्ट हो जाने पर उत्पन्न होता है। यह रोग प्रायः जलवायु-परिवर्तन पर भी हो जाता है। यदि कोई पहाड़ी या तराई क्षेत्र का पशु मैदानी भाग के किसी स्थान पर लाया जाता है, तो वह बहुधा इस रोग में ग्रस्त हो जाता है। यह रोग अन्य पशुओं के अतिरिक्त घोड़ों और भेड़ों को भी हो जाता है।

लक्षण—लँगड़ा ज्वर भी पशुओं के भयंकर रोगों में से एक भयंकर रोग है। इस रोग का आक्रमण होने पर पशु अकड़ने लगता है। शरीर बिल्कुल शिथिल हो जाता है। रोग आरम्भ होते ही बहुत तेजी से ज्वर चढ़ता है। ज्वर का तापमान १०४° से १०६° फा० तक हो जाता है। नाड़ी तेज चलती है। पशु लँगड़ाने लगता है। वह चलने-फिरने में भी असमर्थ हो जाता है। यदि उसे बलपूर्वक चलाया भी जाय, तो वह लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे बड़ी कठिनाई से चल पाता है। अन्य पशुओं से दूर जाकर खड़ा हो जाता है। एक पैर या दोनों पैरों में सूजन आ जाती है। इस रोग में सूजन त्वचा के नीचे मोटी मांसपेशियों के भीतर होती है। रुग्ण पशु के कंधे पर भी सूजन आ जाती है। सूजन वाले अंग को छूने पर जान पड़ता है, मानो पानी भरा है, वहाँ दबाने पर कर्र-कर्र आवाज होती है। पीड़ित भाग की त्वचा सूखकर काली हो जाती है। कभी-कभी सूजन आगे चलकर सड़ जाती है और उस स्थान पर सड़ा हुआ घाव हो जाता है। किसी-किसी पशु के अगले पैर का पुट्ठा भी सूज जाता है। पाखाना साधारण या

पतला होता है। पशु की साँस फूलने लगती है, पशु दाँत पीसता है, खाना पीना बन्द कर देता है और ऐसी ही अवस्था में पड़े-पड़े प्राय: २४ घंटे के अन्दर ही मर जाता है। उचित उपचार करने पर सूजन दूर हो जाती है तथा रोगी पशु स्वस्थ हो जाता है।

भेड़ों में जब यह रोग होता है, तो उस समय प्राय: उनके शरीर में घाव या चोट होती है और उसी के आस-पास सूजन होती है। सामान्यत: ऊन कतरने, दुम काटने, बधिया करने या किसी प्रकार व्रण हो जाने पर यह रोग हो जाता है। भेड़ों में इस रोग को घातक शोथ और अंग्रेजी में ओडेमा (Oedema) कहा जाता है।

सुरक्षा—वरसात आरम्भ होने से पूर्व पशुओं को इस रोग का इंजेक्शन लगवा दें। एलम प्रेसिपिटेटेड वैक्सीन ५ मि० लि० का त्वचा (S. C.) में इंजेक्शन लगाना अत्यन्त लाभप्रद है, जिसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता ६ मास है। वर्षा आरम्भ होने से पूर्व वर्ष में एक बार इस संक्रामक रोग के फैलने वाले क्षेत्र में स्वस्थ-अस्वस्थ सभी पशुओं को इसका इंजेक्शन अवश्य लगवा देना चाहिए। स्वस्थ पशुओं को रुग्ण पशु से अलग कर दें। रोगी पशुओं के सम्पर्क में आने वाले पशुओं को 'जहरवात अवरोधक सीरम'—'एन्टी ब्लैक क्वार्टर सीरम' का इंजेक्शन तथा स्वस्थ पशुओं को जहरवात लगवा दें। जिन चारागाहों में रोगी पशु चरने के लिए जाते रहे हों, उन्हें मिट्टी पलटने वाले मेस्टन हल से भली-भाँति जुतवा दें और स्वस्थ पशुओं को वहाँ न चरायें। मृत पशु को जला दें या गड्ढा खोदकर भूमि में गाड़ दें। पशुशाला की अच्छी तरह सफाई करें। दीवालों पर चूना पोत दें और फर्श पर सूखा चूना (कलई) बिखेर दें।

डाक्टरी चिकित्सा—रोग आरम्भ होते ही पेनिसिलीन के इंजेक्शन लगातार ४-६ दिन तक लगवाना इस रोग में बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। सूजन को चीरकर उसके भीतर के स्रावों को बहाकर निकाल दें। रोग के आरम्भ में औरियोमाइसिन ,ओब्लेट या सोल्यूशन पाउडर को पानी में घोलकर पिलाते रहें। 'ब्लेक क्वार्टर वैक्सीन' का इंजेक्शन तीन सप्ताह से लेकर एक मास तक लगवाते

रहें। यह औषधि दोनों प्रकार के जहरवात में लाभदायक है। रोग का प्रारम्भ होते ही पशु को प्रत्येक १२ घंटे बाद पेनिसिलीन का इंजेक्शन लगवाते रहें। एम्पीसिलीन २ ग्राम हर ६ घंटे पर या आक्सीटेटरा साइक्लीन की सूई प्रत्येक आठ घण्टे पर ३० एम० एल० साथ में डेक्सामेथासोन की सूई ५ एम० एल० सुबह-शाम लगवाना लाभप्रद होगा।

सूजन वाले स्थानों को लोहे की छड़ आग में तपाकर लाल करके दाग देने से कीटाणु मर जाते हैं और पशु के बच जाने की आशा हो सकती है।

कई अनुभवी पशुपालकों के कथनानुसार इस रोग में छेदन या छिदना कराना भी बहुत लाभप्रद होता है और छिदना कराने से प्रायः पशु बच जाता है। कुछ लोगों का मत है कि इस रोग में छिदना से अच्छा और कोई उपचार नहीं है। छिदना करने की विधि इस प्रकार है :—

पशु के गले के नीचे लटकती हुई खाल (जिसे लहर, घेंची या हलुआ कहते हैं) में तेज चाकू या छुरी से एक अंगुल चौड़ा छेद खाल के आर-पार कर दें। फिर ऐसा ही एक और छेद पहले छेद से ३-४ अंगुल की दूरी पर करें। फिर इन दोनों छेदों के बीच से एक मोटा डोरा या घोड़े के पूँछ के बालों की साफ बटी हुई पतली डोरी सुए में पिरोकर दोनों सिरों पर मजबूत गाँठ बाँध दें। किन्तु यह डोरो इतनी ढीली रहे कि उससे कहीं पर खाल खिंचे या दबे नहीं। फिर इन छेदों पर नीम का तेल या कर्पूरादि तेल लगा दें, जिससे वहाँ मक्खियाँ न बैठें। इनमें कोई भी कीटाणुनाशक तेल दिन में कई बार लगाते रहें। यदि घाव का अंकुर ऊँचा हो गया हो तो उस पर नीलाथोथा का महीन चूर्ण भुरक दें।

इस बात का ध्यान रहे कि जिस चाकू या छुरी से छेद करें, उसे पहले लालदवायुक्त या डिटालयुक्त खौलते हुए पानी में डालकर कीटाणु-रहित कर लें।

कर्पूरादि तेल की निर्माण विधि—पाव भर सरसों का तेल, एक छटांक तारपीन का तेल, १ तोला कपूर। कपूर को पीस कर तेलों के मिश्रण में डालकर शीशी को खूब हिला-चला लें। इस तेल से रोग के कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं और घाव पर मक्खियाँ नहीं बैठतीं।

रोगप्रतिरोधक औषधि—लँगड़ा प्रतिरोधक सीरम उपलब्ध न होने की अवस्था में निम्नांकित योगों का प्रयोग करने से स्वस्थ पशु रोग के संक्रमण से बच सकते हैं :—

(१) नमक १०० ग्राम, गंधक ७५ ग्राम, सोंठ १५ ग्राम—तीनों को चूर्ण कर राब या गुड़ की चाशनी ७५ ग्राम में मिलाकर स्वस्थ पशुओं को चटा दें। इसके प्रयोग से रोग के संक्रमण की आशंका कम रहती है। यद्यपि यह शत-प्रतिशत विश्वस्त यत्न नहीं है।

(२) थोड़ा-सा कलमी शोरा और नमक पानी में घोलकर सब पशुओं को पिलाते रहें। इसके पिलाने से रोग के कीटाणु पशु के शरीर में प्रविष्ट होने पर नष्ट हो जाते हैं।

पशुओं का क्षयरोग या तपेदिक
(Tuberculosis)

क्षय, क्षयी, राजयक्ष्मा, सिल, दिक, तपेदिक और अंग्रेजी में ट्यूबरकुलोसिस या टी० बी० के नाम से जाना जानेवाला यह मंदगामी, भयंकर, कष्टसाध्य और सांघातिक रोग मनुष्यों के ही समान पशुओं को भी होता है। यह पशुओं का पुराना संक्रामक रोग है।

इस रोग के उत्पादक एक विशेष प्रकार के दण्डाकार कीटाणु होते हैं, जो 'वेसिलस ट्यूबरकुलोसिस' कहे जाते हैं। ये जीवाणु शरीर के किसी भी भाग में सरलता से प्रविष्ट हो जाते हैं और वहाँ क्षिप्र गति से अपनी संख्या वृद्धि करने लगते हैं। जिस अंग में ये जीवाणु बस जाते हैं, वहाँ वर्तुलाकार ग्रन्थियाँ-सी बन जाती हैं। यह रोग दुधारू पशुओं से लेकर पक्षियों तथा रेंगने वाले जीवों को

भी हो जाता है। इस रोग के जीवाणु रासायनिक और कीटाणुनाशक वस्तुओं को सहन करने की कुछ ऐसी विशेष शक्ति रखते हैं कि सामान्य कीटाणुनाशक औषधियों से यह नष्ट नहीं हो पाते। किन्तु ताप और सूर्य-धूप प्रकाश में शीघ्र मर जाते हैं।

समुचित मात्रा में पशु को पौष्टिक आहार न मिलना, धूप, वायु, प्रकाश-विहीन मलिन स्थानों का निवास प्रायः इस रोग की उत्पत्ति के प्रमुख कारण होते हैं। ऐसी अवस्था में क्षय के कीटाणु पशु के शरीर में प्रविष्ट होकर धीरे-धीरे अपनी वंश-वृद्धि करते रहते हैं और पशु पूर्ण रूप से इस रोग से आक्रांत हो जाता है। फिर उस रोगाक्रांत पशु के मल-मूत्र, झाग, लार द्वारा ये कीटाणु बाहर निकलकर अन्य पशुओं में भी प्रविष्ट हो जाते हैं।

रोग के लक्षण—इस रोग के प्रारम्भ में पशु दिनों-दिन दुर्बल होता जाता है। उसकी भूख कम हो जाती है और सुस्त-शिथिल दिखाई पड़ता है। जब रोग के कीटाणु फेफड़ों में पहुँचकर वहाँ स्थायी निवास बना लेते हैं तो पशु को मंद ज्वर रहता है और शुष्क ठसकेदार खाँसी आने लगती है। तदुपरान्त रोग का संक्रमण आँतों में हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसे पतले दस्त आने लगते हैं और पशु शीघ्र दुर्बल हो जाता है। रोग के जीवाणु जब आँतों से बढ़कर पशु के अयन में पहुँच जाते हैं, तो वे कठोर होकर बढ़ जाते हैं, किन्तु उनमें दर्द बिल्कुल नहीं होता है। ऐसे पशुओं का दूध रोग के प्रारम्भ में तो ठीक होता है किन्तु बाद में उसमें पानी की मात्रा बढ़ जाती है और दूध में कुछ हरा-नीलापन दिखाई देता है। अन्त में परीक्षा करने पर इसमें पीब (Pus) के कण भी मिलते हैं। दूध कुछ लेसदार-सा हो जाता है और फिर धीरे-धीरे बहुत कम हो जाता है। उस दूध में क्षय रोग के दण्डाणु भरे रहते हैं। ऐसे रोगी पशुओं का दूध उनके बच्चों को बिल्कुल न पिलाना चाहिए और मनुष्यों को वह घातक है ही। ऐसे रुग्ण पशु का दूध पीने से उसके बच्चे और मनुष्य को भी क्षय रोग का संक्रमण लग जाता है।

इस रोग का ठीक निदान करने के लिए सबसे अधिक विश्वस्त विधि ट्यूबरक्यूलिन टेस्ट है, जिससे अधिकांशतः इस रोग का निश्चित पता चल जाता है। अतः पशु में उपरोक्त लक्षण दिखाई देते ही प्रारम्भिक अवस्था में ही ट्यूबरक्यूलीन प्रणाली द्वारा परीक्षा करा लेनी चाहिए।

अन्य पशुओं में क्षय रोग—यदि भेड़ों-बकरियों को गोपशुओं के साथ रखा जाता है और गोपशुओं में किसी को क्षय रोग है, तो भेड़-बकरियों में इस रोग का संक्रमण शीघ्र होता है। वैसे यदि भेड़-बकरियों को गोपशुओं से अलग रखा जाय, तो उनमें यह रोग बहुत ही कम देखने में आता है। जब भेड़-बकरियों को यह रोग होता तो प्रायः हृदय की लसीकाग्रंथियों और फुफ्फुसों में ही होता है। गोपशुओं की छूत लगने से कभी-कभी ऊँटों को भी यह रोग हो जाता है और हाथी को तो पशु तथा मनुष्य दोनों की ही छूत लगने से यह रोग हो जाता है। सभी के रोग का ठीक निदान ट्यूबरक्यूलीन टेस्ट द्वारा हो जा सकता है।

सुरक्षा—जिस पशु को यक्ष्मा के लक्षण दिखाई पड़ें, उसे अन्य पशुओं के पास से हटा देना चाहिए। मनुष्य को यथासम्भव उससे दूर ही रहना चाहिए। यह रोग पशुओं से मनुष्य को भी संक्रमित कर लेता है। यदि एक पशु क्षयग्रस्त हो गया हो, उसके सम्पर्क में रहनेवाले अन्य पशुओं की भी जाँच करा ली जाय। इसके जाँच की एक विशेष प्रणाली है, जो बड़े एलोपैथिक अस्पतालों में ही हो सकती है। जहाँ गोपशुओं में इस रोग की छूत बहुत फैली हुई हो, वहाँ पशुओं को बी०सी०जी० का इन्जेक्शन लगाना उपयोगी सिद्ध होता है। जब किसी क्षय-ग्रस्त पशु के रोग का पता लगे तो उसके मल-मूत्र, जूठे चारा आदि को गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त संक्रामक रोगों की रोक-थाम के लिए जो निर्देश पहले दिये जा चुके हैं, उनका भी पालन करना चाहिए।

चिकित्सा—यद्यपि इस बात में बहुत अंशों तक सत्यता है कि क्षयरोग की चिकित्सा करने में कोई लाभ नहीं होता और वह प्रायः ठीक नहीं होता, किन्तु चाहे मनुष्य हो या पशु यथासम्भव उसका उपचार तो करना चाहिए। किसी उर्दू शायर

का तथ्यपूर्ण कथन है 'यह नहीं कहता कि सेहत मुझको हो ही जायगी, चारागर तदवीर कर आगे मेरी तकदीर है।' अस्तु, आधुनिक एलोपैथी चिकित्सा प्रणाली के वैज्ञानिकों ने क्षयरोग की कुछ बहुत ही प्रभावशाली औषधियों और इन्जेक्शनों के आविष्कार किये हैं, जो क्षय रोग में पर्याप्त गुणकारी सिद्ध हो चुके हैं। कम; व्युराल-४०० की गोली ४·४ गोली सुबह-शाम कम से कम चार-पाँच माह तक लगातार देने से यह रोग पूर्णतया समाप्त हो जाता है।

कॉम्बियोटिक (Combiotic), डाइक्रिस्टिसिन (Dicrysticin) तथा एम्बिस्ट्रिन (Ambistryn) में से किसी भी एक दवा के एक ग्राम वायल में पर्याप्त परिश्रुत जल घोलकर प्रतिदिन मांस में इन्जेक्शन लगायें। साथ ही आइसो-निएजिड तथा पी०ए०एस० की टिकिया पानी में घोलकर खिलायें। मे० एण्ड बेकर कं० द्वारा निर्मित मीफेक्स (Mifex) के इन्जेक्शन पशु की दुर्बलता दूर करने के लिए तथा कैल्सियम की कमी को पूरा करने के लिए लगवायें।

सुपाच्य और पर्याप्त पौष्टिक चारे-दाने के साथ यदि उपरोक्त चिकित्साक्रम कुछ दिनों तक चलाया जाय तो रुग्ण पशु के स्वस्थ होने की बड़ी आशा की जा सकती है। इस रोग में मौसम परिवर्तन के समय विशेषरूप से मौसम के असर से बचाव करना चाहिये।

न्युमोनिया
(Pneumonia)

हिन्दी में फुफ्फुस-शोथ, फुफ्फुस-प्रदाह, न्युमोनिया नामक सभी पशुओं को हो सकनेवाले इस रोग का कारण न्यूमोकोकस नामक एक विशेष प्रकार के कीटाणु होते हैं।

लक्षण—इस रोग में पहले पशु को तीव्र ज्वर होता है, सूखी खांसी आती है, श्वास फूलता है। पशु चारा खाना बन्द कर देता है। प्यास लगती है। पशु सुस्त हो जाता है। नाक बहने लगती है। सूखी खाँसी का ठसका उठता है और खांसने में पीड़ा होती है। पशु व्याकुल रहता है। इस रोग में फेफड़ों और छाती में

श्लेष्मा संचित हो जाता है। पशु सदा गर्दन व सिर लटकाकर सुस्त खड़ा रहता है, नाक से सदैव स्राव हुआ करता है। प्रायः दस्त आने लगते हैं। फेफड़े में घाव हो जाये तो पशु मर जाता है। उग्र अवस्था के रोग में पशु एक सप्ताह में ही श्वास अवरुद्ध हो जाने से मर जाता है, मध्यम अवस्था के रोग में दो-तीन सप्ताह में और मंद अवस्था के रोग में पशु क्रमशः निर्बल होकर लगभग दो महीने में मृत्यु हो जाती है। जो पशु रोग के वेग से बच भी जाते हैं वे बहुत दिनों तक निर्बल बने रहते हैं और उनको खाँसी आती रहती है। खाँसी और श्वास द्वारा उनके रोग के कीटाणु फैलते रहते हैं। बच्चे इस रोग से बहुत कम बचते हैं।

सुरक्षा—पशुओं को स्वच्छ और हवादार स्थान में रखें। गर्म स्थान से एकदम ठंढे और तेज हवा वाले स्थान में न ले जायें। इस रोग की चिकित्सा के लिए अभी तक एलोपैथी में कोई अचूक दवा या इन्जेक्शन तैयार नहीं हुआ। रुग्ण पशु की चिकित्सा से अधिक ध्यान स्वस्थ पशुओं की सुरक्षा के लिए देना चाहिए। जहाँ यह रोग प्रायः होता हो और महामारी के रूप में फैलता हो, सभी पशुओं विशेष रूप से बछड़ों को 'टेलटिप वैक्सीन' का टीका लगवा देना चाहिए। रोगी पशु के सम्पर्क से स्वस्थ पशुओं को दूर रखना चाहिए। रुग्ण दुधारू पशु का दूध अग्राह्य होता है। हाँ, उसका घी बनाकर प्रयोग किया जा सकता है।

एलोपैथिक चिकित्सा—इस रोग में सल्फाड्रग्स और एण्टीबायोटिक औषधियाँ बहुत लाभदायक हैं। औरियोमाइसिन सोल्यूबल ओब्लेट्स या पाउडर पानी में घोलकर पिलाना चाहिए।

औराफाक-२A (Aurafac 2A) सेवन विधि के अनुसार आवश्यक मात्रा में खिलाना चाहिए।

एक्रोमाइसिन का मांस या शिरा में इन्जेक्शन लगवायें। साथ ही प्रोनापेन ४ लाख या २० लाख यूनिट का मांस में गहरा इन्जेक्शन लगवायें।

टायलोसिन टारट्रेट (Tylosin Tartrate) २ से ५ मि० ग्राम० प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से मांस में प्रति ६ घंटे पश्चात इन्जेक्शन लगायें।

फाईजर कं० द्वारा निर्मित टेरामाइसिन या साराभाई कं० द्वारा निर्मित आक्सीस्टेक्लिन ऊँची मात्रा में दें तथा वेटीसेटीन (Vetycetine) टी० सी० एफ० कं० द्वारा निर्मित और एरिथ्रोमाइसिन या ऐमपीसीलीन २ ग्राम का प्रयोग करना भी विशेष लाभप्रद है।

सूखा रोग

(Johns Disease or Paratuberculosis)

पशुओं का सूखा रोग क्षय रोग से ही सादृश्य रखता हुआ रोग है, जो बड़े नगरों के सामूहिक फार्मों में, जहाँ देशी और विदेशी जाति के पशु एक साथ रहते हैं, देखा जाता है। जिससे स्पष्टतः यही प्रतीत होता है कि यह रोग भारत में पाश्चात्य देशों से आयातित पशुओं द्वारा आया है। गाँवों में पाले जानेवाले पशुओं में प्रायः यह रोग नहीं पाया जाता।

यह भी भयंकर रूप से प्रसारित होने वाला एक संक्रामक रोग है, जो एक विशेष प्रकार के रोगाणुओं से उत्पन्न होता है। सामान्य बोली में इन्हें जोन्स रोग के कीटाणु कहा जाता है। ये जीवाणु पशु के शरीर में छोटे जीवाणुओं के रूप में बड़े-बड़े गुच्छों में रहते हैं। इनमें भी धूप, प्रकाश और रोगाणुनाशक रसायनों के प्रभाव को सहन करने की क्षमता क्षय के जीवाणुओं की तरह होती है। इस रोग के कीटाणु रुग्ण पशु के मल-मूत्र, लार, झाग आदि के द्वारा बाहर निकलते हैं। ये जीवाणु तालाब के गन्दे पानी में बहुत दिनों तक जीवित रह सकते हैं, अतः रुग्ण पशु के तालाब में पानी पीते समय ये जीवाणु पानी में चले जाते हैं। फिर अन्य पशु जब उसी तालाब का पानी पीते हैं, तो वे रोगाणु उनके पेट में जाकर रोग उत्पन्न कर देते हैं। इसी प्रकार रुग्ण पशु के जूठे चारा-दाना आदि को अन्य पशुओं को खिलाने से भी उनमें इस रोग का संक्रमण हो जाता है। यह रोग भैंस और गोवंश के पशुओं के अतिरिक्त भेड़-बकरियों और ऊंटों को भी रोगाणु-युक्त तालाबों का पानी पीने से हो जाता है।

लक्षण—इस रोग के जीवाणुओं का संक्रमण होने पर रोग के लक्षण प्रकट होने में प्राय: ६ मास से डेढ़ वर्ष का समय लग जाता है; क्योंकि क्षय रोग की तरह यह रोग भी बहुत धीरे-धीरे पनपता है। एक वर्ष से कम आयु के पशु में तो इस रोग के लक्षण ही नहीं प्रगट होते, तीन साल से छः साल तक के पशुओं में प्रगट हो जाते हैं।

आरम्भ में इस रोग के लक्षण स्पष्ट नहीं होते, कुछ अनिश्चित-से होते हैं—कभी पशु को पतले दस्त आते हैं, तो कभी शिथिल-सा दीख पड़ता है। क्रमशः धीरे धीरे वह निर्बल होने लगता है और उसके जबड़े के नीचे शोथ हो जाती है। फिर ज्यों-ज्यों रोग की वृद्धि होती है, उसका अतिसार बढ़ता जाता है। दस्तों में कभी आँव कभी झाग रहता है। दस्त की दवा देने से कुछ लाभ नहीं होता। इस रोग में ज्वर नहीं आता। पशु चारा साधारण रूप से खाता रहता है, प्यास अधिक लगती है। धीरे-धीरे शरीर में रक्ताल्पता हो जाती है और पशु दुर्बल होता जाता है और सूखने-सा लगता है और इसी अवस्था में धीरे-धीरे निर्बल होकर एक वर्ष से दो वर्ष के अन्दर मर जाता है।

मादा पशुओं में गर्भावस्था में इस रोग के लक्षण प्रगट नहीं होते। ब्याने के बाद ही प्रगट होते हैं। घातक होते हुए भी उचित चिकित्सा से बहुत-से पशु ठीक भी हो जाते हैं। भेड़ों को जब यह रोग होता है, तो उन्हें अतिसार कम होता है, अन्य लक्षण गाय-बैल की तरह-सी प्रगट होते हैं। बकरियों में यह रोग बड़ी तीव्रता से प्रगट होता है और एक-दो महीने में ही एक से दूसरी को छूत लगने से एक के बाद एक बकरियाँ मरने लगती हैं।

चिकित्सा—एलोपैथी में इस रोग की कोई विशेष और पूर्ण विश्वस्त औषधि नहीं है। लक्षणों के आधार पर अतिसार की दवायें देकर दस्तों को रोका जा सकता है। जोन्स रोग प्रतिरोधी एक टीका होता है, उसे ५ मि० ग्रा० से १० मि० ग्राम तक पशु की अवस्था और शरीर भार के अनुसार लगवाना चाहिए। काडलिवर आयल (मछली का तेल) पिलाना भी इस रोग में बहुत लाभप्रद है। इस रोग में स्वच्छ वायु, स्वच्छ पानी, खुली धूप तथा विश्राम से अधिक लाभ

होता है। पूर्वोक्त निर्देशों के अनुसार स्वस्थ पशुओं को रुग्ण पशुओं के सम्पर्क से बचाना चाहिए। रुग्ण पशु को दलिया, दूध, हरी कोमल घास, ताजा पानी दें। जौ की भूसी, कटहल के पत्तों और हरद्वारी कुश की पत्तियाँ खिलाने से दस्त कम हो जाता है। पशु के पेट में नीचे सेंक करना भी लाभप्रद है।

कुछ अन्य संक्रामक रोग

माता या चेचक
(Cows Pox)

चेचक या छोटी माता नामक वह संक्रामक रोग गाय घोड़ा, बकरी, भेड़ और ऊँट आदि पशुओं को होता है। चेचक रोग की उत्पत्ति का कारण एक विशेष जाति का विषाणु (Virus) होता है जो प्रत्येक अवस्था में आक्रमण कर सकता है और इसकी छूत माँ के द्वारा गर्भस्थ बच्चे तक को पहुँच सकती है। फटे खुर वाले और जुगाली करने वाले गाय, बैल भैंस, बकरियाँ आदि पशु इस रोग से आक्रांत होते हैं। यह व्याधि सामान्यतः प्रायः वसन्त ऋतु में होती है, इसलिए इसे वसन्त रोग भी कहते हैं। यह संक्रामक व्याधि बड़ी तेजी से फैलती है।

लक्षण — इस रोग के लक्षण प्रगट होने से पूर्व पशु सुस्त हो जाता है। पहले हल्का ज्वर आता है। चारा खाना कम कर देता है। खाँसी और नाक से पानी बहना प्रारम्भ हो जाता है। शरीर, कान, आँख और मुख गर्म होकर कुछ लाली आ जाती है। प्रारम्भ में कब्ज रहता है। एक-दो दिन बाद जीभ के निचले भाग तथा मुख में छाले उभड़ आते हैं। दो-तीन दिन बाद उनसे दुर्गन्ध आने लगती है। फिर पशु को पतले दस्त आने लगते हैं। धीरे-धीरे आँतें भी रोगाक्रांत हो जाती हैं और गोबर के साथ रक्त आने लगता है। यह लक्षण अशुभ है। रोग की उग्रावस्था में शरीर के ऊपर, पेट और गले के भीतर छाले हो जाते हैं और पशु को पानी पीना भी कठिन हो जाता है। यदि तत्काल सतर्कता से उपचार न किया गया तो पशु की मृत्यु हो जाती है।

चेचक की तीन अवस्थायें होती हैं—प्रथमावस्था, मध्यमावस्था और अंतिम अवस्था।

प्रथमावस्था—रोग प्रगट होने के पूर्व प्रारम्भिक स्थिति में कुछ ऐसे लक्षण प्रगट होते हैं कि अनुभवी लोग समझ जाते हैं कि पशु को चेचक होने वाली है। इसमें पहले ज्वर, नेत्रों में लाली, शरीर में शिथिलता, पीड़ा, पशु का प्रायः दाँत पीसना आदि लक्षण होते हैं। दुधारू पशु, गाय, भैंस आदि दूध देना बन्द कर देते हैं।

द्वितीयावस्था—जब प्रारम्भिक लक्षण अधिक उग्र हो जायें, तो द्वितीय अवस्था समझें। जैसे ज्वर का वेग बढ़ जाना, श्वास गति तेज हो जाना, आँखों की लाली बढ़ जाना आदि। इस दशा में पशु की पीठ और रीढ़ में वेदना और अंगड़ाई होती है। जीभ ऐंठ-सी जाती है। पेशाब का रंग लाल, गोबर के साथ रक्त आना, मल कड़ा और गाँठदार, जबान पर काँटे उभड़ आना आदि उपसर्ग होते हैं। प्रायः ५ दिन में चेचक के दाने प्रकट हो जाते हैं।

तीसरी अंतिम अवस्था—तीसरी अंतिम अवस्था में रोग के लक्षण दूसरी अवस्था से भी अधिक बढ़ जाते हैं। पतला गाँठदार दस्त अधिक रक्त के साथ आता है। कफ गाढ़ा हो जाता है, श्वास कष्ट से आता है। दाने गले के भीतर भी प्रगट हो जाते हैं और पशु खाना-पीना बिल्कुल छोड़ देता है। गोबर से तीव्र दुर्गन्ध आती है। यह अवस्था दुस्साध्य है। ऐसी अवस्था में पशु प्रायः मर जाता है।

इस अवस्था में यदि दाने अत्यधिक निकल आयें हों या बिल्कुल ही न निकले हों तो रोग को असाध्य ही समझना चाहिए। ऐसी स्थिति में मुख के भीतर की त्वचा निकल जाती है और मुख का भीतरी भाग पीला हो जाता है। आँख, मुख, नाक से गोंद जैसा श्लेष्मा निकलने लगता है, श्वास में दुर्गन्ध आती है, सामने के दाँत गिर जाते हैं। मुख और कंठ में शोथ हो जाने से थूक निगलने में कष्ट होता है। गोबर निकालते समय यदि पशु काँखने लगे, तो समझ लेना चाहिए कि उसकी मृत्यु सन्निकट है। प्रायः २ से ७ दिन के भीतर पशु मर जाता है।

इस रोग में गायों के शरीर के कोमल अंगों जैसे थनों पर, बैलों के अंडकोषों पर गोल दाने निकल आते हैं और दानों के कारण इन अंगों में सूजन भी

हो जाती है। भेड़ें जब इस रोग से ग्रस्त होती हैं, तो तीव्र ज्वर के साथ प्रायः न्यूमोनिया हो जाता है। सारे शरीर पर दाने विशेषतः पूंछ के नीचे, आँखों के चारों ओर और थन आदि जहां बाल नहीं होते, पर निकलते हैं। १० दिन बाद इन पर खुरंड पड़ जाती है।

इस रोग में फुस्फुसों, वृक्कों, वायुप्रणालियों और आँतों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। ऊँट में भी इसी प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं। किन्तु भेड़ों की तरह बकरियाँ इस रोग से प्रभावित नहीं होतीं। इस रोग में घोड़ों के मुँह, ओठ, जीभ और नाक के अंदर छाले हो जाते हैं। मुँह से लार, नाक से पानी और आँखों से कीचड़ व पानी बहने लगता है। मादा पशुओं को गर्भपात हो जाता है। इस रोग में असावधानी करने पर दुधारू पशुओं को थनैल रोग हो जाता है, जिसके कारण दूध सूख जाता है।

सुरक्षा—ज्योंही किसी पशु को चेचक निकले—अपने क्षेत्र के पशु-चिकित्सालय के डाक्टर को तत्काल सूचना दें और सभी पशुओं को चेचक का टीका लगवा दें। पशुओं को लाल दवा के लोशन (१; १०००) से धोना चाहिये। पोटाशियम परमेगनेट लोशन इस रोग की उत्तम दवा है। रुग्ण पशुओं को स्वस्थ पशुओं से दूर कर दें।

चिकित्सा—रुग्ण पशुओं को लाल दवा के लोशन से धोना लाभप्रद है। इसके पश्चात् दानों पर बोरिक आयण्टमेण्ट लगाना चाहिए। उत्तम संक्रमणनाशक मरहम जैसे फाईजर कं० द्वारा निर्मित टेरामाइसिन मरहम या साराभाई कं० द्वारा निर्मित स्पेक्ट्रोसिन या आई० सी० आई० कं० द्वारा निर्मित मायबेसिन इत्यादि में कोई एक दिन में दो बार संक्रमित आक्रांत त्वचा पर लगायें।

यदि दस्त अधिक होते हों तो—४ तोला जीरा, २ तोला भाँग, ३ माशा लाल मिर्च और ६ माशा भुनी हींग का चूर्ण चावल के माँड़ या तीसी के माँड़ में मिलाकर पिलाना चाहिए।

खाकसीर (खूबकलां), चिरायता दोनों १-१ तोला चूर्ण कर पानी में सानकर खिलायें या गुनगुने पानी में घोलकर पिलायें। इससे ज्वर और श्लेष्मा में लाभ होगा।

चेचक में देह धोने के लिए —६ माशा नौसादर ३ छटांक सिरके में मिलाकर पशु के शरीर में लगाकर लाल दवा मिले पानी से पशु का शरीर धो डालना चाहिए।

दानों के फूट जाने पर —फिटकिरी ५ माशा, खड़िया ४ तोला, कसीस ३ माशा मिलाकर घावों पर भुरकना चाहिए।

दुर्बलता दूर करने के लिए—१ तोला कसीस, १ छटांक देशी शराब में मिलाकर दिन दो में बार देते रहने से पशु की निर्बलता दूर हो जाती है। साथ ही उसे सुपाच्य, हरा और पौष्टिक चारा-दाना खिलाना चाहिए।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रोगी पशु का दूध दुहने से पहले और बाद में हाथों को लाल दवा के लोशन से अच्छी तरह धो डाला जाय। सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। यदि दूध दुहनेवाला एक ही व्यक्ति हो तो स्वस्थ पशुओं को पहले दुहे, उसके बाद रुग्ण पशुओं को दुहे।

पशुशाला में कीटाणुनाशक औषधि का छिड़काव प्रतिदिन करते रहना चाहिए।

धनुर्वात या धनुस्तम्भ
(Tetanus)

धनुर्वात, धनुस्तम्भ, कम्होड़े, धनुष्टंकार, जमूगा (उर्दू) तथा अंग्रेजी में टिटेनस कहा जानेवाला यह भयंकर संक्रामक रोग यों तो गायों, भैंसों. बकरियों, भेड़ों, ऊँटों यहाँ तक कि कुत्तों को भी हो सकता है; किन्तु अधिकतर घोड़ों को होता है।

धनुर्वात क्लोस्ट्रीडियम टेलानी नामक जीवाणुओं के विष का स्नायु-संस्थान पर कुप्रभाव पड़ने से होता है। टिटेनस के दण्डाकर कीटाणु ताजे, गहरे व्रण में प्रवेश करके अपनी संख्या बड़ी तेजी से बढ़ाते हैं। ये सूक्ष्म कीटाणु सामान्यतः घोड़े और दूसरे पशुओं की आंतनलिका में पाये जाते हैं, किन्तु विशेष रूप से घोड़ों की आंत में पाये जाते हैं और लीद के साथ बाहर निकलते रहते हैं। जब

कोई पशु या मनुष्य जिसके शरीर में चोट या घाव हो, इन जीवाणुओं से युक्त लीद को छूता या उठाता है, तो शीघ्र ही ये जीवाणु उस चोट या घाव के द्वारा उसके रक्त में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसीलिए जब सड़क पर कोई व्यक्ति दुर्घटना में पड़कर चोट खा जाता है और रक्तस्राव होता है, तो डाक्टर लोग सावधानी के रूप में उसे टिटेनस-रोधक टीका (A. T. S.) लगा देते हैं। क्योंकि यह रोग इतना प्रचंड होता है कि यदि चोट आदि लगने पर टिटेनस के कीटाणु रक्त में प्रविष्ट हो जायें और ४ घंटे के भीतर ही उसे A. T. S. का इन्जेक्शन न लगा दिया जाय, तो बाद में टिटेनस रोगी को बचाना बहुत कठिन हो जाता है। टिटेनस के दण्डाकार कीटाणुओं के अंडों से युक्त मल जब पशु त्यागते हैं तो मल से उसका प्रसार वायुमंडल में हो जाता है। अन्य पशुओं के घावों में प्रविष्ट होकर उनके रक्त में पहुंचकर इस रोग की उत्पत्ति करते हैं। ये कीटाणु किसी घाव या खरोंच के मार्ग से शरीर में प्रविष्ट होकर रोगोत्पत्ति का कारण बनते हैं। इन कीटाणुओं के शरीर में प्रविष्ट हो जाने पर कुछ दिनों से लेकर तीन सप्ताह तक में रोग के लक्षण प्रगट होते हैं।

लक्षण—घोड़े इस रोग से शीघ्र प्रभावित होते हैं। इनमें शीघ्र ही रोग के लक्षण प्रगट होने लगते हैं। प्रारम्भ में कान खड़े हो जाना, आँखों की पलकों, झिल्ली आगे बढ़ जाना तथा उसमें सामान्य उत्तेजना पैदा होना, फिर मुख की पेशियाँ सिकुड़ जाना आदि लक्षण होते हैं। दोनों जबड़े अकड़ जाते हैं। सारे शरीर में ऐंठन की दशा उत्पन्न हो जाती है, यहाँ तक कि पूँछ तक अकड़ जाती है। रोग के बढ़ने पर सारा शरीर अकड़ जाता है। जबड़ा जकड़ जाने से मुँह नहीं खुलता। इसीलिए इसे हनुस्तम्भ भी कहते हैं। हनु माने ठोढ़ी या जबड़ा होता है। यह बहुत ही भयानक रोग है। पशु के शरीर के किसी भाग में काफी पसीना आता है। कब्ज भी हो जाता है। नथुने फैल जाते और ओंठ लटक जाते हैं, जिससे दाँत दीखने लगते हैं। शरीर के विभिन्न भाग कठोर हो जाते हैं। पूँछ उठी हुई तथा हिलती रहती है। घोड़ा ऐसे लगता है, मानो लकड़ी का घोड़ा हो। वह पैरों से भूसा खरोंचता है। इस रोग में प्रायः ज्वर नहीं होता। किन्तु

मरने से पहले १०२° फा० तक हो जाता है। श्वासनलियों की पेशियों में लकवा मार जाने से उसे श्वास लेने में कठिनाई होती है और अंत में श्वासावरोध के कारण ही उसकी मृत्यु हो जाती है। जुगाली करने वाले पशुओं में इस रोग के लक्षण इतने उग्र नहीं होते। उनका जबड़ा जकड़ जाने से वे जुगाली नहीं कर पाते और पेट में अफरा हो जाता है।

सुरक्षा —यदि पशु का कहीं घाव हो जाये या गहरी खरोंच लग जाये तो उसे तुरन्त साफ करके टिंचर आयोडिन लगायें और सुरक्षा के लिए तत्काल 'टिटेनस एण्टीटाक्सिन' ३००० से १०००० यूनिट घोड़ों का प्रयोग करायें। घोड़ा जब उन्माद की अवस्था में हो तो उसे नहलायें नहीं। घावों को भलीभाँति गर्म बोरिक लोशन से धो-पोंछकर प्रोटेजन सी पेनसिलीन मरहम ट्यूब (मे० एण्ड बेकर कं० निर्मित) जैसी कीटाणुनाशक दवा उसपर लगायें। आपरेशन से एक सप्ताह पूर्व 'टिटेनस टाक्साइड' १५०० यूनिट का इन्जेक्शन लगवायें। रुग्ण पशु को ठंढे, एकान्त और अँधेरे स्थान में रखें। जिन क्षेत्रों में बहुधा यह रोग पशुओं को होता रहता हो, वहाँ प्रत्येक पशु विशेषकर घोड़ों का प्रतिवर्ष 'टिटेनस एण्टीटाक्सीन' का टीका लगा देना आवश्यक है।

एलोपैथिक चिकित्सा—घाव को अच्छी तरह खोलकर उसे साफ करके तपे हुए लोहे से दाग देना चाहिए। इसके बाद पेनिसिलीन आयण्टमेण्ट लगाकर उसपर पट्टी बाँध दें। 'एण्टीटिटेनस सीरम' ऊँची मात्रा में ३ लाख अ० इ० सुई लगवायें। यदि आवश्यकता हो तो १२ घंटे बाद इसे फिर लगा दें। पेनिसिलीन जो सोडियम ऊँची मात्रा में मांस में सुई लगवायें। स्टॉमक ट्यूब की सहायता से 'क्लोरल हाइड्रेट' ३० ग्राम तेल में मिलाकर मुख में प्रविष्ट करें। मैगसल्फ का विसंक्रमित विलयन ५० से १०० मिलि० का त्वचा में इन्जेक्शन लगवायें। इस रोग में कब्ज बिल्कुल न रहना चाहिए, प्रतिदिन दो बार मैगसल्फ १० दिन तक लगातार दें। यदि तीव्र ऐंठन से पशु व्याकुल हो तो पैराल्डीहाइड का ५ से १५ मिलि० की मात्रा में शिरा या मांस में इन्जेक्शन लगवायें। नियमित रूप से चारा-पानी दें और कब्ज को दूर करने का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

थन पकना (थनैल रोग)

(Mastitis)

थनपका, थनफुला, थनैल, थनैला, थनोरा आदि नामों से जाना जानेवाला यह संक्रामक रोग दूध देनेवाले सभी पशुओं को हो सकता है। इस रोग में गाय-भैंस के बाँक (अयन) में सूजन आ जाती है। इस रोग के कारण विभिन्न प्रकार के कीटाणु होते हैं। यह कीटाणु असावधानी या गलत ढंग से दूध दुहने या दूध पीते समय बच्चे के दाँत गड़ जाने से क्षत हो जाने के कारण व्रण में प्रविष्ट होकर शोथ उत्पन्न कर देते हैं और थन को पका देते हैं।

लक्षण इसमें पशु का अयन तथा थन सूज जाते हैं। पशु को ज्वर हो जाता है। थन को देखने से ही सूजन स्पष्ट जान पड़ती है। थन में हाथ लगाने से पशु को पीड़ा होती है। इससे पशु उसे छूने नहीं देता। दूध दुहने पर दूध में रक्त, पीब और पानी मिला दूध निकलता है और कभी-कभी फटे हुए दूध के रूप में पानी-सा और फुटके-फुटके-से छिछड़े के रूप में अलग-अलग निकलना शुरू हो जाता है। फिर धीरे-धीरे दूध की मात्रा कम होकर कभी-कभी दूध बिल्कुल बन्द हो जाता है। थनों की सूजन कुछ कड़ी होती है और स्पर्श करने पर गर्म प्रतीत होती है। थनों में घाव हो जाया करते हैं, तब एक-दो थनों को ही नहीं पूरे अयन को यह रोग बेकार कर देता है। इस प्रकार दुधारू पशु दूध देने के योग्य नहीं रह जाता। तब उस पशु को रखने में पशुपालक को सिवा हानि के कोई लाभ नहीं होता, बल्कि उनकी छूत दूसरे पशुओं को लग जाने से अन्य पशु भी दूध देने योग्य नहीं रह जाते।

चूँकि यह एक दीर्घकालीन रोग है। और धीरे-धीरे बढ़ता रहता है; अतः सामान्य रूप से बहुत दिनों के बाद ज्ञात हो पाता है। धीरे-धीरे बढ़कर कभी-कभी यह रोग बहुत भीषण रूप धारण कर लेता है, यहाँ तक कि पशु की मृत्यु का कारण हो जाता है। प्रायः ग्रीष्म ऋतु में यह रोग उन पशुओं को भी हो जाता

है, जो दूध नहीं देते। पशु के व्याने के पश्चात् इस रोग के लगने का अधिक भय रहता है। पीड़ित थन दर्द करता है और दूसरे थनों की अपेक्षा अधिक गर्म रहता है। दूध दुहने समय पशु को कष्ट होता है।

सुरक्षा—दूध सदैव सावधानी के साथ पूरी मुट्ठी से दुहना चाहिए। दूध दुहते समय थन और हथेली के बीच अंगूठा न रक्खें। हाथ और थन को खूब साफ करके ही दूध दुहना चाहिए। दूध दुहने के बाद भी थन और हाथों को भली-भाँति साफ कर लेना चाहिए। पशु को स्वच्छ स्थान में रखें। स्वस्थ पशुओं को दुहने के बाद ही रोगी पशु को दुहना चाहिए। स्वस्थ पशुओं को रोगी पशु से तुरन्त अलग कर देना चाहिए। पशुओं के अयन और थन को चोट से बचाना चाहिए। यदि चोट लग जाये तो तुरन्त मरहम-पट्टी कर दें। थनपका रोग से पीड़ित थनों की मरहम-पट्टी करें और उन्हें कई बार सेकें। रूग्ण पशु के मल-मूत्र और बिछावन को पशुशाला से दूर हटाकर खाद के गड्ढे में दबा दें। पशु के अयन में यदि कोई घाव हो तो उसे खुला न रखें, तुरन्त मरहम-पट्टी करें। इसमें टेरामाइसिन का प्रयोग बहुत लाभप्रद है। अयन, थन और उसके आस-पास बगल आदि को भली-भाँति साफ कर रोगाणुहीन रखना चाहिए। कोई नया पशु लाने से पूर्व उसकी भली-भाँति डाक्टरी जाँच करा लेनी चाहिए। किसी पशु के थनैल हो जाने पर उसे सब पशुओं से अलग तो कर ही देना चाहिए, अन्य पशुओं के दूध की भी परीक्षा करा लें। जिन रुग्ण गायों पर चिकित्सा का कोई प्रभाव न पड़ता हो और उनका राग दूर न हो, उन्हें बेच दें या गोशाला भेज दें।

चिकित्सा – थनपका रोग दो प्रकार का होता है—तीव्र थनपका—जो थोड़े ही दिन का हो और जीर्णथनपका— जो बहुत दिनों तक चिकित्सा कराने पर दुस्साध्य और जटिल हो जाता है, जिससे कैन्सर या गैंग्रीन की आशंका रहती है।

तीव्र थनपका दो विशेष प्रकार के कीटाणुओं से उत्पन्न होता है। इसमें अयन में कड़ी गाँठ, प्रदाहयुक्त शोथ और दर्द रहता है। चिकित्सक को

सावधानी से देखना चाहिए कि उसमें गैंग्रीन तो नहीं उत्पन्न हो रहा है। गैंग्रीन होने पर वह बहुत ही ठंढा और नीले रंग का प्रतीत होता है। ऐसी दशा में रुग्ण पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें। थन के स्वस्थ भागों से पहले दूध दुहकर फिर पीड़ित स्तन में हाथ लगायें। पीड़ित भाग का दूध जितनी जल्दी सम्भव हो सके, निकाल दें। पूरी तरह से दूध दुह लेने के बाद निम्नांकित दवाओं में किसी एक का इन्जेक्शन निरन्तर तीन दिनों तक लगवायें।

ग्लेक्सो कं० का, फाईजर कं० का, सायनेमिड कं० का औरियोमाइसिन, इन्टामैगरी या एस. के. एण्ड एफ. कं० का नेफुरान या फाईजर का और साराभाई कं० का पेन्डीस्टीन और पेन्डीस्ट्रीन एस. एच. यार्ड्रोसित्ता मैसटाईटीस ट्यूब, आई. डी. पी. एच का या बोकार्ड का टाइलाक्स मैसटाईटिस ट्यूब की पीड़ित पशु के स्तन में सुई लगवायें। जब ये इन्जेक्शन लगाये जायें तो ऐसे पशु के दूध का मनुष्य को ७२ घण्टे तक प्रयोग न करना चाहिए। यदि उक्त एण्टीबायोटिक दवायें उपलब्ध न हो सकें तो ग्लिसरिन और एक्रिफ्लेविन १;१००० शक्ति के २० मिलि० को हर पीड़ित भाग में तीन दिन तक प्रयोग करना चाहिए। अयन में एण्टीफ्लेजिस्टीन की पट्टी बांध देनी चाहिए।

यदि उक्त चिकित्सा से पूर्ण लाभ न हो तो रोग दूसरे तीव्र जीवाणुओं से उत्पन्न समझकर निम्नांकित दवाओं के मिश्रण का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

प्रोकेन पेनसिलीन जी—५०००० यूनिट, डी हाइड्रोस्ट्रेप्टोमाइसिन –१०० मिग्रा०, सोडियम सल्फाडीमाइडिन—३३·३ प्रतिशत, सोल्यूशन—५ घ० सेमी०। इन दवाओं को ४० घ० से० परिस्रुत जल (डिस्टिल्ड वाटर) में घोलकर इन्जेक्शन तैयार करें और निरन्तर ४ दिनों तक पशु के प्रत्येक थन में लगायें। यदि पेनिसिलीन दुगुनी मात्रा यानी एक लाख यूनिट कर दी जाय तो चार के बजाय दो ही दिन इन्जेक्शन लगाना पर्याप्त होगा। यदि उक्त मिश्रण में ५ मि० ग्रा० कोबाल्ट सल्फेट और मिला दिया जाय, तो इन्जेक्शन और भी अधिक सफल और लाभप्रद सिद्ध होगा। इससे सारा पीबजनित संक्रमण दूर हो जाता है।

जीर्ण थनपका—थनपका में पहले सूजन और प्रदाह वाले स्थान को डेटाल, फिनायल लोशन, लाल दवा के बहुत हल्के घोल या नीम की पत्तियाँ डालकर उबाले हुए पानी से अच्छी तरह धोकर स्वच्छ कपड़े या रूई से पोंछकर सुखा लें और उस पर बी. बी. बी. का हरवैक्स मरहम लगा दें। जब तक घाव ठीक न हो जाय प्रति २४ घण्टे बाद पीड़ित स्थान को साफ करके हरवैक्स मरहम लगा दिया करें। इसका पाउडर भी आता है, जिसे घाव पर छिड़कने से पूर्ण लाभ होता है। सायनेमिड कं० का औरियोमाइसिन मैस्टाइटिस मरहम पूर्ववत पीड़ित स्थान पर प्रति २४ घण्टे पर लगाना चाहिए। डाइक्रिस्टिसिन .१ ग्राम इन्जेक्शन के जल में घोलकर कीटाणुओं से उत्पन्न थनैल रोग से आक्रान्त पशु के स्तन में इन्जेक्शन लगाना चाहिए। नित्य लगातार चार दिन तक इन्जेक्शन लगवायें। पिछली पंक्तियों में लिखे गये प्रोकेन पेनसिलिन डा० हा० स्टे० मा०, को० स० तथा कोबाल्ट का सम्मिलित इन्जेक्शन निरन्तर चार दिन तक लगाने से पीव-जन्य संक्रमण दूर हो जाता है। साथ ही टेरामाइसिन ट्यूब पुल्टिकेट से लगायें।

औरियोमाइसिन ओबनेट्स या सोल्यूबल पाउडर काफी पानी में घोलकर प्रतिदिन दो बार प्रयोग करायें। इसके साथ ही सल्मेट का पेय विलयन (Drinking water Solution) १२·५% शक्तिवाला ६० मि० लि० की मात्रा में ४ लीटर पानी में घोलकर पहले दिन और फिर आवश्यकतानुसार मात्रा में दूसरे दिन पिलायें। तीव्र दशा में सल्मेट २५% वाला विलयन पहले दिन २५ मि० लि० प्रति ४५ किलो० शरीर भार के अनुसार शिरा, उदयकिला, त्वचा या मांस में इन्जेक्शन लगवायें। फिर दूसरे दिन १३ मि० लि० प्रति ४५ किलोग्राम शरीर-भार के अनुसार इन्जेक्शन लगवायें। सल्मेट पहले दिन २ ओबलेट्स प्रति ४५ कि० शरीर भार के अनुसार तथा फिर दूसरे दिन १ ओब्लेट्स प्रति ४५ किलो० शरीर भार के अनुसार खिलायें।

———

संक्रामक गर्भपात

(Bruallosis Abortion)

यहां गर्भपात से अभिप्राय चोट, अधिक भार, दौड़ने, कूदने, लाठी-डंडे की चोट लग जाने या गाभिन पशु के दूसरे पशु से लड़ पड़ने से, आघात लग जाने से गर्भपात हो जाने से नहीं है, अपितु संक्रामक गर्भपात पशुओं का एक विशेष रोग है। इस रोग का कारण प्राय: ब्रूसेला अबोरटस नामक ग्राम नेगेटिव कोक्को बेसिलस कीटाणु होते हैं, जो त्वचा और नेत्र इत्यादि द्वारा गाभिन पशुओं के शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। भैंसों और विशेषकर गायों में पाया जाने-वाला यह संक्रामक रोग भी बहुत व्यापक और हानिकर है। इस रोग के कारण पशुओं का गर्भपात होना, दूध उत्पादन बन्द हो जाना तथा अस्थायी या स्थायी रूप से पशु के बंध्या हो जाने से पशुपालक को बहुत आर्थिक हानि होती है। छूत के इस रोग में आगे भी पशु का गर्भ उस समय तक निरन्तर गिरा करता है, जब तक कि समुचित ढंग से उपचार करके उसके शरीर और गर्भाशय को पूर्णरूप से कीटाणुरहित न कर दिया जाय। संक्रामक गर्भपात के रोगाणु अन्य पशुओं में भी शीघ्र ही फैलकर उनमें भी यही रोग उत्पन्न कर देते हैं।

यदि कोई सांड़ या भैंसा इस रोग से ग्रस्त गाय या भैंस से समागम करता है, तो इस रोग के कीटाणु उसकी जननेन्द्रिय में प्रविष्ट हो जाते हैं और फिर वह सांड़ जब किसी स्वस्थ गाय से सहवास करता है, तो उनकी कीटाणुओं को उसके गर्भाशय में पहुँचा देता है और फिर वह गाय या भैंस गाभिन हो जाती है, किन्तु कुछ समय पश्चात् उसका गर्भ गिर जाता है। इसके अतिरिक्त इस रोग के कीटाणु रुग्ण पशु के मल-मूत्र, लार, जूठे चारे-दाने आदि के द्वारा भी अन्य पशुओं में पहुँच जाते हैं। अतः इस रोग की रोकथाम के लिए यहां यह आवश्यक है, रोग के कीटाणुयुक्त सांड़ के समागम से बचाया जाय, वहां यह भी आवश्यक

है कि इस रोग से आक्रांत गाय-भैंसों से स्वस्थ गायों को सदैव दूर रखना चाहिए। रुग्ण पशु के गोबर, मूत्र आदि को गड्ढे में दबा देना चाहिए और उनके बाँधने, स्थान पर चूना के कलई, फिनाइल आदि कीटाणुनाशक दवायें छिड़क देना चाहिए। रुग्ण पशुओं की योनि से गर्भपात के पश्चात् निकले हुए दूषित स्राव तथा आंवल आदि भी इस रोग के कीटाणु फैलाने में सहायक होते हैं। अतः उन्हें भी शीघ्र ही भूमि में गाड़ देना चाहिए।

लक्षण—गर्भपात होने से पूर्व पशु को व्याकुलता होती है और बियाने के सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। योनि से तरल स्राव बहने लगता है। बच्चा गिरने से पूर्व गर्भाशय से दुर्गन्धयुक्त रक्त मिला स्राव निकलने लगता है। गर्भाशय-स्राव में यूप भी होता है। यदि किसी गाय, भैंस को यह रोग एक बार हो जाता है, तो प्रत्येक गर्भ में इसकी आशंका रहती है। इस रोग की छूत से नर पशुओं के अण्डकोषों में सूजन हो जाती है। इस रोग से पीड़ित पशुओं के दूध में भी इस रोग के कीटाणु पाये जाते हैं। यह रोग गर्भावस्था के अन्तिम तीन महीनों में विशेषकर होता है। गर्भपात के बाद प्रायः जेर अन्दर रह जाता है।

इस रोग का मुख्य और स्पष्ट लक्षण यह है कि इस रोग की छूत से आक्रांत गाय की गर्भाशय की झिल्ली पर शोथ आ जाता है, परिणामस्वरूप उसका गर्भ कच्चा ही गिर जाता है। ऐसा गर्भपात प्रायः पांचवें महीने से लेकर आठवें महीने के भीतर होता है। यदा-कदा पूरा गर्भकाल व्यतीत होने पर भी जो बच्चा होता है, वह पूर्ण रूप से विकसित नहीं होता। गर्भपात हो जाने पर प्रायः जेर (आंवल) नहीं निकलती, जिसका निकल जाना ही आवश्यक है। यदि जेर पूर्णरूप से स्वतः न निकले, तो उसे निम्नांकित विधि से निकाल देना चाहिए। किन्तु यथासम्भव यह कार्य किसी दक्ष और अनुभवी व्यक्ति से ही कराना चाहिए। दो-तीन दिन में स्वतः जेर न गिरे तब यत्न करें।

जेर निकालने की विधि—सर्वप्रथम हाथों के नाखून कटाकर उन्हें भली-भाँति साबुन से साफ़ कर लें। फिर नीम का तेल या किसी भी मीठे तेल में डेटाल या कार्बोलिक एसिड या फिनाइल मिलाकर हाथों को कुहनी तक खूब चुपड़ लें। फिर योनि मार्ग द्वारा पशु के गर्भाशय में हाथ डालकर जेर के छोटे-छोटे टुकड़ों को सावधानी से खींचकर निकाल लें। अन्दर हाथ डालने पर इस बात का ध्यान रखें कि गर्भाशय में अन्दर जुड़े किसी मांस के भाग को बलपूर्वक निकालने का प्रयत्न न करें और न गर्भाशय पर किसी प्रकार की खरोंच आने पाये। इस प्रकार दो-तीन बार में जेर को निकाल बाहर करें। जेर निकालने के बाद पहले वर्णित डूस क्रिया के द्वारा गर्भाशय की सफाई कर दें। जेर को भूमि में गड्ढा खोदकर कलई-चूना डालकर भली-भाँति गाड़ दें।

जेर गिराने की प्रभावी औषधि—मूली के बीज, सोया के बीज, गाजर के बीज, अमलतास की छाल, काले तिल, हालों (चनसुर) के बीज, गुलाब के फूल १॥—२॥ तोला, महुवा के फूल ५ तोला सबको ४ सेर पानी में पकायें। चौथाई जल शेष रहने पर उसमें आधा सेर गुड़ मिलाकर कपड़े से छानकर गुनगुना ही पिला दें। इस दवा को पिलाने से भीतर रुकी हुई जेर स्वतः निकल जायगी, हाथ डालकर निकालने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यही दवायें आठवें भाग की मात्रा में पिलाने से स्त्री का रुका हुआ मासिक धर्म खुल जाता है।

सुरक्षा—रुग्ण पशुओं से स्वस्थ पशुओं को बिल्कुल पृथक् रखें। पशुओं का अगलूटीनेशन टेस्ट (Agglutination Test) करायें। पशुओं के रख-रखाव की उत्तम व्यवस्था करें। ६ से ८ महीने के पशु को इसका टीका लगवा लें। रुग्ण पशुओं को अलग करके उस स्थान पर कीटाणुनाशक दवा का छिड़काव करें। जिस स्थान पर रोग हो, वहाँ का कोई पशु न लायें। गर्भपात के पश्चात् भ्रूण, जेर और बिछावन को जला दें या भूमि में गहरा गाड़ दें। फिर उस स्थान को साफ करके चूना-कलई या कोई कीटाणुनाशक दवा छिड़क दें। गर्भपात के पश्चात् योनि और उसके आसपास का स्थान कीटाणुनाशक दवा मिले पानी से धो दें तथा गर्भाशय का डूश द्वारा प्रक्षालन कर दें।

चिकित्सा—इस रोग में अमेरिकन दवा ब्रूसेला स्ट्रेन १९ वेक्सीन के प्रयोग से सफलता मिलती है। यह वेक्सीन ५ मिलि० की मात्रा में त्वचा में इन्जेक्शन लगाया जाता है। टेस्ट के पाजेटिव (स्पष्ट) होने पर नौ मास की अवस्था के बीच काफहुड वेक्सीन सुरक्षा के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

यदि गर्भपात होने की आशंका दिखाई दे, विशेषकर जब पशु को तीव्र वेदना हो, साथ ही चमकीला लाल रक्त गिरने लगे, तो सेलिन ५०० मिग्रा० की दो टिकिया और केपिलिन की दो टिकिया (ये दोनों दवायें ग्लेक्सो कं० द्वारा निर्मित हैं) को मिलाकर ऐसी एक मात्रा ४-४ घंटे बाद, यदि बहुत तीव्र अवस्था हो तो १-१ घंटे बाद खिलायें। साथ ही प्रति ६ घंटे बाद ग्लेक्सो निमित विटियोलिन (Viteolin) १०० मिग्रा० की २ से ४ टिकिया खिलायें। सायनमिड कं० का एक्रोमाइसिन या हैक्स्ट क० का हास्पसाइक्लिन का ऊँची मात्रा में प्रयोग करना विशष लाभप्रद है।

पशु को गर्भावस्था में चोट लग जाने से गर्भपात का भय हो तो बायर कं० का प्रोवटाल एम्पूल का मांस में इन्जेक्शन लगवाय और इस दवा की टाब्लेट्स ६-६ घंटे बाद खिलायें। अवस्था भयानक होने पर ल्यूटोसाइक्लिन (सिबा कं० निर्मित) २५ मिग्रा० का एक इन्जेक्शन मांस में लगाकर विटामिन ई की चार टिकिया दिन में चार बार खिलायें।

यदि गर्भाशय बाहर निकल आया हो या काला खून निकल रहा हो, बहुत अधिक दुर्बलता हो तो बायर कं० के केम्पोफेरान के १-२ कैप्सूल प्रतिदिन एकबार खिलायें और बूट्स कं० का ल्यूटोस्टेब २ एम्पूल्स की मांस में सूई लगवायें।

यदि गर्भपात हो चुका हो और जेर आदि निकलने में विलम्ब हो रहा हो तो हिन्द कं० निर्मित एर्गोसोल (Ergoseal) २-२ कैप्सूल दिन में तीन बार निगलवायें।

यदि गर्भपात रोका न जा सके, रक्तस्राव होता जा रहा हो तो ग्लेक्सो का अर्बोलिन (Erbolin) १ टिकिया प्रतिदिन खिलायें। इसके प्रयोग से पूर्णरूप से गर्भपात हो जाता है और रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

ज्वर के साथ दूसरे उपद्रवों से युक्त गर्भपात में इंडियन हर्बस कं० का हरबिनाह २ कैप्सूल देना चाहिए। साथ ही प्रोकेन पेनिसिलिन (साराभाई निर्मित) ८ लाख यूनिट का एक इन्जेक्शन प्रति १२ से २४ घंटे बाद मांस में लगायें। सल्फाडायाजोन (एस० डी० जेड० कं० निर्मित) की २ टिकिया ४-४ घंटे बाद खिलायें।

अधिक रक्तस्राव होने पर दुर्बलता दूर करने के लिए लेडरली कं० निर्मित पेरिहेमिन (Perihemin) कैप्सूल १-२ दिन में तीन चार बार खिलायें।

जेर निकालने और गर्भाशय की पूरी सफाई के लिए इंडियन हर्बस रिसर्च की प्रजना (Prajana) २-३ कैप्सूल गुड़ या आटे के अन्दर रखकर खिलायें। इसके प्रयोग से ६ से ८ घंटे में जेर निकलकर गर्भाशय साफ हो जायेगा। यदि ८ घंटे तक जेर न निकले तो फिर खिलायें। इस कार्य के लिए बी० बी० बी० कं० की बाँझना दवा उपर्युक्त मात्रा में उपयोगी है। यदि गर्भाशय में बच्चा मर गया हो तो इन दवाओं के प्रयोग से मुर्दा बच्चा जेरसहित निकल आता है। गर्भपात के पश्चात् पशु को एण्टीसेप्टिक दवाओं का इन्जेक्शन लगाना, एण्टीसेप्टिक टिकिया खिलाना और एण्टीसेप्टिक लोशन से डूश क्रिया द्वारा गर्भाशय का भली-भाँति प्रक्षालन कर देना चाहिए।

चूँकि इस रोग के कीटाणुओं का मनुष्य पर भी संक्रमण हो सकता है, अतः स्त्रियों को भी इस रोग की छूत लग सकती है। इसलिए आवश्यकता है कि स्त्री ऐसे पशु की सुश्रूषा न करे। यदि करनी ही पड़े तो अपने शरीर और वस्त्रों को कीटाणुरहित करके ही भोजन करें। ऐसी गायों का दूध भी सदैव अच्छी तरह उबाल करके ही प्रयोग करना चाहिए।

इन्फ्लुएंजा
(Influenza)

इन्फ्लुएंजा रोग से प्रायः घोड़े, भेड़ें और कुत्ते ही पीड़ित होते हैं। कभी-कभी दूसरे पशुओं को भी यह रोग हो जाता है। इस रोग का कारण नोमन सेण्टल नामक एक विशेष प्रकार के कीटाणु होते हैं।

लक्षण—रोग का आरम्भ होने पर पशु को तीव्र ज्वर हो जाता है, जो १०५° फा० तक भी पहुँच जाता है। पशु की नाक और आँखों में पतला स्राव होता है। भूख कम, प्यास अधिक लगती है। सुस्ती और दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है। प्रायः पलकों में सूजन आ जाती है। गले में खराश पैदा हो जाती है और खाँसी आने लगती है। संधियों में शूल होने लगता है। इसके साथ ही साथ प्रायः न्यूमोनिया भी हो जाता है। सामान्यतः यह रोग एक सप्ताह से तीन सप्ताह तक रहता है।

एलोपैथिक चिकित्सा—रोग हो जाने पर पशु को चारा कम दिया जाय। उसे टाट या मोटे कपड़े की झूल से ढककर रखा जाय। घोड़ों को इस रोग में थोड़ी-सी ब्राण्डी और अण्डों का प्रयोग भी लाभप्रद है। इस रोग में कॉफी भी लाभ पहुँचाती है। यदि न्यूमोनिया हो जाय तो पहले बताई गई विधि से उसकी चिकित्सा की जाय।

पशुओं को इस रोग में सदैव सूखी घास, जौ का भूसा, चोकर, भूसी आदि सूखे खाद्य पदार्थ दिये जायें। चारागाहों में चरने के लिए न छोड़ा जाय।

घोड़े को इन्फ्लुएंजा हो जाने पर एक्रोमाइसिन का इंजेक्शन २ से ४ मि० ग्रा० प्रति किलोग्राम शरीर-भार के अनुपात से मांसतन्तु में गहरा चूतड़ के मांस में इंजेक्शन लगायें या ऐम्पिसिलीन २-२ ग्राम सुबह-शाम या म्यूनोमाइसिन की ए.फ. एच. सूई सुबह शाम, साथ मे एविल १० एम० एल० तथा डेक्सामेथासोन की सूई ५-५ एम० एल० सुबह-शाम लगाना आवश्यक है। दूध देने वाले पशु को यह इंजेक्शन न लगवायें; क्योंकि इसके प्रयोग से दूध दूषित हो जाता है। जब कोई प्रतिकूल या हानिकर प्रतिक्रिया दिखाई दे

तो दवा का प्रयोग तत्काल बन्द कर दें। यह इन्जेक्शन १०० और ५०० मि० ग्रा० के वायल्स में बिकता है। इन्हें वाटर फार इन्जेक्शन में घोलकर मांस में सूई लगायें। घोड़े के पीने के पानी में क्लोरीन दवा मिलाकर पिलायें।

बी० बी० बी० कं० का कफगान घोड़ा, गाय, बैल और भैंस को २५ से ३५ ग्रा०, इनके बच्चे को १० से १५ ग्राम, सूअर को १५ से २० ग्राम, भेड़ और बकरी को १० ग्राम तथा कुत्ते को २ से ४ ग्राम दवा शीरे में अवलेह-सा बनाकर दिन में तीन बार चटायें। पूरा लाभ होने तक निरन्तर इसका प्रयोग करते रहें।

साराभाई कं० निर्मित डाइक्रिस्टिसिन फोर्ट (Dicrysticin Forte) या वेरम्फीन १ ग्राम या कोनम्ब्री १ ग्राम या कैम्पीसिलिन १ ग्राम का मांस में इन्जेक्शन प्रति ६ से १२ घन्टे तक पूर्ण लाभ होने तक लगाते रहें।

ग्लैक्सो कं० का म्यूनोमाइसिन (Munomycin) २० लाख अ० इ० और २·५ ग्रा० सहित विशिष्ट एन्टीजेन्स बड़े पशु को तथा ४ से ८ लाख अ० इ० छोटे पशु को प्रतिदिन त्वचा या मांस में इजेक्शन लगायें।

तीव्र संक्रमण में साराभाई निर्मित आक्सीस्टेक्लीन इंजेक्टेबुल या टेरामाइसिन या कोली साइक्लिन रेड विलयन ५० मि० ग्रा० प्रति मि० लि० शक्ति का १०, २० और ५० मि० लि० वायल का इन्जेक्शन मांस या शिरा में लगायें। बी० बी० बी० कं० का फ्लूहरेक्स २ कैप्सूल गुड़ की डली में भरकर दिन में दो बार निगलवायें।

कंठरोहिणी
(Calf Diphtheria)

हिन्दी में कंठरोहिणी और अंग्रेजी में काफ डिफ्थेरिया (Calf Diphtheria) नामक यह रोग गाय, भैंस, घोड़ों तथा बकरियों के बच्चों को उनके जन्म के तीसरे दिन से छः मांस की आयु तक प्रायः होता है। यह रोग डिफ्थेरिया नामक एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं से उत्पन्न होता है। यह रोग जीवाणुओं के द्वारा एक पशु से दूसरे पशुओं में भी फैल जाता है। दुर्बल बच्चों पर शीघ्र और स्वस्थ बच्चों पर यह रोग धीरे-धीरे अपना प्रभाव डालकर उन्हें रोगाक्रांत कर देता है।

लक्षण—इस रोग का प्रारम्भ होने पर बच्चे को ज्वर हो जाता है और भूख बन्द हो जाती है। मुंह, जीभ, गला और स्वरयंत्र की श्लेष्मिक कला में शोथ हो जाती है। पशु के मुंह से लार बहती है और खांसी आती है। नाक से पतला पीला स्राव बहता है। यदि आंतों तक रोग का प्रभाव हो जाता है, तो पतले दस्त आने लगते हैं।

यह रोग जाड़े और बसंत ऋतु में अधिकांशतः फैलता है।

सुरक्षा—रुग्ण पशु के स्वास्थ्य और देखभाल का विशेष ध्यान रखें। रुग्ण पशु को 'डिफ्थेरिया एण्टीटाक्सिन सीरम' का इन्जेक्शन लगवायें। रुग्ण पशु के जूठे चारा-दाना, घास, बिछावन आदि को जला दें या बाहर भूमि में गाड़ दें।

एलोपैथिक चिकित्सा—मुंह में बोरोग्लीसरीन लगायें। सल्फापायरिडीन या सल्फामेराजीन खिलायें। एण्टीडिफ्थेरियाटाक्सिनसीरम का इन्जेक्शन लगवायें। जब तक पूरा लाभ न हो जाय, औषधिक्रम चालू रखें।

सायनेमाइड कं० का ऑरियोमाइसिन और सल्मेट खिलायें। यदि डिफ्थेरिया की कृत्रिम झिल्ली कंठ में पड़ गई हो तो उसे स्टर्लाइज्ड चिमटी और कैंची से काट कर निकाल दें।

बछड़े के रक्त में विष

(Pyo-Septicaemia of New Born)

बछड़े या बच्चे के रक्त में विष फैल जाना या अंग्रेजी में पाइयो सेप्टीसीमिया नामक इस रोग में गाय और भैंसों के बच्चे विशेष रूप से पीड़ित होते हैं। इस रोग का कारण 'सालमोनीला' श्रेणी के कीटाणु का संक्रमण होता है। अन्य प्रकार के बेक्टीरिया भी इस रोग के कारण होते हैं। इस रोग में पीव उत्पन्न करने वाले कीटाणु बछड़े के रक्त और शरीर में विषैला प्रभाव उत्पन्न कर देते हैं। इनकी छूत विशेषकर बछड़े-बछिया में अपनी माँ के थयन में हुए घाव वाले थन को चूसने से प्रायः फैलता है। बच्चे के शरीर के सारे रक्त में विष फैल जाता है।

लक्षण—बहुत छोटे प्रायः दो दिन के बच्चे इस रोग में बहुत भयंकर रूप से पीड़ित हो जाते हैं और एक-दो दिन में ही मर जाते हैं। रोगारम्भ में कैई जैसा मटमैले रंग का दस्त आता है, जो शीघ्र ही पतले दस्तों का रूप धारण कर लेता है। बार-बार पतले दस्त होते हैं और दस्तों से खट्टी गंध आती है। साथ ही ज्वर रहता है, जो निरन्तर बढ़ता जाता है। पेट में दर्द होता है। कुछ बच्चों में सूजन आ जाती है और कुछ को न्यूमोनिया हो जाता है और विषले लक्षण प्रगट होते हैं। इस रोग में प्लीहा, आँतें और फेफड़े पीड़ित हो जाते हैं। बड़े बछड़े-बछियों को यह रोग उतना उग्र नहीं होता है। इस रोग से पीड़ित बछड़-बाछिया दूध नहीं पीते और चलन-फिरन में उन्हें कष्ट होता है। अतिसार के साथ ही आँतें प्रदाह-युक्त हो जाती हैं। उनपर चिपचिपा स्तर चढ़ जाता है। फेफड़ में सर्दी-युक्त न्यूमोनिया के तीव्र लक्षण देखते हैं। सालमोनीला वर्ग के कीटाणुओं से संक्रामत इस रोग में यकृत और प्लीहा में वृद्धि हो जाती है; आंतरिक अंगो में विविध परिवर्तन देखते ह।

एलोपैथिक चिकित्सा—इस रोग में जब दस्त आने लगे तो एक दो दिन के लिए खाना बन्द कर दें और उबाले हुए स्वच्छ जल में सेलोल (Salol) या टैनिन १ ग्राम मिलाकर पिलायें।

सल्फाथायाजाल ४ ग्राम की टिकिया प्रतिदिन तीनबार खिलायें। एण्टि-बायोटिक दवाओं में पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन और टेरामाइसिन का प्रयोग बहुत ही लाभप्रद है।

पेनीसिलीन ४ से २० लाख यूनिट का मांस में इन्जेक्शन लगायें।

मे० एण्ड बेकर कं० का स्ट्रेपेन (Strepen) की टिकिया चारा में मिलाकर खिलायें या माँस में १ ग्राम का प्रतिदिन इन्जेक्शन लगायें।

टेट्रासाईक्लीन २ से ४ मि० ग्रा० प्रति किलोग्राम शरीर-भार के अनुसार मांस में इजेक्शन लगवायें। पहले दो सप्ताह में बछड़े को प्रतिदिन ६ से ८ प्रतिशत शारीरिक-भार की दृष्टि से ३–४ बार दूध पिलायें। यदि उसके शरीर में विटामिन एं की कमी हो तो प्रतिदिन १ से २ मि० लि० तक शार्क लिवर (Shark

Liver oil) दूध में मिलाकर दें। स्वच्छता का विशेष ध्यान दें। हैक्स्ट कं० का होस्टाकार्टिन एच० २० मि० लि० की त्वचा में सुई लगायें तथा साराभाई कं० का आक्सीस्टेक्लिन ४० से ६० मि० लि० शिरा में इन्जेक्शन करें।

सल्फाडीमीडीन ३३·३% १०० से २०० मिलि० ३३½ प्रतिशत शक्ति का विलयन प्रारम्भिक मात्रा के रूप में प्रयोग करें।

सालमोनीला की छूत से वयस्क पशुओं में पैराटाइफाइड उत्पन्न हो जाता है, जिससे भूख बहुत कम हो जाती है। दूध देने वाले पशुओं को दूध कम हो जाता है। ज्वर १०४° से १०६° फा० तक पहुँच जाता है। यदि रोग तीव्र हो तो प्रायः २४ घण्टे में मृत्यु हो जाती है। यदि गाय गर्भवती हो तो गर्भपात हो जाता है। प्रायः आँतों, वृक्कों, प्लीहा, पित्ताशय पीड़ित हो जाते हैं। प्रायः प्रबल अतिसार और पेचिश हो जाती है।

साल्मोनीला कीटाणुओं से संक्रमित रोग में टेरामाइसिन ओकोटश इन्जेक्शन और टी० एस० ५ के पाउडर को खिलायें या इन्जेक्शन लगायें या डाईक्रिस्टि-सिन १ ग्राम का इन्जेक्शन शिरा में लगायें। प्रतिदिन तीन बार थेलाईल सल्फा-थायाजोल की ४ ग्राम की टिकिया खिलायें।

रक्तमूत्र रोग

(Contagious Red Water)

अन्य संक्रामक रोगों की तरह ही पशुओं को खूनी पेशाब आना भी एक संक्रामक और भयंकर रोग है। इसे अंग्रेजी में कंटेजियस रेड वाटर या हैमा यूरिया कहते हैं। इस रोग में पशु के मूत्र से रक्त या रक्त के छिछड़े निकलते हैं। यह खूनी पेशाब रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कम और रोग बढ़ने पर अधिक होता है। इस रोग की उत्पत्ति के दो कारण हैं—

(१) पशुओं का रक्त चूसनेवाली किलनियों-चिचड़ियों को खानेवाली परोप-जीवी चिड़ियां जब पशु की चिचड़ियों को निकाल कर खाती हैं, तो त्वचा में

चिपकी हुई उन किलनियों के निकालने से पशु के शरीर से रक्त निकल आता है, ऐसे किसी रुग्ण पशु का—जिसके शरीर में इस रोग के विषाणु होते हैं—रक्त चूसने के बाद वह किसी दूसरे पशु की चिचड़िया निकालकर रक्त चूसती है तो स्वस्थ पशु के रक्त में भी रोग के विषाणु प्रविष्ट हो जाते हैं।

(२) भारत में यह रोग प्रायः कुमायूँ पर्वतमाला, दार्जिलिंग, कुल्लूघाटी आदि के पहाड़ी क्षेत्रों में ही विशेष रूप से पाया जाता है। वहां मच्छर अधिक होते हैं। किसी रोगी पशु के थनों का रक्त चूसकर जब वे मच्छर स्वस्थ पशुओं के थनों को जाकर काटते हैं और उनका रक्त चूसते हैं, तो अपने साथ ले गये रोगाणुओं को उसके रक्त में प्रविष्ट कर देते हैं और इस प्रकार यह रोग फैलता चला जाता है।

सामान्यतः यह रोग दो वर्षों से अधिक आयु के गोपशुओं को होता है और उनकी छूत अन्य पशुओं में भी फैल जाती है। इसके अतिरिक्त यह रोग विशेषतया अंग्रेजी व अच्छी नस्ल के बैलों को भी होता है, वैसे अन्य पशुओं, कुत्तों और घोड़ों को भी छूत द्वारा लग जाता है। यह रोग प्रायः ग्रीष्मकाल में जब फैलता है तो इसका वेग बहुत तीव्र होता है। वैसे शरदकाल में भी यह रोग होता है, पर तब इसका आक्रमण धीरे-धीरे होता है। कभी-कभी यह बारहों महीने ही फैला करता है।

लक्षण—इस रोग के प्रारम्भ में पशु को तीव्र ज्वर हो जाता है, उसकी जीभ और आंखो में पीलापन आ जाता है, जैसे पाण्डु रोग हो गया हो। कभी-कभी एक-दो दिन बाद ज्वर उतर जाता है और देह भी ठंडी हो जाती है। मूत्र के साथ रक्त या रक्त के छिछड़े आते हैं तथा पशु को कब्ज हो जाता है। इस रोग का बिल्कुल ठीक निदान तो रक्त-परीक्षा या मूत्र-परीक्षा द्वारा ही हो सकता है; किन्तु एक साधारण विधि भी इस रोग का पता लगाने की है। वह यह कि पशु के मूत्र को किसी पात्र में भरकर रख दें। कुछ देर बाद रक्त बर्तन की तली में बैठकर जम जाता है और मूत्र का भाग ऊपर आ जाता है। इस प्रकार तली में नीचे जमी हुई रक्त की तह से इस रोग की विद्यमानता स्पष्ट प्रकट हो जाती है।

एक विशेष ध्यान देने की बात यह है कि प्रायः पशुओं को गर्मी की अधिकता, पित्त-प्रकोप या विबन्ध आदि के कारण खनी रंग का गहरा पीला तथा लाल सा मूत्र आने लगता है, जिससे अनभिज्ञ व्यक्ति उसे भी रक्तमूत्र रोग समझ सकता है। अतः उपरोक्त लक्षणों को ध्यान में रखने से इस रोग की स्पष्ट पहचान हो सकती है।

सुरक्षा—इस रोग की रोकथाम के लिए भी आवश्यक है कि रुग्ण पशु को अन्य पशुओं से तत्काल अलग कर दें, क्योंकि यह भी एक संक्रामक रोग है। पशु-चिकित्सक को बुलाकर ट्रिपिन ब्लू (Tripen Blue) का इन्जेक्शन लगवा दें। यह एक नीले रंग की औषधि है जो इस रोग की रोकथाम में बहुत गुणकारी सिद्ध हुई है। चूंकि यह रोग चिचड़ियों और मच्छरों से फैलता है, अतः पशुओं के बांधने के स्थान पर नीम की पत्तियों और गन्धक का धुंआ करें। रुग्ण पशु को किलनी-चपटे चिपके हुए दिखाई दें, उन्हें निकालकर वहां पर देवदारु का तेल लगा दें। देवदारु का तेल इन किलनियों-चपटों को मारने की प्रभावशाली औषधि है। इसके पश्चात् स्वस्थ पशुओं की किलनियां भी साफ करें। रोगी पशु के बांधने के स्थान पर सूखा खर-पतवार बिखेरकर जला दें। भूमि का फर्श पक्का हो तो फिनाइल के पानी का गाढ़ा घोल बनाकर फर्श को कई बार धोवें और दीवालों पर भी छिड़क दें। प्रायः किलनियां दीवालों की दरारों में भी घुस जाती हैं, वहां भी फिनायल का घोल या देवदारु का तेल छिड़क दें।

चिकित्सा—बेरेनिल ८ ग्राम, ४० एम. एल. डीस्टील्ड वाटर में घोलकर मांस के अन्दर गहराई में लगावें। साथ में ऐवीला १० एम. एम. मांस में। अगर पशु ज्यादा कमजोर हो तो रनिटासे १ बोतल शिरा में लगाकर तब उपरोक्त औषधि का प्रयोग करें। अगर चौबीस घण्टे में पेशाब का रंग नहीं बदलता है तो फिर से उपर्युक्त दवाओं का प्रयोग करें।

दुग्ध ज्वर रोग

(Milk Fever)

दुग्ध ज्वर, दूध का ज्वर, प्रसूत ज्वर, जापे का ज्वर कहे जाने वाले ज्वर को अंग्रेजी में परटुएण्ट पैरेसिस, पाश्चूरिएण्ट हाइपो कैलशीमिया, पाश्चूरिएण्ट एपोप्लेक्सी इत्यादि कहते हैं। प्रायः दूध देने वाले पशुओं—गायों और भैंसों को यह रोग होता है। दुधारू बकरियों को भी यह रोग हो जाता है।

यह रोग प्रायः ५ से १० वर्ष की आयु के मादा पशुओं को ब्याने के ४८ घण्टे के अन्दर उस समय हो जाता है, जबकि उनके रक्त में कैल्शियम की अचानक ही बहुत कमी हो जाती है। इसलिये डाक्टरों ने इसे न्यूनताजनित रोग माना है।

लक्षण—सामान्यतः पशु के ब्याने के १ से ३ दिन के अन्दर इस रोग के लक्षण प्रगट हो जाते हैं। दुग्ध-ज्वर से पीड़ित पशु चित्त या करवट लेटकर अपना सिर मोड़कर छाती पर रख लेता है। पशु को भूख बन्द हो जाती है, वह बेचैन दिखाई देता है, पूँछ को ऐंठता, काँपता, लड़खड़ाता है। आँखें निस्तेज हो जाती हैं, आँखें बन्द कर लेता है और तापमान सामान्य दशा से कम हो जाता है। कभी-कभी माथे और गर्दन की पेशियों में ऐंठन हो जाती है। पेशियों में दुर्बलता आ जाने से चलने-फिरने में कष्ट होता है। सांस गहरी और धीरे-धीरे लेता है, चारा-दाना आदि नहीं निगल पाता। उसका मुंह अधखुला-सा रहता है और जीभ बाहर लटक पड़ती है। इस रोग की एक विशेष पहचान यह है कि यदि पशु की गरदन और सिर को पकड़कर सीधा कर दिया जाय, तो हाथ छोड़ते ही वह उसी ओर को मोड़ लेता है। एक बार यह रोग हो जाय तो फिर दूसरी बार बच्चा जनने के बाद इस रोग के हो जाने की आशंका रहती है। इस रोग में पशु के पैरों की मांसपेशियों के जकड़ जाने के कारण पशु गिर पड़ता है और उठ नहीं सकता। यदि रोग भयंकर रूप धारण कर ले तो प्रायः पक्षाघात या मूर्छा (Coma) का रोग हो जाता है। प्रायः मूत्र उतरना

बन्द हो जाता है और ६ से २४ घण्टे में मृत्यु हो जाती है। इस रोग की यदि: यथासमय सावधानी से चिकित्सा की जाय तो पशु की प्राण-रक्षा हो सकती है।

चिकित्सा—एलोपैथी में इस रोग की प्रमुख चिकित्सा रक्तवाहिनी शिरा में कैल्शियम बोरो ग्लूकोनेट (Calcium Boro Gluconate) का इन्जेक्शन लगाना चाहिए। कैलशियम के साथ उसी में मिलाकर डेक्सामेथासोन २ एम० एल० की सुई मिलाकर लगाना चाहिए ताकि किसी प्रकार का कैल्शियम रीएक्शन न हो। ध्यान रहे कि रक्तशिरा में बहुत धीरे-धीरे करीब २० मिनट में इन्जेक्शन लगाना चाहिए जिससे औषधि रक्त में मिलकर समस्त शरीर में फैल जाय। प्रायः पहले ही इन्जेक्शन के ४ घंटे बाद पशु अपने पैरों पर खड़ा हो जाता है। यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो ४ घण्टे पश्चात् फिर यही इन्जेक्शन लगायें। कभी-कभी पशु के अम्ल-रक्तता (एसीरोनीमिया) भी हो जाती है। ऐसी अवस्था में ग्लूकोनेट के घोल में उसके आयतन के बराबर ४० प्रतिशत डेक्सट्रोज घोल भी मिला देना चाहिए।

यदि किसी पशु को एक बार यह रोग हो चुका है, तो दुबारा ब्याने के बाद तुरन्त कैलशियम ग्लूकोनेट का २ प्रतिशत वाला सोल्यूशन लगाना चाहिए।

इन दवाओं की शीशी को प्रयोग करने से पूर्व उन्हें शारीरिक तापक्रम के अनुसार गर्म कर लेना चाहिए तथा शिरा में इन्जेक्शन लगाते समय २० सेकेण्ड तक दो बार अन्तःपेक्षित करना चाहिए कि इसमें २० मिनट तक समय लग जाये। शिरा-मार्ग से इन्जेक्शन लगाते समय हृदय की आवाज को सावधानी के साथ सुनते रहना अनिवार्य है। एण्टीहिस्टामिन दवाओं का भी प्रयोग करना चाहिए।

सहायक चिकित्सा—पशु को खनिज मिश्रण खिलाना चाहिए। हैक्स्ट का टोपोफोस्कान १० से २० मिलि० की मांस में सुई लगावें। ओस्टोकैलशियम बी-१२ सीरप (ग्लेक्सो) १०० मिलि० दो बार प्रतिदिन पिलायें या अमोनियम क्लोराइड ३० ग्राम दिन में दो बार दें।

सुरक्षा—पशु के ब्याने के एक सप्ताह पहले विटामिन डी$_3$ का १० मिलियन यूनिट का मांस में इन्जेक्शन लगायें। साराभाई निर्मित मिल्कमिन (Milkmin) एक किलो दवा १०० किलो चारा में अर्थात् १ औंस दवा प्रतिदिन चारा

में मिलाकर खिलायें। ऐरिस का बूनश्रोमिल्क ०·५ प्रतिशत चारा में मिलाकर, दूध देने से पहले तथा दूध देने की अवधि में पिलाते रहें।

इस रोग से पीड़ित पशु का दूध १२ घंटे तक बिल्कुल न दुहा जाय। फिर इसके पश्चात् तीन दिन तक इतना दूध दुहा जाय कि थन खाली न होने पाये। रुग्ण पशु को मुलायम और सुपाच्य चारा देना चाहिए।

जिन क्षेत्रों के पशुओं में मैग्नेशियम की कमी हो, वहाँ रोगी पशु को ४ औंस मैग्नेशियम सल्फेट भी खिलाया जा सकता है। जैसा कि उल्लेख किया गया है, ब्याने के बाद पशु के दूध में कैल्शियम की प्रचुर मात्रा होती है, जो बच्चे के दूध पीने से खीस के साथ निकल जाती है, अतः यदि ब्याने के बाद २-३ दिन पशु का दूध न दुहा जाय तो इस रोग के होने का भय नहीं रहता। यदि हो भी जाय तो शीघ्र अच्छा हो जाता है।

बकरियों का संक्रामक रोग प्लूरोनिमोनिया

बकरियों का प्लूरोनिमोनिया भारत के कई प्रान्तों में पाया जाता है। यह बकरियों का एक भयंकर रोग है। यह रोग प्रायः शीतकाल में फैलता है, किन्तु कभी-कभी किसी भी ऋतु में हो जाता है। यह रोग किसी क्षेत्र में अधिक समय तक नहीं रहता; क्योंकि बकरियों के जिन समूहों में यह रोग संक्रमण करता है, उनमें कालान्तर में इस रोग के प्रतिरोध की प्राकृतिक क्षमता आ जाती है और फिर वहाँ दुबारा इस रोग का प्रभाव नहीं पड़ता।

इस रोग के उत्पादक एक विशेष प्रकार के रोगाणु होते हैं। संक्रमण के पश्चात् इस रोग के लक्षण प्रायः चार दिन में प्रगट होने लगते हैं। अधिक सुस्ती, सामान्य ज्वर, नाक से तरल स्राव होने से श्वास-कष्ट होता है। फिर नाक का श्लेष्मा कुछ गाढ़ा और पीला हो जाता है। पशु को बार-बार खाँसी, फेफड़ों में जकड़न, भारीपन, बजाने पर फेफड़ों मे पानी-सा भरा जान पड़ता है। पशु दुर्बल हो जाता है किन्तु क्षुधा ठीक रहती है। कभी-कभी किसी को पेचिश भी हो जाती है। सामान्यतः रोग की अवधि ३ से ७ दिन रहती है, कभी-कभी अधिक दिनों भी

हो जाती है। इस रोग का प्लूरिसी स्थायी घाव बनकर लगातार बढ़ता रहता है। पशु के एक या दोनों फुस्फुस कठोर हो जाते हैं और उनपर गाढ़ा तथा हल्के पीले रंग का तरल पदार्थ आवृत्त हो जाता है। छाती, कण्ठ तथा श्वास नलिका में रुकावट पैदा होकर श्वासनलिका व फुस्फुसों के बीच लसीका ग्रन्थियों में रक्त-सा जमकर शोथ उत्पन्न हो जाती है।

रोकथाम और चिकित्सा—सामान्यतः इस रोग की एलोपैथी में कोई विशेष दवा नहीं है, तथापि रियोआर्स फेनामाइन जैसी औषधियाँ इस रोग में उत्तम लाभप्रद सिद्ध होती हैं।

पशु-चिकित्सा विशेषज्ञ बकरियों में इस रोग के प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न करने के लिए दो प्रकार के टीकों की संस्तुति करते हैं। इसके लिए इसी रोग के जीवाणुओं से निर्मित एण्टीप्लूरोनिमोनिया वेक्सीन का टीका पशु की कान के नोक पर, अन्तःत्वचा पर रोग संक्रमण के प्रतिरोध के लिए ०·०२ मि० ग्रा० की मात्रा में लगाया जाता है। इसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता डेढ़ वर्ष है। दूसरी वेक्सीन का टीका रोग-संक्रमण होने पर १ मि०ग्रा० से ३ मि०ग्रा० की मात्रा उपत्वचा में लगाया जाता है।

कृमि-जन्य रोग
(Parasites and Parasitic Diseases)

कीड़े पशुओं के शरीर में बाहर या भीतर से प्रविष्ट होकर उनका रक्त चूसकर अपना पेट भरते हैं। शरीर के भीतर प्रविष्ट होने वाले कृमि शरीर के विभिन्न अंगों—यकृत, वृक्क, आंत, गला, नेत्र और श्वासवाहक नलिकाओं, यहाँ तक कि रक्त को अपना निवास-स्थान बना लेते हैं तथा प्रायः उन्हें हानि पहुँचाते रहते हैं।

सर्रा
(Surra)

सर्रा रोग घोड़े, गधे, ऊंट, हाथी और भैंस को होता है। प्रोटोजवा की जाति

ट्राइपनो सोम एवान्सी (Trypano Some Evansi) और इसी प्रकार के कीटाणु रक्त में निवास कर लेते हैं।

लक्षण—इन शोधक कीटों से घोड़े अधिक प्रभावित होते हैं और उन्हें कुछ समय बाद ज्वर आना आरम्भ हो जाता है। विविध स्थानों की श्लेष्मिक कला विशेषकर आँख के श्वेत मण्डल में सूई की नोक बराबर रक्तस्राव के चिह्न पाये जाते हैं। पैरों के निम्न भाग, छाती, नीचे के जबड़े तथा शरीर के विभिन्न स्थानों में हल्की सूजन और भरभराहट पाई जाती है। रोग तीव्र हो जाने पर ६ से ८ सप्ताह के अन्दर पशु मर जाता है।

ऊँट का रक्त चूसनेवाले इन कीटों से कोई विशेष लक्षण नहीं होता और ये कोड़े दो-तीन वर्ष तक उसके रक्त में पलते रहते हैं। हाँ, बूढ़े ऊँट इन कीड़ों के आक्रमण का सामना न करके कुछ महीनों में मर जाते हैं।

भैंसों को भी यह कुछ महीने कष्ट दे सकता है। किन्तु यदि ये कीट संक्रामक रूप से फैल जायें तो भैंसों की मृत्यु प्रारम्भ हो जाती है।

परीक्षा—इस रोग की ठीक परीक्षा रक्त की जाँच से ही हो सकती है। इस रोग को निश्चित रूप से जानने के लिए रोग-पीड़ित पशु की जाँच उसी समय करनी चाहिए, जब पशु को तीव्र ज्वर हो। उस समय एक बूँद रक्त पशु के कान के कोने से या किसी उपयुक्त भाग से निकालकर शीशे की सलाइड पर रखें और कवरस्लिप से ढक दें। तब तुरन्त ही माइक्रोस्कोप से इसको जाँच करें तो ट्राइपन सोमा रक्त में होने पर चलते-फिरते दिखाई देंगे।

पुराने रुग्ण पशुओं में विशेषकर ऊँटों में ऐसी जाँच से कृमियों का पता लगाना वहुत कठिन होता है। इन रोगों में मरक्यूरिक क्लोराइड हेस्ट बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है।

चिकित्सा—इस रोग के लिए टारटार एमेटिक का १ से १·५ ग्राम का ५० से १०० मि० लि० डेक्सट्रोज वाला घोल शिरा में इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग करने से वहुत लाभ होता है। ये इन्जेक्शन निरन्तर चार दिन लगाने चाहिए।

एण्ट्रीसाइड प्रोसाल्ट (Antrycide Prosalt) आई० सी० आई० निर्मित औसतन मात्रा २·५ से ३·०० ग्रा० या डाइक्वीन (क्लेवनार्ड) २·५ ग्राम

त्वचा एवं मांस के भीतर या ट्राई वेक्सीन (I D P.L.) ३ ग्राम त्वचा एवं मांस के भीतर सूई लगायें। दवा १५ मि० लि० परिश्रुत जल में घोलकर त्वचा में (S. C.) सुई लगायें। फिर ४ मास के बाद सुई लगायें। इससे सुरक्षा के साथ-साथ रोग की चिकित्सा भी हो जाती है।

वेरेनिल (हैक्स्ट निर्मित) ०.८ से १.६ ग्राम प्रति १०० किलो शरीर-भार के अनुसार मांस में सूई लगाने से एक ही मात्रा में पूर्ण लाभ हो जाता है।

मे० एण्ड बेकर कं० का सामोरोन (Samorin) ०.२५ मि० ग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार १ से २ प्रतिशत स्टेराइल परिश्रुत जल में बने विलयन की गहरे मांस में सूई लगायें। इस रोग में यह दवा बहुत लाभकारी है।

चूंकि यह रोग भारत में प्रायः वर्षा के बाद फैलता है; अतः सुरक्षा के लिए एण्ट्रीपोल (आई० सी० आई०) घोड़े और गाय को ३० मि० लि० डेक्स्ट्रोज विलयन या परिश्रुत जल में भली-भांति घोलकर शिरा में सूई लगायें, फिर ८ वें दिन और १५ वें दिन इस दवा की आधी मात्रा घोड़ों को दें तथा १४वें दिन अन्य पशुओं को दें।

रुग्ण पशु को चारा पानी के साथ फाईजर कं० का टी० एम० फोर्ट (T. M. Forte) आवश्यकतानुसार मिलाकर खिलायें।

बेबेसायोसिस
(Babesiosis)

यह रोग दुधारू पशुओं, घोड़ों, कुत्तों, बकरियों और भेड़ों को बेबेसिया रोगाणुओं के द्वारा होता है। इन रोगाणुओं की अनेक जातियाँ होती हैं। इनमें प्रत्येक जाति भिन्न-भिन्न जाति के पशुओं को प्रभावित करती है। जैसे इस रोगाणु की एक विशेष जाति पशुओं को रेडवाटर से, दूसरी जाति घोड़ों को बिलियरी फीवर से तथा तीसरी जाति कुत्तों को टिक फीवर और कष्टसाध्य पांडुरोग से आक्रांत कर देती है। गोपशुओं को अल्पायु में ही ये रोग हो जाते हैं।

लक्षण—रेडवाटर में तीव्र ज्वर होता है। रक्ताल्पता और पांडु रोग हो जाता है। रक्त के लाल कण कम हो जाते हैं। अतिसार हो जाता है और कत्थई रंग का पेशाब आने लगता है।

बिलियरी फीवर तीव्र और जीर्ण दो प्रकार का होता है। पहले प्रकार में तीव्र ज्वर होता है, क्षुधामंदता और रक्ताल्पता, पांडु रोग और अतिसार हो जाता है। यदि ठीक उपचार न हुआ तो घोड़ा एक सप्ताह में मर जाता है। दूसरी अवस्था में साधारण लक्षण होते हैं। रक्ताल्पता के साथ ही सारे शरीर पर भरभराहट पाई जाती है। टिक फीवर में भी यही लक्षण पाये जाते हैं।

चिकित्सा—इस रोग के ट्राइपन ब्ल्यू (Trypan Blue) और क्विनरोनियम सल्फ़ेट (Quinuronium Sulphate) दो उत्तम दवायें हैं अथवा Beremil 2gms for Goat I/M & Avil 2ml. Inject. ट्राइपन ब्ल्यू १ से ४ ग्राम तक १ या २ प्रतिशत के अनुपात से परिस्रुत जल में घोलकर ८० से १०० मि० लि० का शिरा में धीरे-धीरे इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग किया जाता है और क्विनरोनियम सल्फ या बेबेसान, एक्रापिन ½ से १ मि० लि० तक ५० कि० शरीर भार के अनुपात से त्वचा में इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग किया जाता है। प्रायः एक इन्जेक्शन का प्रयोग पर्याप्त होता है। यदि पूर्ण न हो तो २-३ इन्जेक्शन ३ से ५ दिन के अन्तर से प्रयोग करना चाहिए।

बिलियरी फीवर में इन दवाओं के अतिरिक्त कुनीन हाइड्रोब्रोमाइड भी १ ग्राम पानी में घोलकर प्रयोग करने से पूर्ण लाभ हो जाता है। रोग की तीव्र अवस्था में बायर कं० का एकाप्रिन (Acaprin) ६ मि० लि० प्रौढ़ पशु को मांस में इन्जेक्शन लगायें।

हैक्स्ट कं० का बेरेनील (Berenil) १.६ ग्राम प्रति १०० किलो शरीर-भार के अनुसार गहरे मांस में प्रौढ़ पशु को इन्जेक्शन लगायें। घोड़े को ६ मि० ग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार मांस में सूई लगायें।

आई० सी० आई० कं० का बेबेसान (Babesan) पशु को ५ प्रतिशत विलयन का १ मि० लि० प्रति ५० किलो भार के अनुसार त्वचा में सूई, घोड़ों

को ०·६ मि० लि० तथा कुत्ते को ०·५ प्रतिशत विलयन का ०·२५ मि० लि० प्रति ४·५० किलो शारीरिक भार के अनुसार त्वचा में (S. C.) इन्जेक्शन लगायें।

सहायक चिकित्सा के रूप में बेलामील या लिवोजेन ५-१० मिलि० दवा मांस में सुई सप्ताह में दो बार लगायें। रक्ताल्पता दूर करने के लिए इम्फेरान १० मिलि० को सुई गहरे मांस में सप्ताह में दो बार लगायें। हिमालया ड्रग का लिव-५२/१० ग्राम प्रतिदिन की मात्रा में १० दिन तक खिलायें। ग्लैक्सो का विमेराल (Vimeral) १० मिलि० प्रतिदिन चारा या पानी में मिलाकर निरन्तर १० दिन तक देते रहें।

कोकसि-डियोसिस
(Cocci Diosis)

रक्त चूसने वाले कोकसिडिया जाति के कीटाणु, जो विभिन्न जातियों के होते हैं, आँतों की भीतरी तह में रहते हैं और शक्तिशाली अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा ही बिन्दु के रूप में दिखाई देते हैं। यह कीटाणु पालतू पशुओं, दुधारू पशुओं के शावकों, भेड़-बकरियों इत्यादि को रोगाक्रांत कर देते हैं। इस कोकसीडिया की विभिन्न जातियाँ विभिन्न जाति के पशुओं को प्रभावित करती हैं। हर प्रकार का कोकसिडिया किसी एक जाति के पशु को रोगाक्रांत नहीं कर सकता।

कोकसिडिया का आकार बहुत छोटे अण्डे (Ocyst) जैसा होता है। पशुओं के मल से जब यह भूमि पर गिरते हैं, तो कच्चे रहते हैं। वर्षा ऋतु इनकी वृद्धि और विकास के लिए बहुत अनुकूल होती हैं। इसी समय यह परिपक्व होकर अपनी वंश-वृद्धि करते और चारे के साथ पशु के पेट में पहुँच कर रोग की उत्पत्ति का कारण बनते हैं।

लक्षण—पशुओं के बच्चों के पेट में इन कीटों के प्रविष्ट हो जाने से उन्हें लाल रंग की पेचिश (Red Dysentery) का रोग होता है। रक्तमिश्रित होने के कारण मल लाल रंग का होता है। रोग की सामान्य प्रारम्भिक अवस्था में

मल के साथ अल्प मात्रा में रक्त आता है। किन्तु रोग-वृद्धि होकर तीव्र दशा आते ही कूथन के साथ मल होता है और प्रत्येक बार के मल में रक्त के बिन्दु मिले रहते हैं या ताजा रक्त आता है। रुग्ण पशु या रुग्ण बछड़ा चारा छोड़कर शिथिल पड़ा रहता है। उसे क्षुधानाश, शिथिलता और निर्बलता आ जाती है। क्रमशः बछड़ा बहुत ही दुर्बल होकर किसी अन्य रोग से पीड़ित हो सकता है। रोग का प्रबल वेग होने पर पशु एक सप्ताह में मर जाता है। मल-परीक्षा से ही रोग की पहचान होती है।

चिकित्सा—इस रोग में सल्फाग्रूप की औषधियाँ लाभदायक सिद्ध हुई हैं। सायनेमिड कं० का सल्मेट (Sulmet) ड्रिंकिंगवाटर सोल्यूशन १२·५ प्रतिशत और इसी का इन्जेक्टेबुल सोल्यूशन २५ प्रतिशत तथा ओब्लेट्स २·५ ग्राम का आवश्यकतानुसार प्रयोग लाभप्रद होता है। प्रयोग विधि पहले अंकित की जा चुकी है।

आई० सी० आई० कं० का सल्फामेथाजीन, फाईजर का डायेडीन (Diadin) या अन्य सल्फा दवाओं की ५ ग्राम की टिकिया ५० किलो शरीर-भार पशु,को वाले ३ दिन तक पानी में मिलाकर ढरका द्वारा पिलाते रहें।

एन० एस० डी० का एम्प्रोसोल (Amprcsol) २० प्रतिशत ५० से १०० मिग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से पानी में घोलकर ४-५ दिन पिलायें। ४० किलो शरीर-भार वाले बछड़े के लिए औसत मात्रा २ ग्राम प्रतिदिन ४-५ दिन तक दें। साथ ही ग्लेक्सो कं० का ट्रिपेलीन २ मिलि० या विटाब्लेण्ड (Vitablend), ग्लेक्सो का ही डब्लू० एम० फोर्ट २ मिलि० का प्रतिदिन इन्जेक्शन लगायें।

रोश कं० का रॉविसाल १०० (Rovisol 100) या ग्लैक्सो का विमेराल (Vimerol) २ मिलि० का प्रतिदिन इन्जेक्शन लगायें।

लिवोजेन (Livogen), या साराभाई का बेलामील (Belamil) २ मिलि० की मांस में कुल तीन इन्जेक्शन लगायें।

स्थायी लाभ के लिए बी० वी० बी० का डायाडिस्को या इण्डियन हर्ब्स कं० का नैवलान निम्नांकित मात्रा में खिलायें :—

गाय, भैंस, बैल और घोड़ा को २५ से ३५ ग्राम, भेड़-बकरी को ५ से १० ग्राम, सुअर को १० से १५ ग्राम, कुत्ता को २ ग्राम, ऊँट को २५० ग्राम तथा हाथी को ५०० ग्राम। इसे चावल के माड़ या मट्ठा में मिलाकर ढरके द्वारा दिन में तीन बार पिलायें।

उदर कृमि या गोल कीड़े

(Worms or Helminth Parasites Nematodes or Round Worms)

पशुओं के पेट के अन्दर अनेक प्रकार के कृमि पाये जाते हैं, जो कि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। ये कीड़े कई प्रकार के होते हैं। ये कीड़े धागे की तरह गोल और लम्बे होते हैं। ये कीड़े आमाशय के चौथे भाग (Abomasum) और छोटी आँत (Duodenum) में निवास करते हैं।

जुगाली करने वाले पशुओं के आमाशय में क्रमशः चार भाग होते हैं। प्रथम ऊपरी भाग सबसे बड़ा होता है। पशु जो चारा-दाना खाता है, वह पहले इसी भाग में पहुँचता है। यहीं से यह आहार दुबारा जुगाली करने के लिए मुख में वापस आता है। जुगाली करने से मुख की लार भोजन में अधिक मात्रा में मिल जाने से भोजन सुपाच्य हो जाता है। आमाशय का दूसरा भाग मांसपेशियों का होता है। इस भाग से भी भोजन की पाचन-क्रिया पूर्ण होती है। तीसरा भाग मधुमक्खी के छत्ते की तरह होता है, भोजन के तरल भाग का चूषण कर लेता है, और पशु को हानि पहुँचाने वाली वस्तुयें जैसे पत्थर, कीलों आदि को रोक लेता है। प्रायः इस प्रकार की वस्तुयें इसी भाग में पाई जाती हैं। चौथा भाग आँत से जुड़ा होता है। यहीं से भोजन पर्याप्त रूप से पचकर आँतों में पहुँचता है। ये कीड़े आमाशय के इसी चौथे भाग और छोटी आँत में निवास करते हैं। ये कीड़े पशु

के पेट में पहुँचने के बाद बहुत अंडे देते हैं और क्षिप्रता से अपनी वंश-वृद्धि करते हैं।

लक्षण—आमाशय और आँतों के इन भागों में, जहाँ ये कीड़े रहते हैं, खराश पैदा हो जाती है। पशु की पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है और वह दिनो-दिन दुर्बल होता जाता है। रक्ताल्पता (एनीमिया) रोग हो जाता है। नीचे के जबड़े पिलपिले हो जाते हैं। पशु को अतिसार या कब्ज की शिकायत हो जाती है। यदि उचित उपचार न किया जाय और रोग का आक्रमण तीव्र हो गया तो कुछ दिनों में पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—नीमाटोड (गोल कीड़े) की दो प्रसिद्ध जातियाँ होती हैं—(१) ट्रिको स्ट्रोंगाइल्ज और (२) स्ट्रोंगाइल्ज, और फिर दोनों जातियों की बहुत-सी जातियाँ होती हैं जो भिन्न-भिन्न जाति के पशुओं को पीड़ित करती हैं। इन सभी कृमियों के लिए निम्नलिखित औषधियाँ लाभदायक हैं—

इन्डियन हर्ब्स कं० का वोपेल (Wopel) २५ ग्रा० बछड़े को तथा ५ ग्रा० कुत्ते को, आई० सी० आई० कम्पनी का पिपराजीन एडीपेट पाउडर बछड़े को ८-१० ग्राम चारा में मिलाकर खिलायें और हर महीने तब तक दुबारा देते रहें, जब तक कि उसकी आयु छः मास की न हो जाय। कुत्ते को ०·१ ग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार भोजन या दूध में मिलाकर दें।

ग्लैक्सो कं० का हेल्मासिड (Helmacid) (Veterenary) पशुवाला-४५ प्रतिशत शक्तिवाला विलयन का ४ मि० लि० प्रति १० किलो शारीरिक भार के अनुसार कुत्ते को पिलायें। चरक फार्मेसी का क्रूमिनल सीरप आवश्यकतानुसार ३ -३५-४५ मि० ग्रा० दवा तीन मात्राओं में बाँटकर तीन बार पिलायें।

फाईजर कं० का वर्मेक्स (Vermex) ५ मि० लि० प्रति १० कि० शरीर-भार वाले बछड़े को या सायनेमिड कं० का वरबन (Verban) २५% पाउडर ४० ग्रा० की मात्रा में ४५ किलो शरीर-भार वाले बछड़े को खिलायें।

फाईजर कं० का बेनमिन्थ-२ फोर्ट (Banminth-2 Fort) जो नव आविष्कृत ब्राड स्पेक्ट्रम कृमिनाशक औषधि है, दो सौ मिग्रा० की टिकिया प्रति ४० किलो शरीर-भार वाले बछड़े को खिलायें ।

आई० सी० आई० क० का फेनोविस (Ph-novis) बड़े बछड़े को केवल ४ से १० ग्राम, जिनकी आयु ६ महीने से अधिक हा, ढरके में भरकर तीन मास एक बार पिलायें । वयस्क पशु को औसत मात्रा ३० ग्रा० तथा भेड़ को १ से २ ग्राम हर तीन महीने बाद एक बार दें ।

फाईजर को वैनमिन्थ की २ ग्राम वाली गोली तीन मास में एक बार पशुओं को खिलायें । भेड़ के पेट के कीड़ों के अण्डों को नष्ट करने के लिए २०० मि० ग्राम की टिकिया खिलायें ।

एस० के० एफ० का हेलाटाक (He'atac) वछड़े को १५ ग्राम, भेड़ को १० ग्राम तथा प्रौढ़ पशु की औसतन मात्रा ६० ग्राम दें ।

युनि० आयु० का पेलामाल (Pelamol) पशु और घोड़े को औसतन मात्रा ७५ ग्रा० पानी में घोलकर ढरके से पिलायें तथा दो मास दुबारा यही मात्रा दें । कृमीनल सीरप बड़े पशु को १०० मिलि० दो मात्राओं में बाँटकर दें तथा दुबारा एक सप्ताह बाद दें ।

मर्क शार्प एण्ड डोम कं० का थियोबेण्डोल (Thiobendole) आमाशय और आंत के हर प्रकार के कीड़ों को नष्ट करने की प्रभावशाली औषधि है । यह पशुओं के गोल कीड़ों को नष्ट करने में अत्यन्त गुणकारी है । मात्रा बछड़े को ४ ग्राम तथा बड़े पशु को १५ से २० ग्राम दें ।

प्रयोग-विधि—२० ग्राम थियोबेण्डोल को १०० मिलि० पानी में डालकर इतना हिलायें कि चिकना सस्पेंशन बन जाये । रुग्ण पशुओं को आवश्यकतानुसार मात्रायें पिलायें । पशु-भार के अनुसार थियोबेण्डोल की मात्रा की तालिका दी जा रही है—

पशु का भार किलोग्राम में	प्रतिदिन कृमि-नाश हेतु मात्रा मिलि० में	कष्टप्रद अवस्था में मात्रा, मिलि० में
५०	२५ मिलि०	४० मिलि०
१००	५० ,,	८० ,,
१५०	७५ ,,	१२० ,,
२००	१०० ,,	१६० ,,

सायनेमिड कं० का कारसाईड (Carisede) २५ से ५० मिग्रा० प्रति आधा किलो शरीर-भार के अनुपात से प्रतिदिन खिलायें।

ओस्टेरटेजिया जाति के कृमि

(Ostertagia, Oetertagi Worms)

ओस्टेरटेजिया जाति के कृमियों की चार जातियाँ होती हैं—(१) ओस्टेरटेजिया, ओस्टरटेजी कृमि गोपशुओं और भेड़ों को पीड़ित करते हैं। (२) ओस्टेरटेजिया सर्कमसिक्टा, (३) ओस्टेरटेजिया ओरिएन्टेलिस और (४) ओस्टेरटेजिया आक्सीडेन्टालिस—ये तीनों भेड़-बकरियों को रोगाक्रान्त करते हैं।

इस परिवार के कृमियों के डिम्ब (लार्वा) अपनी संक्रामी स्थिति में पशुओं के आमाशय के चतुर्थ भाग की स्तरोय झिल्ली में प्रविष्ट होकर वहाँ पर ग्रन्थिमय शोथ उत्पन्न कर देते हैं और वहाँ रक्त शोषण करते हैं, जिससे रक्ताल्पता होकर पशु दुर्बल हो जाता है और यदि यह अवस्था तीव्र रूप में हो तो पशु मर जाता है।

सुरक्षा और रोकथाम—पशु के पेट और आँतों में उपस्थित कृमि सामान्यतः पशु के गोबर आदि के द्वारा ही बाहर निकलते रहते हैं और अन्य पशुओं में पहुँच जाते हैं, अतः उसे नित्य हटाकर गाँव के बाहर खुदे खाद के गड्ढे में डाल देना चाहिए। पशुशाला का फर्श, खाने का हौदा या चरही सप्ताह में एक बार गर्म पानी से धो देना चाहिए, जिससे कृमियों के अण्डे-बच्चे नष्ट हो जायें।

यदि पशु के पेट में कीड़े पहुँचकर हानिकर प्रभाव दिखा रहे हों तो उनकी रोकथाम के लिए शीघ्र ही कृमिनाशक दवाओं का प्रयोग करें। कृमियों के अण्डों-बच्चों पर प्राय: कीटाणुनाशक दवाओं का प्रभाव नहीं पड़ता, अत: पशु को कृमियों की ऋतु में प्रति दूसरे-तीसरे सप्ताह कृमिनाशक दवाये देते रहें।

प्राय: चारागाहों की निचली भूमि में, जहाँ बरसात का पानी इकट्ठा हो जाता है, कृमि अधिक रहते हैं, वहाँ पशु न चरायें। पशुओं को सवेरे चारागाह में न चराकर ९-१० बजे के बाद ही जब तेज धूप निकल आती है, चरावें। धूप में कीड़े मर जाते हैं। सामान्य, छोटे और दुर्बल पशुओं पर ही कृमियों का प्रभाव अधिक पड़ता है, अत: ऐसी गोचर भूमि में जहाँ कृमि होने की आशंका हो, उन्हें न चराकर घर में या बाड़े में ही बाँध रखें।

कृमिरोग होने की आशंका पर पशुओं को गन्दे नालावों का पानी न पिलाकर कुएं या उबाला हुआ पानी पिलायें। पशु बाँधने के स्थान और दीवालों को फिनायल मिले पानी से धोकर सुखा दें।

चिकित्सा—आई० सी० आई० कं० का फीनोविस बड़े पशुओं को ३० ग्राम पानी में घोलकर धूप समाप्त होने के पश्चात् सन्ध्या को पिलाना चाहिये अथवा पिलाने के बाद छायाकार स्थान पर बाँधना चाहिये। फेनोविस पाउडर (Phenovis Powder) १/२ ग्राम खिलायें। यह औषधि पशुओं के उदर-कृमियों को नष्ट करने में अनुपम है।

पीपराजीन सीरप (एलेनबरी०, फाईजर, साराभाई, आई० डी० पी० एल० इत्यादि) १०० मिलि० बड़े पशुओं को एवं छोटे पशुओं को उनके वजन के अनुसार पिलाना चाहिए।

फाईजर कं० की वर्मेस की बोतल लेकर उपर्युक्त मात्रा में पशु को पिलायें। ट्रिकोस्ट्रोन्जोलस को०, टी० एक्सेई व टी० एक्सटेनुएटस आदि

कृमि--

ट्रिकोस्ट्रोन्जीलस कोलू ब्रीफार्मिस नामक कृमि गाय, भैंस, भेड़, बकरियों और ऊँट के आमाशय में, टी० एक्सेई नामक कृमि गाय, भैंस, भेड़, बकरियों, घोड़ों और सुअरों में, टी० एक्सटेनुएटस गाय, भैंसों, भेड़ और बकरियों में तथा टी० प्रोबोलुरस ऊँट और भेड़ों में पाया जाता है।

इन कृमियों से पीड़ित पशुओं में उपर्युक्त लक्षणों के अतिरिक्त पशु को काले रंग के दस्त आते हैं और पैर बहुत दुर्बल हो जाते हैं।

इसके लिये आई० सी० आई० कं० का फेनोविस पाउडर, जो बड़े कृमियों की अचूक दवा है, अत्यन्त गुणकारी दवा है। इसे बछड़ों को ९ से १८ ग्राम (२ से ४ बड़े चम्मच), गाय, भैंस आदि को २७ से ५४ ग्राम (६ से १२ बड़े चम्मच), भेड़ व बकरियों को—बच्चों को ४·५ ग्राम (एक बड़ा चम्मच), प्रौढ़ को ४ ५ से १३ ग्राम (१ से ३ बड़े चम्मच), घोड़े को ४·५ से २७ ग्राम ५ मात्राओं में बाँटकर, सुअर को अधिकतम ०·५ ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार, हाथी को—१० वर्ष के बच्चे को ५४ ग्राम, बड़े हाथी को १०८ ग्राम। इन्हें ४ मात्राओं में बाँटकर इमली के गोला में मिलाकर दें। मुर्गी को ०·४५ ग्राम यानी १० मुर्गियों को ४·५ ग्राम।

पशुओं के छोटे बच्चों को जो छोटे आकार-भार के और दुर्बल हों, उनके लिए उपर्युक्त मात्रा अधिक प्रतीत हो तो उचित विचार कर उस मात्रा को दो भागों में बाँटकर दूसरी मात्रा पहली मात्रा के २४ घण्टे बाद दें।

बी० बी० बी० का कृमौश (Krimaush) भी हर प्रकार के उदर-कृमियों की गुणकारी दवा है। इसे घोड़े, गाय-भैंस को ४० से ६० ग्रा०, घोड़े, गाय और भैंस के बड़े बच्चों को ८ से १० ग्राम, प्रौढ़ अवस्था के भेड़, बकरी, कुत्ता और सुअर को १० से २० ग्राम, मुर्गी के २ मास तक के बच्चों को ½ ग्राम और मुर्गी को १ ग्राम। इसे अन्य पशु-पक्षियों को उनकी आयु तथा शरीर-भार के अनुसार

दें। उपर्युक्त मात्रा में औषधि को खाली पेट चीनी, शक्कर या गुड़ के शर्बत में घोलकर और मुर्गियों को दाने में मिलाकर दें। यदि ८ से १० घण्टे के अन्दर कीड़े बाहर न निकलें तो केस्टर आयल पिला दें। यदि फिर भी कृमि न निकलें तो एक सप्ताह के पश्चात् उपर्युक्त मात्रा में दुबारा दें। कृमौश पशुओं के गोल कृमियों, टेपवर्म, हुकवर्म तथा लिवर फ्लूक में बहुत गुणकारी है।

———

हुक वर्म्स

(Hook Worms)

गाय, भैंस आदि दुधारू पशुओं, भेड़, बकरी और कुत्तों आदि को ये कीड़े पीड़ित करते हैं। ये खून चूसते हैं। ये कीड़े छोटे होते हैं तथा पशुओं की छोटी आँतों में रहते हैं। इनकी भी विविध जातियाँ हैं, जो विभिन्न पशुओं पर आक्रमण करती हैं।

इन रक्तशोषक कृमियों की विशेष पहचान रक्त की कमी (Anaemia) और निचले जबड़े की शोथ है। इनके रहने से क्षुधामंदता और दुर्बलता आ जाती है। ये कृमि छोटी आँत की स्तरीय झिल्ली में चिपके रहते हैं। मल परीक्षा से इसका निश्चयात्मक निदान हो सकता है।

सुरक्षा :—हुक वर्म्स का रोग फैलाने वाला लार्वा बरसात और आर्द्र ऋतु में बढ़ता है, अतः पशुओं के स्थान को स्वच्छ और शुष्क रखें। नाली को कभी-कभी धोकर साधारण नमक छिड़क देना चाहिए, जिससे कृमि के लार्वा मर जायें। पानी के हौदों को भी धोकर सूखा रखें तथा उस पर भी नमक छिड़कें।

चिकित्सा—क्रिस्ट्वाइड (Crystoid) या मिन्टेजाल (Mintezol) मर्क शार्प एण्ड डोह्‌म कम्पनी निर्मित १ से २ टिकिया प्रतिदिन ३-४ बार पानी से खिलायें। रक्त की कमी दूर करने के लिए लिवोजेन (Livogen) या वाक हड्ंट का बीकोन एल या साराभाईका बेलामोल २ मिलि० की मांस में सुई प्रति तीसरे दिन चार सुई लगायें।

इम्फेरान या इम्फेरान बी$_{12}$ की ३ मिलि० के एम्पूल की गहरे मांस में सप्ताह में २ बार सूई लगायें। साथ ही फेसोविट (Fesovit) या इथनार का रेरीकल (Rarical) एक कैप्सूल दिन में २ बार निरन्तर ६ दिन तक निगलवायें। विशेष लाभ के लिए हिमालया ड्रग कम्पनी का लिव ५२-२ टिकिया या १५ बूंद दिन में २ बार निरन्तर १५ दिन तक दें।

आई० सी० आई० का टेट्राक्लोरेथीलीन या बी० डब्लू० कम्पनी का टेट्रा कैप १ मिलिग्राम का ५ किलो शरीर भार वाले पशु को तथा अधिकतम मात्रा ३ से ४ कैपसूल खाली पेट निगलवायें। ध्यान रखें कि कैप्स्यूल को पशु चिबा न जाये। कैपसूल को प्रयोग करने से पूर्व इसकी विषाक्तता को दूर करने के लिए कैल्शियम सैण्डोज ५ से १० मिलि० की शिरामार्ग (I. V.) में सुई लगा दें। इसके ३ घण्टे के बाद ग्लैक्सो क० की मेक्राफोलिन विथ आयरन २ से ८ टिकिया आवश्यकतानुसार शर्बत में घोल कर पिलायें।

सायनेमिड कं० का एनकाइलाल (Ancylol) इन्जेक्शन ०·२२ मिलि० प्रति किलो शरीर भार के अनुसार त्वचा (S. C.) में सुई लगायें तथा २१ दिन बाद दुबारा सुई लगायें, क्योंकि यह औषधि लार्वा को मारने की कोई क्रिया नहीं करती। पशुओं के छोटे बच्चों में प्रयोग करते समय इसकी उचित मात्रा का प्रयोग करें तथा दवा को विसंक्रमित परिश्रुत जल से पतला कर लें।

इथनार कं० का पैन्टेलमिन (Pantelmin) १०० मि० ग्रा० की एक टिकिया दिन में दो बार निरन्तर दो दिन तक देने से लाभ होता है।

दीर्घ वर्तुल कृमि

(Large Round Worms)

बड़े गोल कीड़े सभी पालतू पशुओं को पीड़ित कर सकते हैं। ये अपेक्षाकृत बड़े, मोटे, सफेद रंग के कृमि होते हैं। ये पालतू पशुओं और पक्षियों की आँतों में रहते हैं और उनके मल से बाहर निकलते रहते हैं। बड़े गोल कीड़े की मादा प्रतिदिन करीव दो लाख अण्डे देती है। यही अण्डे चारा, पानी के द्वारा पशुओं के पेट में पहुँचकर रोगोत्पत्ति करते हैं। पेट में पहुँचने के पश्चात् रक्त संचार द्वारा यकृत, फुस्फुस तथा अन्य आन्तरिक अंगों तथा आँतों और वायु-वाहिनी शिराओं में फैल जाते हैं, फिर इन अंडों से कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं और छोटी आँत में निवास करने लगते हैं।

लक्षण—इन कृमियों की उपस्थिति से पशु की क्षुधा नष्ट हो जाती है। पशु को दस्त आने लगते हैं, पेट में पीड़ा होती है। पशु शिथिल हो जाता है। कभी-कभी स्नायु लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

चिकित्सा—कृमि-नाशक सभी दवायें लाभप्रद सिद्ध होती हैं। निम्नांकित औषधियाँ गुणकारी हैं—

हेट्राजान (Hetrazan) अर्थात् कार्वामेजीन एसिड साइट्रेट (Carbamazine Acid citrate) ५० मि० ग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार प्रयोग करें।

पिपरेजीन एडीपेट (Piparezine Adipate) ०·१ से ०·२ ग्राम की मात्रा में प्रति पौण्ड शरीर-भार के अनुसार देना बहुत लाभदायक है।

आयल आफ चेनोपोडियम ०·१ मि० लि० प्रति किलो ग्राम शरीर-भार के अनुपात से २ से ४ औंस कैस्टर आयल या अलसी का तेल मिलाकर पिलायें। फिर दो घण्टे वाद नमकीन विरेचन दें।

टर्पेनटाइन आयल (तारपीन का तेल) २ से ४ ड्राम की मात्रा में उपर्युक्त विधि से प्रयोग करना लाभप्रद है।

टेट्राक्लोरोएथीलीन ५ से ३० मिलि० की मात्रा में कैपसूल में भरकर एक रात्रि निराहार रखने के बाद प्रयोग करें। फिर नमकीन विरेचन दें और औषधि प्रयोग करने से कुछ दिन पूर्व स्निग्ध आहार खली विनौला आदि न दें।

यदि यह रोग घोड़ों को हो तो कार्बनटेट्राक्लोराइड का प्रयोग करें। पिपरेजीन एडीपेन का १० ग्राम वाला घोल १०० पौण्ड शरीर-भार के अनुसार स्टॉमक ट्यूब से प्रयोग करें।

०·१ मि० लि० प्रति पौण्ड शरीर-भार के अनुपात से टोलूईन (Toluine) का प्रयोग घोड़ों और कुत्तों के लिए बहुत लाभप्रद है।

सूततुल्य महीन लघु कृमि

पिन वर्म्स (Pin Worms)

धागे जैसे बारीक छोटे कृमि घोडों की लम्बी आँत में पैदा हो जाते हैं। इन कृमियों के अण्डे चारा-पानी द्वारा आंत में पहुँचकर घोड़े को पीड़ित करते हैं। यतः इस प्रकार के कृमि की मादा घोड़े की गुदा के आस-पास अण्डे देती है, अतः वहाँ पर खराश पैदा हो जाती है और घोड़ा हमेशा खुजलाने के लिए अपनी पूंछ को बार-बार दीवाल से रगड़ता रहता है।

सुरक्षा—पशुशाला को सदैव स्वच्छ और शुष्क रखें। मल-मूत्र होने पर तत्काल दूर हटाकर भूमि में दबा दें। घोड़े की गुदा के इर्द-गिर्द फिनाइल का घोल लगाते रहें। घोड़े को प्रति सप्ताह एक बार आयल चेनोपोडियम पिलायें। इससे कीड़े मर जाते हैं।

चिकित्सा—आई० सी० आई० क० का नील व (Nilworm) १०० ग्राम पाउडर ३ लीटर साफ गर्म जल में डालकर भलीप्रकार घोलकर विलयन

बना कर १५ मि० ग्रा० (१.५ मि० लि० विलयन) प्रति कि० शरीर-भार के अनुपात से चारा में मिलाकर सवेरे खिलायें। एक बड़े पशु को १० ग्राम पाउडर ४०० एम० एल० गुनगुने पानी में घोलकर पिलाना चाहिए तथा छोटे पशुओं को वजन के अनुसार २ से ४ ग्राम पाउडर उपर्युक्त विधि से पिलाना चाहिये।

आयल चेनोपोडियम १६ मि० लि० प्रति ५०० किलो शारीरिक भार के अनुसार एक हजार मि० लि० कच्चे अलसी के तेल में मिलाकर पिलायें। क्वासिया (Quassia) के सान्द्र क्वाथ से एनिमा दें।

गुदा के आस-पास अण्डे नष्ट करने और खुजली दूर करने के लिए फिनायल या मरक्यूरिक आयण्टमेण्ट लगायें।

सायनेमिड कं० का वरबन (Verban) २५ प्रतिशत विलयन घोड़ों के लिए २० मि० लि० औषधि प्रति ३० किलो शरीर-भार के अनुसार, पशुओं और भैंस के लिए १० से २० मि० लि० प्रति ३० किलो शरीर-भार के अनुपात से, बछड़ों को ३ से ६ मि० लि० प्रति १० किलो शरीर-भार के अनुसार, घोड़ों के बच्चों को १० मि० लि० प्रति २८ किलो शरीर-भार के अनुसार तथा मुर्गी को २० मि० लि० दवा ३.५ लिटर पानी में घोलकर छः सप्ताह से कम आयु वाले १०० पक्षियों को पिलायें। कुत्ते, बिल्ली को २ मि० लि० प्रति १० किलो शरीर-भार के अनुपात से दें।

कोड़े-तुल्य कृमि

ह्विप वर्म्स

(Whip Worms)

केवल कुत्तों को पीड़ित करनेवाले ये कृमि घोड़ा हांकने के कोड़े के आकार के बड़े-बड़े होते हैं और कुत्ते की लम्बी आँत में प्रविष्ट होकर उसमें शोथ पैदा कर देते हैं। कुत्ते को अधिक दस्त, निर्बलता, रक्ताल्पता, उदर-शूल आदि व्याधियाँ हो जाती हैं।

चिकित्सा—एम० एस० डी० कं० का मिण्टेजाल (Mintezol) २५ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से दो मात्राओं में विभक्त कर देना चाहिए।

सिपला कं० का मेवेक्स (Mebex) १०० मि०ग्राम की दो टिकिया प्रतिदिन दो बार पानी से देना लाभप्रद है।

एम० एम० लैबो० का एमेन्थाल (Emanthal) १०० मि०ग्राम की दो टिकिया दिन में तीन बार देने से ह्विप वर्म्स नष्ट हो जाते हैं।

मुफिक कं० का इवेन (Eben) १०० मिग्रा० की २ टिकिया दिन में एक-दो बार खिलाना लाभप्रद है।

एन० व्यूटिल क्लोराइड १० मि० लि० प्रति एक किलो शरीर-भार के अनुसार या डेफीनायलामीन (Dephenylamine) २ ग्राम ५ कि० शरीर-भार के अनुसार देने से निश्चित लाभ होता है।

स्ट्रोंगाइल कृमि
(Strongyle Worms)

इन कृमियों से प्रायः घोड़े-गधे आदि पीड़ित होते हैं।

ये कृमि प्रायः घोड़ों की लम्बी आँत में पाये जाते हैं जो आँतों की दीवारों में चिपके रहते हैं और पशु का रक्त चूषण करते रहते हैं। रुग्ण पशु के मल में अधिक दुर्गन्ध आती है। अतिसार हो जाता है। क्षुधा मंद हो जाती है। रक्ताल्पता और कृशता उत्पन्न हो जाती है। प्रायः शोथ भी आ जाती है।

चिकित्सा—पशु को २४ घन्टे निराहार रखने के पश्चात् कार्बन टेट्राक्लोराइड (Carbon Tetrachloride) ५० मिलि० की मात्रा में ५०० किलो शरीर-भार के अनुसार प्रयोग करना लाभप्रद है।

आयल आफ चेनोपोडियम (Oil of Chenopodium) १५ मिलि० उपर्युक्त शरीर-भार और विधि के अनुसार लिक्विड पैराफीन या अलसी के तेल १००० मिलि० में मिलाकर देना गुणकारी है।

फीनेथायजीन कृमियों की सर्वोत्तम दवा है।

इण्डियन हर्ब्स कं० का वोपैल स्ट्रोंगाइल कीट के लिए स्थायी लाभप्रद औषधि है। इसे कुत्तों और सूअर के बच्चों को १ ग्राम प्रतिकिलो शरीर-भार के अनुपात से, घोड़े, भैंस तथा गाय के शावकों को तथा भेड़, बकरी, सूअर, ऊँट को १ से २ ग्राम प्रतिकिलो शरीर-भार के हिसाब से देना चाहिए। घोड़े, गाय, भैंस आदि को शरीर-भार के अनुसार उचित मात्रा में दें। यह औषधि मात्रा प्रतिदिन खाली पेट चीनी-शकर के शर्बत या शोरे में मिलाकर दो-तीन दिन पिलाना चाहिए।

फुफ्फुस-कृमि

Lung Worms या मेटास्ट्रोंगाइल्ज

(Metastrongyles)

इन कृमियों से गाय, भैंस, बकरी आदि दुधारू पशु और घोड़े पीड़ित होते हैं।

इन कृमियों की तीन जातियाँ होती हैं और प्रत्येक जाति के कृमि विभिन्न जातियों के पशुओं को प्रभावित करते हैं। ये कीड़े डेढ़ इन्च से ३½ इंच तक लम्बे होते हैं। ये कृमि फेफड़े और वायुवाहिनी नलिकाओं में रहते और वहीं अण्डे देते हैं।

लक्षण—यतः इन कृमियों का निवास श्वसन-प्रणाली के अंगों में होता है, अतः प्रभावित पशु सदैव खाँसता रहता है। मुँह और नाक से प्रायः जल-स्राव हुआ करता है। चूंकि इन कृमियों की विद्यमानता का मुख्य कारण खांसी है, इसलिए इसे सामान्यतः हस्क (Husk) या हूज (Hoose) कहते हैं। ये कृमि श्वास-अंगों में खराश पैदा कर देते हैं और रक्त चूसकर पलते हैं, जिससे रक्ताल्पता और प्रायः 'ब्रांकोन्यूमोनिया' उत्पन्न हो जाता है

वयस्क पशुओं की अपेक्षा पशु-शावक इन कृमियों के संक्रमण से अधिक पीड़ित होते हैं। श्वसन-अंगों में खराश होने से खांसी आती रहती है। मुख और नाक के छिद्रों से कफ बहता रहता है। श्वास-कष्ट, रक्ताल्पता, निर्बलता, कभी-कभी

शोथ और अतिसार इस रोग के उपसर्ग होते हैं। कृमि के लार्वों से न्यूमोनिया भी हो जाता है।

चिकित्सा—वेटाइसेटिन (Vetycetine), टी० सी० एफ० कं० निर्मित तथा एरिथ्रोमाइसिन (Erythromycin) का यथोचित मात्रा में प्रयोग करें। फाइजर कं० का टेरामाइसिन या साराभाई कं० का आक्सीस्टेक्लिन २५० मि०-ग्राम या इससे अधिक मात्रा में शिरा-मार्ग (I. V.) से इन्जेक्शन लगाना लाभप्रद है। बड़े पशुओं के Lung worm में निम्नलिखित औषधि देना आवश्यक है :—

(१) Janacur—6gm. Pinler, १०० एम० एल० गुनगुने पानी में घोलकर पिलाना लाभप्रद है।

(२) या Nilzan Liq. १०० एल० एल० बड़े पशुओं को पिलाना चाहिए।

इन्डियन हर्ब्स कं० का वोपेल उपर्युक्त मात्रा एवं प्रयोग विधि के अनुसार प्रतिदिन देकर दुबारा दो सप्ताह के पश्चात् दें।

आयोडिन १ भाग, ग्लीसरीन १० भाग को मिला कर या ल्यूगोल्स सोल्यूशन (Lugole Solution) या क्रियोजोट १ मि० लि०, क्लोरोफार्म २ मि० लि०, टर्पेण्टाइन २ मि० लि०, ग्लीसरीन १० मि० लि० को पर्याप्त डिस्टिल्ड वाटर में विलयन बनाकर इण्ट्राट्रेकियल (Intra Tracheal) यानी श्वासनली में इन्जेक्शन लगायें।

क्रियोजोट ५ बूंद, आयल टेरेबिन्थ २० बूंद, क्लोरोफार्म १० बूंद तथा ऑलिव ऑयल ½ स्क्रूपल—सबको मिश्रित कर ऐसी एक मात्रा का एक इन्जेक्शन प्रतिदिन इण्ट्रा-ट्रेकियल तीन दिन तक लगायें। ये दोनों ही इन्जेक्शन गोशावकों के लिए लाभदायक हैं। भेड़ों को इसकी ½ मात्रा दें।

पायरेथ्रीन भी गुणकारी है।

सल्फर डाइआक्साइड या क्लोरीन गेस रुग्ण बछड़े को सुंघाना लाभदायी है।

इन्डियन हर्ब्स कं० का कैफलीन घोड़ा, गाय, बैल और भैंस को २५ से ३५ ग्राम, घोड़े, गाय तथा भैंस के बच्चों को १० से १५ ग्राम, सुअर को १८ से २० ग्राम, भेड़ और बकरी को १० ग्राम, कुत्ते और सुअर के बच्चों को ३ से ५ ग्राम की मात्रा में तथा अन्य पशुओं को उनकी आयु तथा शरीर-भार के अनुसार दें। दवा की उपर्युक्त मात्रा शीरे या गुड़ में अवलेह बनाकर प्रतिदिन दो-तीन बार चढ़ाना चाहिए। भारतीय बूटी भवन का कफगान भी इसी मात्रा और सेवन विधि के अनुसार प्रयोग करना लाभप्रद है।

इस रोग में पशु को मुलायम और हरी घास खिलायें और ताजा पानी पिलायें। चावल का माड़ पिलाना भी लाभप्रद है। देशी शक्कर दूध में मिलाकर गुनगुना पिलायें। मूली-गाजर की नरम पत्तियाँ खिलाना भी हितकर है।

ट्रेमाटोडा कृमि

(Trematoda or Flukes)

गाय, भैंस आदि दुधारू पशुओं, ऊँट, घोड़े, बकरियों और बिल्लियाँ इत्यादि इनसे प्रभावित—पीड़ित होते हैं।

ट्रेमाटोडा कृमि पत्तियों की आकृति के कीड़े होते हैं। इनमें भी नर और मादा होते हैं। शरीर से भिन्न-भिन्न भागों में निवास करने की दृष्टि से इनकी विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं। अतः जो कृमि आँतों में रहते हैं, उन्हें आँतों के ट्रेमाटोडा (Intestinal Trematoda), जो यकृत में रहते हैं, उन्हें लिवर फ्लूक्स (Liver Flukes), जो फेफड़ों में रहते हैं, उन्हें लंग फ्लूक्स (Lung Flukes), जो आमाशय में रहते हैं उन्हें स्टॉमक फ्लूक्स (Stomach Flukes) और जो Blood में रहते हैं, उन्हें ब्लड फ्लूक्स (Blood Flukes) कहा जाता है। इन कृमि जातियों की भी उपजातियाँ होती हैं। इन्टेस्टाइनल ट्रेमाटोडा लम्बे और फ्लूक्स छोटे होते हैं।

लक्षण—आँतों में ट्रेमाटोडा की विद्यमानता से अतिसार, पाण्डु रोग, यकृत में शोथ या यकृत में न्यूनता आ जाती है। उदर में पीड़ा होने लगती है, क्योंकि

ये कृमि पित्त-नलियों, आँतों में खराश पैदा कर देते हैं। लिवर फ्लूक्स की उपस्थिति में अतिसार और उदरशूल के उपर्युक्त सभी लक्षण पाये जाते हैं। लंग फ्लूक्स में खाँसी पैदा हो जाती है। स्टॉमक फ्लूक्स में पशु शीघ्र ही दुर्बल और कृश हो जाता है और उसे दस्त आने लगते हैं, क्योंकि आमाशय में खराश पैदा हो जाती है। ब्लड फ्लूक्स का विशेष लक्षण नाक से ज स्राव है। यतः ये कृमि रक्त भी चूसते हैं, अतः रक्ताल्पता रोग हो जाता है। समस्त प्रकारों में निचले जबड़े का पिलपिलापन ट्रेमाटोडा की उपस्थिति का संयुक्त लक्षण है।

चिकित्सा—लिवर फ्लूक्स में सैन्ट बोराइट का प्रयोग बहुत लाभकारी है। लिवर फ्लूक्स में टी० सी० एफ़० कं० का लिवर एक्सट्रैक्ट, साराभाई का बेलामील या ग्लैक्सो के लिवोजेन में किसी एक दवा का प्रौढ़ पशु को ५ से १० मि० लि० और छोटे पशु को २ मि० लि० की मांस में सुई लगायें। साथ ही छोटे पशुओं को सैण्डोज का कैल्सियम विथ विटामिन सी की १० मि०लि० की शिरा में धीरे-धीरे सुई लगायें।

कुत्तों और बिल्लियों को हिमालया ड्रग्स की लिव—५२ की टिकिया और ड्राप्स प्रयोग करायें और टी० सी० एफ़० कं० का डिजीप्लेक्स या प्रोविटेक्स एक चाय चम्मच भर आहार के साथ प्रतिदिन दो बार दें। पशु को पूरा आराम दें।

बड़े पशुओं को एम० एण्ड बी० कं० का कैलबोरल (Calboral) १०० से ३०० मि०लि० की मात्रा धीरे-धीरे शिरा में प्रविष्ट करें। वैलीलिव पाउडर (Valiliv Powder) मुख मे खिलायें। साथ ही डायाडिस्को-को-कार्बन टेट्रा-क्लोराइड के साथ मिलाकर दें।

ब्लड फ्लूक्स के अतिरिक्त ट्रेमाटोडा के सभी प्रकारों के लिए कार्बन टेट्रा क्लोराइड बहुत ही लाभदायक है। इन कृमियों को नष्ट करने के लिए 'हिजा क्लोरो इथिलीन' भी गुणकारी है। ब्लड फ्लूक्स के लिए प्रतिदिन टारटर एमेटिक का २ या ४ प्रतिशत वाला घोल ५० किलो शरीर-भार के अनुपात से शिरा द्वारा इन्जेक्शन लगाना चाहिए। बहुत ही सफल सिद्ध होगा।

लिवर फ्लूक्स के लिए आई० सी० आई० कं० की दवा एव्लोथेन (Avlothane) बहुत ही लाभप्रद है। बकरियों और भेड़ों को १/२ औंस दवा स्वच्छ जल में घोलकर पिलायें। दुधारू पशुओं को १½ औंस. एक वर्ष के बछड़े को १ औंस और छः मास के बछड़े को १/२ औंस प्रयोग करायें। टेट्रा क्लोरो इथलीन भी लाभकारी है। ब्लड फ्लूक्स के लिए बायर कं० का एण्टीमोशन (Antimosan) बहुत लाभप्रद है।

ब्लड फ्लूक्स के लिए आई० सी० आई० कं० का नीलवर्म पाउडर साफ गुनगुने पानी में घोलकर पिलायें तथा बी० बी० बी० कं० का हरमिन्सा उचित मात्रा में उसके एक घण्टे बाद चारा-दाना में मिलाकर खिलायें। विभिन्न पशुओं के लिए हरमिन्सा की मात्रा और प्रयोग विधि इस प्रकार है—गाय, भैंस बैल तथा घोड़े को ४० से ६० ग्राम, इनके बच्चों को २० से ३० ग्राम, भेड़, बकरी तथा शूकरी को १० से २० ग्राम, सुअर के बच्चे को ५ ग्राम और ऊँट, हाथी आदि बड़े पशुओं को ५०० से १००० ग्राम। बड़े पशुओं को दवा गुड़ में मिलाकर थोड़े गर्म पानी के साथ दिन में दो बार दें तथा रातभर पशु को निराहार रखें। यह दवा स्टॉमक फ्लूक्स में भी लाभप्रद है।

स्पिरूरिड वर्म्स
(Spirurid Worms)

ये कृमि विभिन्न पशुओं में होते हैं। वस्तुतः यह भी गोल कृमियों की एक किस्म है। इनमें भी कई जातियाँ होती हैं। इनकी एक जाति H. Megastoma आमाशय की दीवाल में रसौली (Tumour) पैदा कर देती है। किन्तु इनकी दूसरी जातियाँ आमाशय में स्वतन्त्र रहती हैं और खराश आदि उत्पन्न करती हैं। रोग पुराना हो जाने पर घाव भी पैदा हो जाते हैं, किन्तु घाव प्रायः वर्षाऋतु में होते हैं।

चिकित्सा—साराभाई कं० का स्टेक्लीन दो कैपसूल तथा इण्डियन हर्ब्स कं० का वोपेल १ से ४ ग्राम मीठे शर्बत या शीरे में घोलकर एक दो मात्रा

प्रतिदिन करके निरन्तर २-३ दिन तक देते रहें। पाचन शक्ति ठीक रखने, क्षुधा वृद्धि तथा स्वास्थ्य सुधार के लिए इण्डियन हर्ब्स कं० का हिमालयन बतीसा या भारतीय बूटी भवन का हरमिन्सा यथोचित मात्रा में खिलाते रहें।

कार्बन डी सल्फाइड (Carbon-Di-Sulphide) ५ मि० लि० १०० कि० ग्राम शरीर भार के अनुपात से स्टॉमक ट्यूब द्वारा प्रयोग किया जाता है।

वर्षा ऋतु मे होने वाले घावों के लिए निम्नांकित योग बहुत ही लाभप्रद है—

प्लास्टर आफ पेरिस १०० भाग, फिटकरी २० भाग, नेफ्थेलीन १० भाग, कोई कड़वी दवा कुनेन १० भाग मिलाकर घाव की ड्रेसिंग करायें। इसके अतिरिक्त टेरामाइसिन इन्जेक्टेबल सोल्यूशन १० मिलि० वायल प्रतिदिन इण्ट्रामस्कुलर इन्जेक्शन तीन दिन तक लगायें। घाव पर टेरामाइसिन मरहम की ड्रेसिंग करें। इण्डियन हर्ब्स कं० के हिमैक्स मरहम से घाव की मरहम-पट्टी करके आक्सीस्टेक्लीन हाइड्रोक्लोराइड जैसे आक्सीस्टेक्लिन (साराभाई निर्मित) २५० से ५०० मि० ग्राम को गहरे मांस में प्रतिदिन सुई लगायें।

फाइलेरिया कृमि

(Filaria Worms)

इन लम्बे और बारीक कीड़ों की करीब १५ जातियाँ होती है। कुछ जातियाँ दुधारू पशुओं को, कुछ घोड़ों को, कुछ ऊँटों को, कुछ कुत्ते-बिल्लियों को प्रभावित-पीड़ित करती हैं। ये कृमि रक्त, लिम्फ-ग्रन्थियों और शरीर के अन्य भागों को अपना स्थान बना लेते हैं। ये कीड़े लिम्फ-ग्रन्थियों, त्वचा के नीचे तथा शरीर के विभिन्न स्थानों पर शोथ और घाव उत्पन्न कर देते हैं, जिनसे अपने-आप रक्त बहता रहता है।

चिकित्सा—बाह्य प्रयोग के लिए टारटार एमेटिक सुई ४ प्रतिशत वाला लगाने से कृमि नष्ट होकर घाव शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं।

सायनेमिड कं० का कैरिसाइड (Caricide) ४०० मि० ग्रा० के टेबलेट २५ से ५० मि० ग्रा० प्रति पौंड शरीर-भार के अनुपात से प्रतिदिन खिलाना

चाहिए। सुविधा के लिए शरीर-भार के अनुसार ४०० मिग्रा० की टेब्लेट्स की मात्रा अंकित की जा रही है।

४ पौंड शरीर-भार पर ¼ से ½ टिकिया, ‍६ पौंड शरीर-भार पर १ से २ टिकिया, २३ पौंड शरीर-भार पर २ से ४ टिकिया, ५० पौंड शरीर-भार पर ३ से ६ टिकिया। औषधि की केवल एक ही मात्रा खिलायें। २ से ४ दिन बाद ही दूसरी मात्रा दें। तब निरन्तर कई मात्रायें थोड़ा चारा देने के बाद दिन में दो बार खिलायें। रोग दूर होने पर दवा का प्रयोग वन्द कर दें।

बेनोसाइड फोर्ट (Banocide Forte) बी० डब्लू० का १ से ३ टिकिया पशु के दाना-पानी में मिलाकर प्रतिदिन दो-तीन बार खिलायें।

मैगसल्फ नमक को काफी पानी में घोलकर पशु को खाली पेट पिलाकर उसे विरेचन देकर उसका पेट साफ करके इण्डियन हर्ब्स कं० का हिमालयन बतीसा यथोचित मात्रा में एक सप्ताह तक खिलाते रहें, जिससे पशु की पाचन-शक्ति और स्वास्थ्य बिगड़ने न पाये।

फीते जैसे कृमि

टेप वर्म्स (Tape Worms)

इन सफेद रंग के कृमियों का शरीर ककड़ी के बीजों के समान बहुत-से टुकड़ों से मिलकर फीते का आकार धारण कर लेता है। ये कीड़े सिर के बल आँत की दीवार से चिपके रहते हैं। ये कीड़े भी दूसरे कीड़ों की तरह रुग्ण पशु के मल से निकलते रहते हैं और मल से निकले हुए कीड़े चारा-पानी द्वारा स्वस्थ पशु के पेट में पहुँचकर उनको रोगी बना देते हैं। स्वस्थ पशु के पेट में पहुँचकर ये अण्डे देना प्रारम्भ कर देते हैं और बड़ी शीघ्रता से अपनी वंश-वृद्धि करते हैं।

ये कृमि प्रायः बकरी, भैंस और गाय के बच्चों तथा मेमनों को पीड़ित करते हैं। इनकी उपस्थिति से पशु-शावक का शारीरिक विकास नहीं हो पाता।

उन्हें अतिसार हो जाता है और निचले अंगों में पिलपिलापन हो जाता है। रोगाक्रांत पशु को उदरशूल, पुरानी आंत्र शोथ, क्षुधा-मन्दता, दुर्बलता, आक्षेप (अकड़न), मृगी जैसी मूर्छा आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि कुत्ता इनसे पीड़ित होता है, तो वह गुदा को भूमि पर रगड़ता है।

सुरक्षा—पशुओं को घास, चारा आदि धोकर खूब साफ करके खिलायें। निचले और गीले स्थानों पर न चरायें। पशुओं के रहने का स्थान स्वच्छ और शुष्क रखें। वहाँ पर डी० डी० टी० इत्यादि प्रायः छिड़कते रहें। उन्हें साफ कुयें का या स्वच्छ तालाब का ही पानी पिलायें। ऐसे पशु जो कृमि-ग्रस्त हों, उनके गोबर को तत्काल उठाकर दूर खाद के गड्ढों में डाल दें और उस स्थान को सूखी राख-कंकड़ई आदि डालकर शुष्क कर दें; क्योंकि कृमि गोबर से प्रायः निकलते रहते हैं, जो अन्य स्वस्थ पशुओं को भी रोगाक्रान्त कर देते हैं। रुग्ण पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें। सूर्य निकलने के ३-४ घंटे बाद जब ओस सूख जाये तभी पशुओं को चराने ले जायें। पशुओं को सदैव पौष्टिक आहार जो विटामिन्स आदि से परिपूर्ण हो, जिससे उनमें रोगप्रतिरोधक्षमता बनी रहे। यदि पशुओं के बाँधने का स्थान पक्का सीमेण्टेड हो तो उसे कपड़े धोने वाले सोडा से मिले गर्म पानी से प्रतिदिन धो देना चाहिए। जिससे वहाँ के कीड़ों के अण्डे-बच्चे मर जायें। इन कीड़ों के लिए नीलाथोथा का घोल घातक विष है, अतः उनकी रोकथाम के लिए इसे दूसरे-तीसरे दिन छिड़कते रहना चाहिए।

चिकित्सा—दुधारू पशु के शावकों को लेड आरसीनेट १ ग्राम कैपसूल में भरकर खिलायें। उसके दो घंटे बाद एक मात्रा कैस्टर आयल पिलायें।

इथिकेयर कं० का निलटेप (Niltape) २० प्रतिशत शक्तिवाला बछड़ों, भेड़, बकरियों को २·५ से ५ ग्राम तक को मात्रा में चारा-पानी के साथ खिलायें।

मे० एण्ड बेकर कं० का डिसेस्टल (Dicestal) कुत्तों को १ टेबलेट प्रत्येक ३ किलो शरीर-भार के अनुसार तथा बछड़ों को भी इसी मात्रा में दें। यह एक मात्रा है। आवश्यकतानुसार दुबारा दे सकते हैं।

इण्डियन हर्ब्स कं० का वोपैल, भेड़, वकरियों और बछड़ों को २५ ग्राम की एक मात्रा के रूप में दें तथा कुत्तों को ५-= ग्राम की एक मात्रा दें।

यूनि आयुर्वेदिक कं० का पेलामोल (Pelamol) वोपैल के समान ही प्रयोग करें।

चरक कं० के क्रिमिनल सोरप की ३० से ४५ मि०लि० को तीन समान मात्राओं में विभक्त कर पिलायें। एक सप्ताह बाद फिर दें।

पशु की रोग-प्रतिरोध क्षमता-वृद्धि के लिए फाईजर का विटामिन एम० चारा में मिलाकर खिलायें।

बाहरी कीट
(Ecto Parasites)

बाहरी कीड़ों में जोंकें, किलनी, कुरको, पिस्सू, मच्छर, मक्खियाँ, जूं, खटमल आदि हैं। ये भी प्राय: पशुओं को पीड़ित करते और कभी-कभी संक्रामक रोगों के प्रसार का कारण बनते हैं।

जोंकें (Leaches)

जोंकों की अनेक जातियाँ होती हैं। कुछ जोंकें तो असम इत्यादि की ओर पेड़ों और भूमि में भी पायी जाती हैं। सामान्यत: जोंकें तालाबों में रहती हैं। जोंके प्राय: पशुओं के शरीर पर चिपक कर पशुओं का रक्त चूसने लगती हैं। इनके मुख को लार में एक विशेष प्रकार का रस Hirudin रहता है, जिसे ये घाव में प्रविष्ट कर देती हैं, जिसके कारण रक्त कुछ देर तक बहता रहता है। जोंकें पशु के तालाब में नहाते समय चिपक जाती हैं और पशु का रक्त चूसती हैं। पेट भर जाने पर भी ये वहाँ से नहीं निकलतीं, चिपकी रहती हैं। तालाब में पशु के पानी पीते समय ये नाक या कंठ में चिपक जातीं और कभी-कभी पेट में पहुँचकर वहाँ चिपक कर रक्त चूसने लगती हैं, जिससे पशु बहुत व्याकुल हो जाता है। यदि जोंक पेट में जाकर कुछ समय तक रक्त चूसती रहे, तो पशु के शरीर में रक्ताल्पता होकर वह बहुत दुर्बल हो जाता है।

चिकित्सा—यदि जोंक पशु के शरीर के बाहरी भाग में चिपकी हुई दिखाई दे रही हों, तो उसे चिमटी आदि से पकड़कर खींचकर निकाल दें या उस स्थान पर सिरका या नमक मिले पानी की धार छोड़ें। नमक या सिरका डालने से जोंक तुरन्त ही निकलकर गिर पड़ती है। यदि नाक या गले के अन्दर हो और दिखाई न देती हो तो सिरका और नमक का घोल घूँट-घूँट पिलाने से जोंक नष्ट हो जाती है और उस स्थान को छोड़ देती है। यह कार्य क्लोरोफार्म वाटर से भी लिया जाता है। जोंक शरीर के बाहरी भाग से निकल जाने पर वहाँ तेल चुपड़ दें और बाद में कोई घावनाशक मल्हम लगा दें।

ऐसे तालाब, जिनमें जोंकें अधिक हों और प्रायः पशुओं को लग जाती हों, उनमें जोंकनाशक दवायें—सोडियम क्लोराइड, क्लोरीन, सिरका आदि पर्याप्त मात्रा में डालकर उसे जोंकरहित कर दें। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखें कि इन दवाओं के डालने से तालाब का पानी विषैला न होने पाये और न कोई विषैली प्रभाववाली दवायें ही उसमें मिलाई जायें, क्योंकि उसके पानी को पशु भी पीते हैं।

सुरक्षा—पशु को जोंक वाले तालाब में पानी न पिलाकर साफ कुयें का पानी पिलायें। तालाब में जोंकें हों तो ५० हजार से ५ लाख भाग पानी में एक भाग कॉपर सल्फेट (नीलाथोथा) का चूर्ण डालकर पानी को हिला दें। इससे जोंकें मर जाती हैं।

अन्य कीड़े-मकोड़े

(Insects)

किलनी (Tick)—किलनी काले रंग की चपटी और चिचड़ (चपटा) सफेद रंग का कीड़ा होता है। जो पशुओं के शरीर में विशेषकर निचले अंगों में त्वचा में चिपककर पशु का रक्त चूसते रहते हैं। इनके काटने से पशु को हल्की पीड़ा और खुजली होती है। यदि इनकी अधिकता हो जाय तो पशु दुबला हो जाता है। यदि किलनी-चपटे कम ही हों, तो उन्हें चिमटी या चुटकी से निकाल-निकाल

कर गीली मिट्टी के लोंदें या गोबर में गाड़ते जायें, फिर उन्हें दूर फेंक दें। यदि इन्हें निकालकर यों ही भूमि में डाल दिया जाय तो ये फिर चलकर पशु के शरीर में चिपक जाती हैं। यदि अधिक सख्या में हों तो अग्रलिखित कीटाणुनाशक दवाओं का प्रयोग करें।

कुटकी (Mits)—यह भी किलनी जैसा ही कीड़ा होता है, जो पशु को वैसे ही पीड़ित करता है।

जूँ (Lice)—जूँ विभिन्न प्रकार की होती हैं, जो पशु का रक्त पीकर उसे दुर्बल कर देती हैं। इनके काटते रहने से पशु को खुजली होती है।

खटमल (Bug)—खटमल भी कभी-कभी पशुओं को काट-काटकर उनको बेचैन कर देते हैं।

उपचार—किलनी, चिचड़, कुटकी, जूँ आदि पशुओं को काटनेवाले कीटों से रक्षा के लिए पशुओं के निवास-स्थान को भली-भांति स्वच्छ रखें। वहाँ पर कभी-कभी डी० डी० टी० छिड़कते रहें। यदि दीवालों में छिद्र-दरार हों, तो उनमें डी० डी० टी०, फिनायल, फिनिट आदि छिड़ककर उन्हें अच्छी तरह बन्द कर दें।

पीड़ित पशु के शरीर में नीम का तेल या तारपीन का तेल या फिनाइल थोड़े पानी में घोलकर मल दें। किलनियों, कुटकियों, चिचड़ियों और जूँ से पीड़ित पशुओं के इन कीटों को नष्ट करने के लिए आधा किलो डेरिस पाउडर (Derris Powder) ५ किलो पानी में घोलकर पशुओं के शरीर पर मलें। एतदर्थ और भी कई चीजें उपयोगी हैं। बी० एच० सी० अल्ड्रीजन (Alrin), डायल्ड्रीन (Dieldrin), क्लोरडेन (Chlordane), टाक्सेफेन (Toxaphen) इत्यादि।

डी० डी० टी० पाउडर ५ से १० प्रतिशत वाला का पानी में बनाया हुआ घोल भी इस कार्य के लिए उपयोगी है। इसके प्रयोग से कुटकी, किलनी, जूँ आदि नष्ट हो जाती हैं।

मेलाथियान (Malathion) ५० प्रतिशत भार/आयतन का ०·१ प्रतिशत विलयन पशु के शरीर पर छिड़कें तथा इसका २·० प्रतिशत विलयन पशुओं के

निवास-स्थान में सर्वत्र छिड़कें। किन्तु इस बात की विशेष सावधानी रखें कि इसका छिड़काव कभी-कभी घास-चारा, दाना, पानी या पशु के चारा खाने की चरही या नाँद पर न होने पाये।

टाटा-फीशन का सुमिथिआन ५० प्रतिशत भार / आयतन का ५० मि० लि० दवा २० लि० जल में घोलकर जूँ, पिस्सू तथा कुटकियों को नष्ट करने के लिए छिड़कें। यह दवा विषैली है। यदि कोई जीव इस दवा के विषैले प्रभाव से पीड़ित हो तो प्रतिविष के रूप में एट्रोपीन सल्फ ३० से ५० मि०ग्राम बड़े पशु को तथा ०·६ मि० ग्रा० कुत्तों के लिए प्रयोग करें।

गमैक्सीन (Gamemxine) भी सब तरह के कीटों—जूँ, किलनी, कुटकी, खटमल आदि को नष्ट करने की अत्युत्तम दवा है। यह दवा पानी में घोलकर और सूखे पाउडर के रूप में प्रयोग की जाती है।

लोरेक्सेन (Lorexane) भी जूँ नष्ट करने की प्रभावशाली दवा है। इससे पिस्सू, कुटकी, किलनी इत्यादि भी मर जाती हैं। यह दवा पाउडर, लोशन और क्रीम तीन रूपों में मिलती हैं। पाउडर यों ही सूखा या पानी में घोलकर मला जाता है।

पिस्सू (Fleas)—पिस्सू बहुत छोटे प्रकार के पतिंगें हैं, जो उड़कर और उछलकर पशुओं को काट-काट उन्हें परेशान कर देते हैं। उपर्युक्त कीटाणुनाशक दवाओं के प्रयोग से ये भी मर जाते हैं। यदि समय पर कोई कीटनाशक दवा उपलब्ध न हो, तो पशु के बाँधने के स्थान पर और उसके आस-पास सूखा खर-पतवार बिखेर कर आग जलाकर इन्हें नष्ट कर देना चाहिए।

मच्छर (Mosquitos)—मच्छर भी पशुओं को बुरी तरह परेशान करते हैं तथा रुग्ण पशु को काटने के बाद अपने साथ उसके विषाणु ले जाकर स्वस्थ पशु को भी रोगाक्रांत करते हैं। पिछली पंक्तियों में लिखित डी० डी०टी०, फिनिट आदि का छिड़काव करके इनको नष्ट कर देना चाहिए। यदि कोई कीटनाशक उपलब्ध न हो तो पशु के निवास-स्थान और उसके आसपास गंधक और नीम की पत्तियाँ सुलगाकर धुआँ कर देना चाहिए।

मक्खियाँ (Fly)—मक्खियाँ बहुत प्रकार की होती हैं। साधारण घरेलू मक्खियाँ तो उतना परेशान नहीं करतीं, तथापि कहीं खुला घाव हुआ तो उसमें काटा करती हैं। इसके अतिरिक्त संक्रामक कीटाणुओं की वाहक होने से रोग फैलाती हैं। रेत मक्खी (Sand Fly) छोटी-छोटी मक्खियाँ हैं, जो पशुओं के शरीर पर चिपककर उनका रक्त चूसती हैं। डांस (Hors Fly) बहुत बड़ी मक्खी होती है। इसे घुड़मक्खी भी कहते हैं। यह बड़ी और दृढ़ मक्खी पशु की मोटी त्वचा में भी छेद करके उसका रक्त चूसती है। इसके काटने पर खून निकल आता है। जब यह मक्खी पशु के किसी अंग पर बैठती है, तो उसे इसकी उपस्थिति का तुरन्त आभास हो जाता है, तब पशु वह अंग थरथराता, हिलाता और पूंछ झटककर उसे भगाने का प्रयास करता है। पशु को इस मक्खी से बचाने के लिए पशु के शरीर पर नीम का तेल या तारपीन का तेल या कर्पूरादि तेल आदि चुपड़ देना चाहिए।

जूंओं को नष्ट करने के लिए जैसा कि बताया जा चुका है—डी० डी० टी० या बी० एच० सी० के घोल से नहला देने से वे नष्ट हो जाती हैं। मेथोक्लीक्लोर और टाक्साफीन के प्रयोग से भी जूंयें नष्ट हो जाती हैं। किन्तु तेज किटाणु-नाशक दवाओं के प्रयोग से दुधारू पशुओं के दूध पर हानिकर प्रभाव पड़ता है, अतः गाय, भैंस, बकरी आदि के शरीर पर ०·५ प्रतिशत रोटेनन और १ प्रतिशत घुलनशील गन्धक युक्त डेरिस पाउडर का भुरकाव किया जाता है। इससे जूंयें नष्ट हो जाती हैं। ०·००५ प्रतिशत पाइरेथिन और ०·०५ प्रतिशत पाइपेरोनिल ब्यूटोक्साइड युक्त घोल का छिड़काव भी जूंओं को नष्ट कर देता है।

खटमलों को नष्ट करने के लिए बी० ए० सी०, क्लोरोडेन, लिंडेन, टोक्साफीन की 'नाशक दवाओं का प्रयोग लाभकारी सिद्ध होता है।

पशुओं के सामान्य रोग तथा उनकी चिकित्सा
(Non-Contagious Diseases of Animals)

पिछले अध्यायों में पशुओं के विविध संक्रामक रोगों तथा अन्य कीटाणु-जन्य रोगों का वर्णन तथा उनके उपचार तथा सुरक्षा आदि के सम्बन्ध में यथेष्ट

प्रकाश डाला जा चुका है। अब इस अध्याय में उनके सामान्य रोगों के कारण, लक्षण तथा चिकित्सा लिखी जा रही है। सामान्य शब्द के माने हैं साधारण या मामूली। यद्यपि सामान्य रोग संक्रामक रोगों की तरह भयंकर और घातक नहीं होते, तथापि इनकी ओर से भी लापरवाही न करके यथाशीघ्र उचित उपचार करना चाहिए। सामान्य रोग भी यदि चिरकाल तक बना रहा तो जीर्ण रोग होकर कष्टसाध्य और प्रायः असाध्य हो जाता है।

पालतू पशु पराधीन प्राणी है। प्रायः वह अपने पालक के प्रमाद और उपेक्षा के कारण ही रोगग्रस्त होता है। जिस प्रकार मनुष्य के लिए स्वच्छ वायु, सूर्य-प्रकाश, स्वास्थ्यप्रद वातावरण, सुपाच्य पौष्टिक और सन्तुलित आहार, समुचित श्रम और विश्राम, शीत-ताप से सुरक्षा तथा मानसिक शान्ति तथा प्रसन्नता आवश्यक है, उसी प्रकार पशु के लिए भी। इन सब विषयों पर पहले ही पर्याप्त निर्देश दिये जा चुके हैं। अब पशुओं के सामान्य रोगों के सम्बन्ध में लिखा जा रहा है।

पाचन-संस्थान के रोग

(Ordinary Diseases of Digestive Organs)

कब्ज (Constipation)

कब्ज, कोष्ठबद्धता या मलावरोध सामान्यतः पशुओं को कम होता है, क्योंकि वे सक्रिय जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु कभी-कभी दूसरे रोगों के लक्षण-स्वरूप भी कब्ज हो जाता है। ऐसी दशा में पहले मूल रोग की चिकित्सा करनी चाहिए। उसके दूर हो जाने पर कब्ज भी दूर हो जायगा। कब्ज अजीर्ण से अलग रोग है, प्रायः लोग दोनों को एक ही रोग समझ बैठते हैं, किन्तु यह बात नहीं है। हाँ, कब्ज प्रायः बदहजमी के कारण हो जाता है।

पशु के खाने-पीने में अनियमितता, सूखा चारा अधिक खा जाने और पानी कम पीने से चारा भली-भाँति हजम न होने, कभी-कभी जलवायु परिवर्तन के कारण, चोट आदि खा जाने से, पैर टूट जाने से बैठकर समय बिताने के कारण

या अन्य किसी कारण से आँतों में शिथिलता आ जाने के कारण मलावरोध हो जाता है। यदि कब्ज कुछ दिनों तक बना रहे और उसकी उचित चिकित्सा न की जाय तो अनेक उदर-रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण—बिल्कुल गोबर न करना या सूखा, कड़ा, गांठदार गोबर करना, कभी-कभी सफ़ेद लेसदार गोबर करना, पेट में पुराना मल भरा रहना और चारा-दाना कम कर देना इस रोग के उपसर्ग हैं।

घोड़े को कब्ज होने पर पेट में हल्का दर्द, सुस्ती और शिथिलता, चारा खाना बन्द कर देना, मल कड़ा और कठिनाई से बहुत कम आना, ज्वर न रहना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

चिकित्सा—कब्ज दूर करने के लिए पशु को विरेचक दवा देकर दस्त करा देना ही लाभप्रद है।

कैस्टर आयल आधा पाव में २ तोला सोंठ का चूर्ण मिलाकर ढरका द्वारा पिला देने से पशु को खुलकर दस्त आ जाते और कब्ज दूर हो जाता है।

मिक्श्चर—(१) पल्व जनसन १० ग्राम, एलोज बार्ब १५ ग्राम, कैलोमेल २ ग्राम, आयल मैंथा पिपरेटा १ मि० लि०—सबको पीसकर एकत्र मिलाकर, गोली बनाकर चने या गेहूँ के आटे या गुड़ के अन्दर भरकर पशु को खिलायें।

(२) पल्व जनसन १० ग्राम, एलोज बार्ब १५ ग्राम, एक्सट्रैक्ट बेलाडोना सिक० १ ग्राम, आयल मैंथापिपरेटा १ मिलि०—सबको पीसकर एकत्रकर गोली बनाकर गेहूँ या चने के आटे या गुड़ में मिलाकर पशु को खिलाने से कब्ज दूर होकर खुलकर दस्त आ जाता है।

इण्डियन हर्ब्स कं० का हिमालयन बतीसा के साथ मैगसल्फ मिलाकर एक लिटर पानी में घोलकर सबेरे या समयानुसार ढरके से पिलायें। कब्ज मिट जायेगा।

यदि उपर्युक्त औषधियों से भी दस्त न हो सके या एनीमा की सुविधा हो तो हल्के गर्म पानी में सनलाइट साबुन को घोलकर एनीमा दें।

विटामिन बी कम्प्लेक्स का इन्जेक्शन एक-एक मास में लगाना लाभप्रद है।

अजीर्ण या बदहजमी
(Indigestion)

सड़ा-गला, गन्दा या सूखा चारा या गरिष्ठ भोजन पशु को मिल जाने पर, अधिक मटर, गेहूँ आदि खा लेने, चारा बदलने, दूषित जल पीने, कभी-कभी उदर में कृमि हो जाने, स्नायविक दुर्बलता आदि कारणों से अपच या बदहजमी की शिकायत पैदा हो जाती है। यकृत-विकार, शीत-ताप आदि की तीव्रता, पशु के वृद्धावस्था में दांत न होने के कारण चारा भली-भाँति चबाया न जाना आदि भी अपच या बदहजमी के कारण होते हैं।

लक्षण —पशु चारा खाना बन्द कर देता है, पागुर (जुगाली) करने की क्रिया मन्द हो जाती है, ज्वर नहीं रहता, पाचनशक्ति बिगड़ जाती है, प्यास बढ़ जाती है। कभी-कभी पशु मिट्टी भी चाटने लगता है। कभी-कभी कब्ज और अफारा भी हो जाता है। मुँह में काँटे हो जाते हैं तथा गोबर रंग-बिरंगा, पतला, थोड़ा और कष्टपूर्वक निकलता है। पशु बहुत उदास-सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त पेट में भारीपन, श्वास-प्रश्वास में कष्ट, तन्द्रा, पेट में गड़गड़ाहट आदि उपसर्ग होते हैं।

यह जान लेना भी बहुत आवश्यक है कि बदहजमी की अवस्था अम्लीय है या क्षारीय, जिससे ठीक-ठीक उपचार-व्यवस्था हो सके। इसके लिए जुगाली के फेन की लिटमस पेपर से जाँच करनी चाहिए। लिटमस के नीला पत्र एसिड में पड़ने से लाल तथा पत्र अलकली क्षार में पड़ने से नीला हो जाता है।

चिकित्सा—सभी उदर-रोगों में प्रायः हल्का विरेचन देकर पशु का पेट साफ कर देना बहुत लाभप्रद सिद्ध होता है। एतदर्थ १० तोला कैस्टर आयल (रेड़ी के तेल) या सरसों के तेल में २ तोला सोंठ का चूर्ण या छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर ढरके से पिलायें।

मेगसल्फ २५० ग्राम लेकर इण्डियन हर्ब्स के हिमालयन बत्तीसा ५० ग्राम या यूनिवर्सल आयुर्वेद के यूनिवर्सल बत्तीसा या बी० वी० बी० के हरमिन्सा ५०

ग्राम के साथ एक लिटर गुनगुने पानी में घोलकर ढरके द्वारा एक ही बार में पिला दें।

मैगसल्फ १५० से २५० ग्राम, सोडियम क्लोराइड १२५ ग्राम, पल्व जिंजर ३० ग्रा०, सोडाबाई कार्ब ३० ग्राम—सबको स्वच्छ जल ५०० मि० लि० में भली-भांति घोलकर एक ही बार में ढरके से पिलायें।

एथिकेर कं० का नोरेक्सिया पाउडर ५ ग्राम प्रतिदिन दो बार निरन्तर ३ से ५ दिन तक दें। फाईजर कं० का रूमेण्टान (Rumenton) २ टेबलेट थोड़े-से पानी में घोलकर प्रतिदिन एक बार दो दिन तक दें।

कैटल रमेडीज कं० का कैटोन (Caton) पाउडर ५० ग्राम दिन में दो बार दें।

मे० एण्ड बेकर कं० का कार्बाकाल (Carbachol) की २ से ४ मिलि० की त्वचा में सूई लगायें। किन्तु ध्यान रहे कि इसे गाभिन पशु को न लगायें।

इनके अतिरिक्त पशु को सबल बनाने के लिए टी० सी० एफ० कं० का लिवर एक्सट्रैक्ट या सारामाई कं० का बेलामील या ग्लैक्सो कं० का लिवोजेन ५ से १० मि० लि० का मांस में इन्जेक्शन लगायें। इनसे पशु के शरीर में रक्तवृद्धि होती है और वह सशक्त हो जाता है।

हैक्स्ट कं० के टोनोफोस्फान (Tonophosphan) २० मि० लि० की मांस में सुई लगायें।

अफारा
(Tympanites)

अफारा या पेट फूलना ऐसा भयंकर उदर रोग है कि इसमें आक्रांत होने पर कभी-कभी पशु कुछ ही घन्टों के अन्दर ही मर जाता है। सभी पशु विशेषकर चारा खानेवाले पशु इस रोग से पीड़ित होते हैं।

इस रोग का कारण पेट की गैस होती है। कभी-कभी खुला होने पर अवसर पाकर जब पशु अनाज के ढेर में पहुँचकर खूब अनाज खा जाता है और फिर

पानी पी लेता है तो वह अनाज पेट में फूलता है, तो पशु की पाचनेन्द्रियाँ उसे पचाने में असमर्थ रहती हैं और वह भीतर सड़कर गैस पैदा करती है अथवा पहले पेट भर चारा न पाने के बाद जब पशु को जैसा भी सड़ा-गला चारा या घास मिलती है, तो वह बहुत अधिक खा जाता है, जिससे उसका पेट फूलकर गैस बनने लगती है। यह विषैली गैस ऊपर उठकर हृदय और फुफ्फुसों की क्रिया में अवरोध उत्पन्न करती है। पशु का पेट फूल जाता है और अफारा हो जाता है। यदि पेट की इस दूषित गैस को निकाला न जाय, तो कभी-कभी वह कुछ ही घन्टों में मर जाता है। कभी-कभी पशु के भरपेट चारा खाने के बाद ही उसे पागुर करने का अवसर न देकर तुरन्त ही घाम में जोत देने पर भी अफारा हो जाता है। अरहर, मटर आदि दलहनी अनाज पेट भर खा लेने पर, तुरन्त पानी पी लेने पर भी प्राय: अफारा हो जाता है।

लक्षण—पशु का पेट फूल जाता है, विशेष रूप से बाईं ओर की कोख अधिक फूली हुई दिखाई देती है और पेट में गैस भरी हुई जान पड़ती है। पेट पर हाथ मारने से ढोल जैसी आवाज होती है। पशु जुगाली नहीं करता और व्याकुल हो जाता है। चारा नहीं खाता। चलना-फिरना कठिन हो जाता है। पेट फूल जाने के कारण पशु हाँफने लगता है। कष्ट से कराहता है। अफारा के कारण फेफड़ों पर दबाव पड़ने से पशु को साँस लेने में कष्ट होता है। पशु बारम्बार लेटता और उठकर खड़ा होता है। शीघ्र उपचार न करने पर पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—इस रोग में पशु के पेट में भरी हुई गैस तत्काल निकालना आवश्यक है, एतदर्थ निम्नांकित किसी औषधि का प्रयोग करें—

नौसादर का चूर्ण ४ तोला, सोडा बाई कार्ब ५ तोला दोनों को आधा सेर गरम पानी में घोलकर ढरके से पिलायें।

मिक्श्चर—फार्मेलीन ८ मिलि०, टिंचर जिंजर ३० मिलि०—दोनों को २५० मिलि० जल में मिलाकर ऐसी एक मात्रा ढरके से पिला दें।

टर्पेनटाइन आयल (तारपीन का तेल) १ औंस, अलसी का तेल ४ औंस मिलाकर ऐसी एक मात्रा पिलायें।

इण्डियन हर्ब्स कं का टिम्पोल (Timpol) १०० ग्राम, ५०० मिलि० गर्म पानी में घोलकर बड़े पशु को एक ही बार में पिला दें। कुत्ते और सुअर के बच्चे को ५-६ ग्राम, भेड़, बकरी को ५० ग्राम, सुअर को ३० ग्राम, गाय, भैंस और घोड़े के बच्चे को ५० ग्राम तथा दूसरे पशुओं को उनकी आयु एवं भार के अनुसार यथोचित मात्रा में टिम्पोल को हल्के गर्म पानी में घोलकर, यदि उपलब्ध हो सके तो थोड़ा अलसी का तेल भली-भाँति मिलाकर प्रति ३-४ घंटे के अन्तर से पिलावें। यदि पशु को खाँसी हो तो दवा को शीरे में मिलाकर अवलेह बनाकर खिलावें।

इम्पैक्टाफ (Impactof) (Shonan) तरल ५० मिलि० प्रतिदिन दो बार पानी में मिलाकर ऐसी एक मात्रा के रूप में पिलायें।

भारतीय बूटी भवन का अफ़ीन ५० ग्राम २-३ लिटर हल्के गर्म पानी में घोल-कर दो बर्तनों में कई बार फेर लें। जब भली प्रकार घुल-मिल जाय तो ढरके में भर तुरन्त इस प्रकार पिला दें कि दवा पेट के अन्दर पहुँच जाय। तब पशु को थोड़ा घुमावें-चलावें। आवश्यकता होने पर ६ घंटे बाद दूसरी मात्रा दें।

ओलियम लिनि० ५६० मिलि०, ओलियम टेरेमिन्थ ५० मिलि०, एसिड कार्बोलिक (फेनाल) ४ मिलि०—सबको मिश्रित कर ऐसी एक मात्रा पिलायें।

एलर्जी के कारण उत्पन्न अफारा को दूर करने के लिए एण्टी-एलर्जिक तथा हिस्टेमिन विरोधी औषधियों का प्रयोग करें। जैसे लाईकर एड्रेनालीन हाइड्रो-क्लोराइड की त्वचा में १ से ४ मिलि० की सुई लगायें या मिपापरेमीन मैलिएट का मांस में ५ प्रतिशत का साल्यूशन १० मिलि० से ३० मिलि० की मात्रा में सुई लगायें।

या प्रामेथाजीन हाइड्रोक्लोराइड का ५% साल्यूशन ५ से २० मिलि० की मात्रा में सुई लगायें।

अफारा दूर हो जाने पर नर्व टानिक्स जैसे एक्सट्रैक्ट नक्सवामिका लिक्विड की ५ मिलि० पर्याप्त पानी में मिलाकर प्रतिदिन केवल एक बार पिलावें।

उपरोक्त सभी औषधियाँ अफारा दूर करने में बहुत ही प्रभावकारी हैं; किन्तु यदि इनसे भी लाभ न हो तो पूर्वकथित विधि के अनुसार एनिमा देकर पशु के पेट का मल निकाल दें। यदि एनिमा से भी लाभ न हो और पशु की मृत्यु निकट दिखाई दे, तो तत्काल पशु चिकित्सालय ले जाकर आपरेशन करा देना चाहिए। आपरेशन अफारे का अन्तिम उपचार है।

इस रोग में पशु को चारा या पानी तबतक बिल्कुल न देना चाहिए जबतक कि पशु का अफारा दूर न हो जाय। बल्कि ठीक हो जाने पर भी पशु को २४ घण्टे भूखा रखकर फिर सुपाच्य थोड़ा आहार दें। पशु को कुछ देर टहलाकर शेष समय उसे पूर्ण विश्राम दें और उससे बिल्कुल काम न लें।

अफारापीड़ित पशु के मुँह में लकड़ी की लगाम डाल देने से वह जुगाली करने लगता है और भोजन पच जाता है। पशु की जीभ को आगे की ओर थोड़ा खींचने से वह जुगाली करने लगता है, जिससे अफारा दूर हो जाता है।

अधिक तीव्र अफारा
(Distension)

अधिक तीव्र आनाह की अवस्था में निम्नांकित चिकित्सा विधेय है—पशु की बाईं कोख में मालिश करें और उसे चलायें-फिरायें। प्रोवेग (कण्ठ-नलिका) को मुख-मार्ग से कण्ठ में प्रविष्ट करके गेस को निकाल बाहर किया जा सकता है। पशु को पीछे की ओर लकड़ी का स्टैण्ड बनाकर उसके पिछले पैरों को ऊँचे उठाकर अगले दोनों पैरों पर खड़ा रहने को विवश करें। गरम पानी में साबुन घोलकर एनीमा दें। अत्यधिक अफारा के कारण श्वासोच्छ्वास में कष्ट हो तो बायीं कोख में तत्काल ट्रोकार-केनुला (Trocar-Canula) से छिद्र करके बायें भाग के पेट का पंचर करें या मोटे छेद वाली इन्जेक्शन की सुई से बायें भाग के पेट का पंचर करके गेसों को निकाल डालें।

इण्डियन हर्ब्स कं० का टिम्पोल (Timpol) १०० ग्राम ५०० मिलि० गर्म जल में घोलकर थोड़ा अलसी का तेल मिलाकर एक ही बार में पिला दें। ३-४

घंटे बाद दूसरी और आवश्यकता हो तो फिर ३-४ घंटे बाद तीसरी मात्रा दें। बी० वी० वी० कं० के आफ़ीन का भी इसी मात्रा में प्रयोग करना गुणकारी है।

इण्डियन हर्ब्स का हिमालयन बतीसा या बी० बी० वी० का हरमिन्सा यथोचित मात्रा में गर्म जल में मिलाकर पिलायें।

एम० बी० का एन्थिसान (Anthison) १० मि० लि० की त्वचा में (S. C.) सुई लगायें या हेक्स्ट कं० के एविल (Avil) की ५ से १० मिलि० की त्वचा में (S. C.) सुइ लगायें।

झागयुक्त अफारा

(Frothi Bloat or Tympany)

गैस के बुलबुलों के साथ पेट में अपच चारा रहने से पेट, अफरकर फूल जाने से पशु पीड़ा और घुटन से कराहता है और फूले पेट की ओर निरन्तर कातरता से देखता है। उसकी व्याकुलता बहुत बढ़ जाती है।

भीगा हुआ दलहनी या सड़ा-गला बासी या किण्व उत्पादक या हरा और रसदार चारा-दाना-पानी अथवा बेक्टीरिया उत्पादक घास-भूसा, चोकर आदि अत्यधिक मात्रा में खा लेने से पशु के पेट में फेनवाला अफारा हो जाता है।

लक्षण :—अचानक पशु का पेट, विशेषकर बायीं ओर की कोख पहले फूल जाती है। पेट पर हाथ मारने से ढोल जैसी ढप्प-ढप्प की ध्वनि होती है। पशु को साँस लेने में कष्ट होता है। कभी-कभी पशु जीभ बाहर निकालकर, लटकाकर हाँफता है और पिछले पैरों को बारम्बार पटकता रहता है। निश्चयात्मक निदान ट्रोकेराइजेशन (पेट से तरल पदार्थ निकालकर उसकी जाँच के) द्वारा ही होता है।

चिकित्सा : - फाईजर कं० का टेरामाइसिन तरल २० मि० लि० १०० मि० लि० स्टेराइल वाटर में घोलकर लम्बी सुई का प्रयोग करते हुए रूमिनल में सुई लगायें।

बकहर्ट कं० का ब्लोटोसील (Bloatosil) ५० से १०० मि० लि० की मात्रा में केर में रखकर पिलायें ।

आयल टेरेबिन्थ ३० से ६० मि० लि० और मीठा तेल ५०० मि० लि० भली-भाँति घुला-मिलाकर एक मात्रा के रूप में ढरके से पिलायें ।

इन्डियन ड्रग्स का रिम्पोल ६० ग्राम अलसी के तेल या किसी भी खाद्य तेल में मिलाकर पिलायें । अत्यधिक गम्भीर अवस्था में तत्क्षण ही आराम पहुँचाने के लिए ट्रोकार और कैनुला यन्त्र से पेट में छेद करके गैस को निकाल दें । बाद में छिद्र को किसी व्रणनाशक मलहम से पट्टी करके ठीक कर दें ।

मीठा तेल और दूध ५००-५०० मिलि० एक में मिलाकर खूब फेरकर भली-भाँति मिश्रित कर एक ही बार में ढरके से पिला दें ।

मेथिल सिलीकोन १०० मिलि० (२% विलयन किरासनवाला) और ३० मि० लि० तारपीन मीठे तेल में मिलाकर झाग नष्ट करने के लिए पिलायें ।

यदि उपरोक्त औषधियों के प्रयोग के पश्चात् भी दो-तीन दिन में लाभ न दिखाई पड़े, तो पशु की प्राणरक्षा के लिए शल्य-क्रिया द्वारा उसके पेट में छेद करके उसके भीतर की गैसें एवं दूषित विकार को निकालकर उसका पेट रिक्त करके ताजा ट्यूमेन लिकर तथा ब्रेवर्स यीस्ट १२० से २५० ग्राम उसमें डाल देना चाहिए ।

हिस्टेमिन के कारण उत्पन्न फेन वाले अफारा में एम० बी० कं० का एन्थिसान की १० मि० लि० की त्वचा में या हैक्स्ट कं० के एविल की ५ से १० मि० लि० की मांस में सुई लगानी चाहिए ।

पुनरावर्त्तक अफारा

(Recurrent Tympany)

बार-बार होने वाले अफारा को पुनरावर्त्तक आनाह कहते हैं । इसकी उत्पत्ति के कारण भी पूर्वलिखित और पशु के पाचन-संस्थान की विकृति है ।

चिकित्सा :—इण्डियन हर्ब्स का हिमालयन वत्तांसा ३० ग्राम नित्य दो वार निरन्तर छः दिन तक खिलायें।

फाईजर कं० का एनोरेक्सान (Anorexon) २ टेवलेट्स तथा हिमालया ड्रग कं० का लिव-५२—१० ग्राम पाउडर दोनों का मिश्रित कर १० दिन तक खिलाते रहें।

अफाली कं० का लिवेटी या यूनिवर्सल आयु० का वैलीलिव (Valilev) पशु और घोड़े को १० से १५ ग्राम दिन में दो बार लगातार १५ दिन तक दें। ये औषधियाँ यकृत-क्रिया को उत्तेजित कर पाचन-क्रिया को सुधारती हैं।

साराभाई का वेलामील ५ मिलि० सप्ताह में दो बार सुई लगायें। ग्लेक्सो कं० के लिवोजेन या वाकहर्ड्ट कं० के बी-काम-एल (Beeckom-L) या टी० सी० एफ० विटामिन बी-काम्प्लेक्स (T. C. F. Vitamin B. Complex) ५ मिलि० की मांस में सुई सप्ताह में दो बार लगायें।

मे० एण्ड बेकर कं० का एसीटिलार्सल (Acetylarsan ९·४ प्रतिशत शक्ति की १० मि० लि० औषधि का सप्ताह में दो वार करके चार बार इन्जेक्शन लगाने से पशु की शक्ति बढ़ती और उसके स्वास्थ्य में सुधार होता है।

उदर-शूल

(Colic Pain)

गेहूँ के भूसे की गुठली (गाँठें) अधिक खा लेने, कड़ी सूखी (घास या पेड़ों की टहनियाँ आदि खाने और कम पानी पीने), अधिक परिश्रम करने या दौड़ाने के बाद ठंडा पानी पिला देना, बहुत गीला चारा खाने के बाद अधिक पानी पी लेने, उदर-कृमि, आंत्रशोथ, मिथ्या आहार-विहार से पेट में वायु के कुपित हो जाने आदि कारणों से पशु के पेट में पीड़ा होने लगती है। उदर-शूल से प्रायः घोड़े और ऊंट अधिक प्रभावित होते हैं।

लक्षण :—पेट में भयंकर दर्द होने से पशु तड़पता है, दांत पीसता है, पैर पटकता है, खाना-पीना और जुगाली बन्द कर देता है और बहुत व्याकुल हो जाता है। गोबर या तो बिल्कुल नहीं करता या तेज दुर्गन्धयुक्त थोड़ा-सा करता है। कभी-कभी ऐसी ही दशा में पशु की मृत्यु हो जाती है।

घोड़े की छोटी आँत में तीव्र ऐंठनयुक्त पीड़ा उठती है, जिससे वह बेचैन हो जाता है। पेट फूल जाता है और उसमें गुड़गुड़ाहट जान पड़ती है। घोड़े को किसी तरह चैन नहीं पड़ती। कभी खड़ा होता है, कभी गिर पड़ता है, कभी लोटता है। प्रायः मल-मूत्र बन्द हो जाता है। थोड़ा हाफने लगता है और सारा शरीर पसीने से भीग जाता है। प्रायः अगले दोनों पैरों से भूमि खोद देता है। भूमि पर मुंह मारता और उसे सूंघता है। उसे बहुत कष्ट प्रतीत होता है।

उदर या आँत का दर्द तीन प्रकार का होता है—

(१) अफारा के कारण उदर-शूल (Flatulent Colic)

(२) आक्षेपयुक्त उदर-शूल (Spasmodic Colic)

(३) अवरोधक उदर-शूल (Obstructive Colic)

चिकित्सा :—अफारा के कारण उत्पन्न उदरशूल में निम्नलिखित औषधियाँ लाभदायक हैं—

आयल टेरेबिन्थ २ औंस, एसिड कार्बोलिक ½ ड्राम, क्लोरल हाइड्रास १ औंस, आयल लिनी १ पिंट—सबको मिश्रित कर पिलायें।

आयल टेरेबिन्थ २ औंस, जिंक अमोनिया डिल ४ ग्राम, एसिड कार्बोलिक ½ ड्राम, आयल लिनी १ पिंट—सबको मिलाकर पिलायें।

अतिशय कष्टप्रद अफारा में आँत से गैस निकालने के लिए ट्रोकार कैन्यूला द्वारा पेट में छिद्र कर दें।

आक्षेपयुक्त उदरशूल में—तत्काल ही क्लोरल हाइड्रास १ औंस, टेरेबिन्थ २ औंस, आयल लिनी १ पिंट—सबको मिश्रित कर चारा के साथ या ढरके द्वारा

पिलाने से शीघ्र ही पीड़ा मिट जाती है। या ईथर १ औंस, आयल लिनी १ पिंट, आयल टेरेबिन्थ २ औंस मिलाकर पिलायें।

या आयल लिनी १ पिंट, लिकर अमोनिया डिल १ औंस, आयल टेरेबिन्थ २ औंस मिश्रित कर पिलायें।

या टिंचर जिंजर १ औंस, स्वीट स्प्रिट आफ नाइटर २ औंस--दोनों को १ पिंट पानी में मिलाकर पिलायें।

या पेट के तेज दर्द में बरोज वेलकम कं० का पैथिडीन हाइड्रोक्लोराइड २ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से त्वचा में सुई लगायें। इससे शीघ्र ही वेदना मिट जाती है। यह औषधि टेबलेट के रूप में आती है। उसका टेबलेट देने से आध घण्टे बाद से ही शीघ्र पीड़ा मिटने लगती है।

Baralgan Injection १५ से २० एम० एल० की सुई नस में अथवा मांस में बड़े पशुओं को तथा २ एम० एल० से ५ एम० एल० छोटे पशुओं में लगाना चाहिये। इससे तत्काल आराम मिलता है।

अवरोधक उदर शूल--आमाशय, बड़ी आँत में बिना पचे आहार, आंत्र-अश्मरी ऐंठन, मरोड़, आँत के गुंठन आदि के कारण अवरोध हो जाने से उदर-शूल होने लगता है। इस प्रकार की पीड़ा में क्लोरल हाइड्रास गुणकारी है। निद्राजनक ओषधियाँ शूल शांत करती हैं।

इण्डियन हर्ब्स का टिम्पोल ३० से १०० ग्राम तक पशु की आयु तथा शरीर-भार के अनुसार हल्के गर्म पानी में घोलकर पिलाना लाभप्रद है।

बी० बी० बी० का अफीम अफारा, अपच एवं अजीर्ण के कारण होने वाले उदर-शूल में टिम्पोल की मात्रा के समान सेवन कराना गुणकारी है।

हेक्स्ट कं० के बेरालगन या नोवालजिन को तेज दर्द में १५ से २० मिलि० को मांस में या औषधि को पशु के शारीरिक तापक्रम के अनुसार थोड़ा

गर्म करके धीरे-धीरे शिरा में इन्जेक्शन लगायें। यदि दर्द दूर न हो तो २-३ घंटे बाद पुनः इन्जेक्शन दें।

एम० एण्ड बी० का लाजक्टिल यथावश्यक मात्रा में ६ से १० मि० लि० ५ प्रतिशत का मांस में इन्जेक्शन लगायें। इसी कं० का फेनार्गन १५ से २० मि० लि० की मांस में सुई लगाना भी लाभकारी है।

तीव्र उदर-शूल में बास पैरेक्स टेबलेट्स सतर्कतापूर्वक यथोचित मात्रा में खिलायें।

या एलासिन का सिलेहीन २ टिकिया दिन में तीन बार खिलायें तथा साराभाई के सिबिवल की ३ से ५ मिलि० की मांस या शिरा में सुई लगायें।

सोडियम सल्फ या मैग० सल्फ प्रत्येक आधा पौंड, पानी १ पिंट मिलाकर स्टामेक ट्यूब से आमाशय में डालें। इससे पेट का दूषित विकार दस्तों द्वारा निकल जाने से शूल शान्त हो जाता है।

आई० सी० आई० कं० का डाएक्वीन (Deaquine) या डाई हाईड्रोक्सी एन्थेक्वीनोन २ से ४ ड्राम पानी में मिलाकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

लिकर पिच्यूट्री ४ मिलि० की मांस में सुई लगाना भी लाभप्रद है।

आमाशय में स्टमक ट्यूब द्वारा पर्याप्त पानी प्रविष्ट करके गुदा में एनीमा करें, जिससे अवरोधक कड़ा मल पतला होकर निकल जाय। Baralgan Injection १५ से २० एम० एल० की सुई नस में अथवा मांस में बड़े पशुओं को तथा २ एम० एल० से ५ एम० एल छोटे पशुओं में लगाना चाहिये। इससे तत्काल आराम मिलता है।

निम्नलिखित औषधि भी मल को पतला करती है—

सोडियम साइट्रेट १ औंस, सोडियम क्लोराइड १ औंस, इन्जेक्शन के डिस्टिल्ड वाटर ५०० मि० लि० सबको मिश्रित कर धीरे-धीरे शिरा में इन्जेक्शन

लगायें। यह दवा प्यास की वृद्धि करती हैं। अतः पशु को पर्याप्त पानी पिलायें, जिससे मल पतला हो जाय।

यदि मल बन्द हो तो कैस्टर आयल का एनीमा दें। यदि पेशाब रुक गया हो तो कैथेटर का प्रयोग करें।

इस रोग को दूर करने के लिए एप्सम साल्ट भी बहुत लाभदायक है।

तारपीन का तेल २ औंस और अलसी का तेल १ पिंट मिलाकर पिलाना भी गुणकारी है। मेग सल्फ भी लाभप्रद है। पेट साफ हो जाने पर भी यदि पीड़ा दूर न हो तो यह मिक्श्चर पिलायें—स्प्रिट क्लोरोफार्म १ औंस, केम्फर वाटर ४ औंस सबको एकत्र मिलाकर पिलायें। पशु के उदर-शूल की अचूक और अनुभूत औषधि है।

ऐंठनयुक्त उदरशूल
(Spasmodic Colic)

पशु के अति परिश्रम से थके होने के बाद ठंडा पानी पिला देने, पोषक तत्वों वाले चारे के अभाव से उत्तेजित होने से तथा भय से आतंकित और चिंतित होने से ऐंठनवाला उदर-शूल उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण—पशु बहुत ही व्याकुल हो जाता है। भूमि पर लेटने लगना, दांत काटना, पीछे के पैरों को बार-बार पटकना, पसीना आना, बीच-बीच में शूल का तीव्र दौरा इस रोग के उपसर्ग या लक्षण हैं। किन्तु पशु का पेट नहीं फूलता।

मे० एण्ड बेकर कं० निर्मित फेनारगन २० से ५० मिलि० की मांस में सुई लगाना लाभप्रद है।

आयल टेरेबिन्थ ३० मि० लि०, क्लोरल हाइड्रास ३० ग्राम, आयल लिन-सिड ५०० मि० लि०—सबको भली प्रकार एकत्र मिश्रित कर स्टामक ट्यूब से सतर्कतापूर्वक पिलायें।

हेक्स्ट कं० निर्मित नोवालजिन या बैरालगन १५ से २० मि० लि० की मांस में सुई लगायें। यदि आवश्यक हो तो ३-४ घंटे बाद फिर सुई लगायें।

अतिसार (दस्त आना)

(Diarrhoea)

पानी जैसे पतले दस्त और मरोड़ होना अतिसार का प्रमुख लक्षण है। यह रोग आहार के प्रयोग की असावधानी, अरुच या अजीर्ण, आँतों में खराश और शोथ, विरेचक औषधियों के प्रयोग, सड़ा-गला चारा खाने, गन्दा जल पीने, अधिक गरिष्ट और रूक्ष आहार करने, खाने के पश्चात् बिना जुगाली का अवसर दिये तुरन्त काम में जोत दिये जाने, शीत-ताप के आधिक्य, उदर में कृमि होने आदि किसी भी एक या अधिक कारणों से हो जाता है। यह रोग किसी भी पशु को हो सकता है।

अतिसार में जल्दी-जल्दी अधिक मात्रा में पतले दस्त आते हैं, जिस कारण से अतिसार होता है, उसी के अनुरूप लक्षण प्रगट होते हैं, जैसे अधिक घास या हरा चारा खा जाने से हरे-हरे पतले दस्त आते हैं, गरिष्ट या रूक्ष आहार करने से उत्पन्न अतिसार में खाद्य वस्तु के समूचे टुकड़े निकलते हैं, कृमि-दोष जन्य अतिसार में गोबर के साथ कीड़े निकलते हैं। अतिसार में क्षुधानाश, चारा न खाना, जुगाली न करना, अधिक तृषा, दुर्बलता, शिथिलता आदि उपसर्ग होते हैं।

चिकित्सा—सर्वप्रथम कैस्टर आयल या अलसी का तेल ४ औंस पिलाकर पेट साफ कर दें। प्रायः इसी के प्रयोग से पेट साफ होकर खराश दूर हो जाती है और दस्त बन्द हो जाते हैं। यदि इससे लाभ न हो तो निम्नांकित औषधियों का प्रयोग करें—

टिंचर कार्डीमस १ औंस, स्प्रिट क्लोरोफार्म १ औंस, लाईकर मार्फिया २ ड्राम, कैम्फर वाटर ४ औंस एकत्र मिलाकर पिलायें।

क्लोरोडिन १-२ मि० लि० आधा औंस पानी में मिलाकर पिलायें।

टिंचर ओपियम १ ड्राम, टिंचर केटिच्यू (कत्था) ४ ड्राम, प्रिपेयर्ड चाक १ औंस—सबको आवश्यकतानुसार चावल के मांड़ में मिलाकर पिलायें।

सब प्रकार के अतिसार में केओलिन (Kaolin) बहुत लाभप्रद है। पशु-शावकों के अतिसार में कोरम फेनिकोला बहुत लाभप्रद परीक्षित औषधि है।

सायनेमिड कं० का सल्मेट (Sulmet) भी यथोचित मात्रा में सेवन कराने से अतिसार मिट जाता है। इनकी खाने की ओब्लेट्स तथा ड्रिंकिंग वाटर सोल्यूशन खिलायें।

घोड़ों और गायों के अतिसार में ओपियाई तथा पी० केटीक्यू प्रत्येक १-१ ड्राम, क्रेटा और केओलिन प्रत्येक ४-४ ड्राम—सबको मिश्रित कर ऐसी एक मात्रा एक पिंट माड़ में मिलाकर दो-तीन वार पिलाने से पशु का अतिसार शीघ्र ठीक हो जाता है।

घोड़े और गाय के बच्चों के लिए केओलिन और क्लोरोडिन प्रत्येक १ ड्राम, लाईकर केल्शियम सैक० २ औंस, म्यूसिलेज आफ एकेशिया पर्याप्त तथा एक्वा-मेंथापिपरेटा ४ ड्राम—सबको मिश्रित कर ऐसी एक मात्रा ६-६ घंटे के अन्तर से पिलायें।

इथिकेर कं० का स्टेट (Stat) पाउडर १० ग्राम प्रति ४० किलो शरीर-भार के अनुपात से पशुओं को ३ से ५ दिन तक निरन्तर पिलाने से अतिसार में निश्चित लाभ होता है।

श्वेत अतिसार

(Colibacillosis or whiteor Seours)

बैक्टीरिया के उपद्रव से आँतों में सूजन होकर यह रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग प्रायः दो मास के पशु-शावकों-बछड़ों और विशेषकर भैंस के बच्चों को होता है। आँत में कीटाणुओं विशेषकर बैक्टीरिया के होने से आँतों में शोथ हो जाती है। एकाएक सफेद या पीले रंग के कई दस्त आ जाते हैं, शावकों को शीत लग जाता है, शरीर में जलाभाव (Dehydration) होकर विषैले लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। समय पर समुचित उपचार न होने पर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—ग्लैक्सो कं० का गेस्टिना या साराभाई का क्वीवजेलिन २ टिकिया प्रतिदिन दो बार तीन दिन तक दें या इथिकेर कं० का स्टेट (Stat) पाउडर १० ग्राम प्रति ४० कि० शरीर-भार के अनुसार खिलायें।

एस्ट्रिनजेन्ट मिक्श्चर—टिंचर जिंजीबर—टिंचर कटैचू, टिंचर ओपीआई प्रत्येक ३० मि० लि०—सबको २५० मि० लि० पानी में भली-भांतिमिश्रित कर दिन में १-२ बार पिलायें।

एसिड टैनिक १५ ग्राम, कैओलिन बछड़े को १५ ग्राम तथा बड़े पशु को ३० ग्राम, पल्वजिजर बछड़े को ५ ग्राम, बड़े पशु को १५ ग्राम एकत्र मिला-कर चावल के मांड़ में मिलाकर प्रति १२ घंटे के अन्तर से दें।

उपद्रवों की शान्ति तथा रोग-निरोध-क्षमता-वृद्धि के लिए ग्लैक्सो निर्मित त्रिपेलि नफोर्ट १ से २ मि० लि०, विटाब्लेण्ड डब्लू० एम० फोर्स (ग्लैक्सो का ही) १ से २ मि० लि० प्रतिदिन दूध में, तथा ग्लैक्सो का विमेराल (Vimerol) २ मि० लि० प्रतिदिन दूध में इन्जेक्शन लगायें।

जलाभाव (Dehydration) तथा विषैले लक्षण (Toxaemia) को नियन्त्रित करने के लिए गर्म किये हुए डेक्स्ट्रोज सेलाइन ५०० मि० लि० को शिरा-मार्ग से बूंद-बूंद करके अन्तःक्षेपित करें।

पेचिश या रक्तातिसार

(Dysentery)

पशुओं के लिए पेचिश भी एक दुखद रोग है। इस रोग में पशु के पेट में मरोड़ें उठती हैं तथा शूल के साथ रक्त और आंव मिले हुए दस्त होते हैं। मरोड़ के कारण पशु को पीड़ा, ज्वर और व्याकुलता रहती है। यदि रोग कुछ समय तक बना रहे तो पशु बहुत ही निर्बल हो जाता है।

इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं का पेट में निवास है, जो पशु द्वारा सड़ा-गला पदार्थ खा लेने या अधिक समय तक अतिसार

१३

होने से हो जाते हैं। शीत-ताप के तीव्र प्रभाव के कारण भी कभी-कभी हो जाता है।

लक्षण—बार-बार आंव या रक्तमिश्रित थोड़ा-थोड़ा पतला दस्त होना इस रोग का प्रमुख लक्षण है। पशु के पेट में तीव्र मरोड़ या ऐंठन उठती है। वह व्याकुल होकर इधर-उधर चक्कर मारता है। कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है। गोबर के साथ कड़ी गांठ निकलती है। मलत्याग करते समय ऐंठन के कारण पशु इतना जोर लगाता है कि प्रायः उसकी कांच निकल आती है।

चिकित्सा—सर्वप्रथम रुग्ण पशु को कैस्टर आयल या अलसी का तेल ४ औंस पिलाकर उसका पेट साफ कर देना चाहिए। प्रायः इसी के प्रयोग से दस्त और पेचिश अच्छे हो जाते हैं।

सल्फाग्वानेडीन ४ टिकिया, एण्ट्री बायोफार्म ४ टिकिया—दोनों को पीसकर पानी में घोलकर इसी मात्रा में दिन में दो-तीन बार दें। इस योग में पशु की जाति, उनकी आयु और शरीर-भार के अनुसार औषधि की मात्रा न्यूनाधिक की जा सकती है।

पशु को पूर्वलिखित विरेचन देने के पश्चात् 'मर्कंकार' ५-५ बूंद प्रति दो घंटे पश्चात् देना चाहिए। यदि दस्त बहुत आते हों और बार-बार पतला गोबर करता हो तो मर्कंकार के साथ ही आर्सेनिक की १० बूंदें भी बारी-बारी से एक मात्रा देनी चाहिए।

हिमालया ड्रग का डायरेक्स बछड़ों को ५ टिकिया तथा बड़े पशुओं को २० टिकिया प्रतिदिन दो बार दें।

यूनि० आयु० का कबिआल (Kabiol) पाउडर ५० ग्राम प्रतिदिन दो बार दें। कैटल रेमेडीज कं० का कैटोरिया (Catorrhoea) २५ ग्राम प्रतिदिन दो बार दें।

इथिकेर कं० का स्टेट (Stat) पाउडर १० ग्राम प्रति ४० किलो शरीर-भार के अनुसार ३ से ५ दिन तक निरन्तर दें।

भारतीय बूटी भवन का डायाविस्को अतिसार और पेचिश में निम्नांकित मात्रा में प्रयोग करना बहुत ही लाभप्रद है।

घोड़ा, गाय, बैल और भैंस को २५ से ३५ ग्राम, भेड़-बकरी को ५ से १० ग्राम, सुअर को १० से १५ ग्राम, कुत्ते को ५ ग्राम, ऊँट को २५० ग्राम और हाथी को ५०० ग्राम दही-मट्ठा या चावल के माँड़ में मिलाकर ढरके द्वारा प्रतिदिन तीन बार रोग नष्ट न होने तक निरन्तर पिलायें।

इण्डियन हर्ब्स कं० का नेबलान अधिक अम्लीय (Acidic) विकार तथा पेट में नासूर बनने से होनेवाले अतिसार, पेचिश, उदर-शूल और मरोड़ में बहुत लाभप्रद है। मात्रा और प्रयोग निम्नांकित हैं—

घोड़े, गाय, भैंस आदि को ३० से ५० ग्राम, सुअर को १५ से २० ग्राम, भेंड़, बकरी, घोड़े, भैंस व गाय के शावकों को १० से १५ ग्राम, कुत्ते और सुअर के बच्चे को ४-५ ग्राम, दूसरे पशुओं को उनकी आयु एवं शरीर-भार के अनुसार दही, मट्ठा, चावल के माँड़ के साथ ठंडे पानी में घोलकर प्रतिदिन एक-दो बार दें। रोग की तीव्रावस्था में प्रति ६ घण्टे बाद एक मात्रा देना अधिक उपयुक्त और लाभप्रद है।

जुगाली बन्द

(Ruminal Impaction)

पशु के जुगाली बन्द कर देने का कारण प्रायः मोटा और खराब चारा देना, चारा खिलाकर तुरन्त काम में लगा देना, जुगाली करने का समय न मिलना तथा अपच हो जाना आदि होता है।

लक्षण —पशु चारा-पानी बन्द करके जुगाली नहीं करता। पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है, जो प्रायः चारा के बदल जाने के कारण होती है।

चिकित्सा—इस रोग में पहले पशु को विरेचन देना चाहिए, जिससे पशु का अनपचा चारा निकलकर अपच दूर हो जाय।

मैगसल्फ १५० से २५० ग्राम, सोडियम क्लोराइड १२५ ग्राम, पल्वजिंजर ३० ग्राम, सोडाबाईकार्ब ३० ग्राम, परिशुद्ध जल ५०० मि० लि०—सबको एक में भली-भाँति मिलाकर एक ही मात्रा में पिला दें।

२५० ग्राम मैगसल्फ को इण्डियन हर्ब्स के हिमालयन बत्तीसा ५० ग्राम या यूनिवर्सल आयु० के यूनिवर्सल बत्तीसा या बी० बी० बी० के हरमिन्सा ५० ग्राम के साथ १ लि० गर्म जल में घोलकर ढरके द्वारा एक ही बार में पिला दें।

Ruminotone Tablet—२-२ गोली सुबह-शाम।

तथा Anorexon Tablet—४-४ गोली सुबह-शाम।

या

Borirum Bolus—की २-२ गोली सुबह-शाम तीन दिन तक देना लाभप्रद है।

उदर-कृमि
(Worms)

सड़ा-गला चारा-दाना खाने या गन्दे तालाबों का पानी पीने आदि कारणों से प्रायः पशुओं के पेट में कीड़े पैदा हो जाते हैं। यह रोग प्रायः पशु-शावकों को हुआ करता है। कभी-कभी बड़े पशुओं के पेट में भी कीड़े पैदा हो जाते हैं। छोटे पशु-शावक—बछड़े, पड़वे, पड़िया प्रायः मिट्टी खाने लगते हैं, तो उनके पेट में लंबे कीड़े पड़ जाते हैं। इन लम्बे कीड़ों को ग्रामीण लोग पतेर कहते हैं। इन्हीं कीड़ों के कारण जो मिट्टी के खाने से पैदा हो जाते हैं, प्रायः उन्हें कब्ज हो जाता है या मटियाले रंग के दुर्गन्धित दस्त आने लगते हैं।

लक्षण—ध्यान से देखने पर पशु के गोबर में छोटे-छोटे कीड़े चलते दिखाई देते हैं। ये कीड़े स्थूल रूप से दो प्रकार के होते हैं—लम्बे और गोल। पेट में कृमि हो जाने पर पशु चारा-दाना तो निरन्तर खाता रहता है, किन्तु उसका शरीर सूखता जाता है और वह दिनों-दिन दुर्बल होता जाता है।

चिकित्सा—सर्वप्रथम कोई विरेचक औषधि देनी चाहिए, जिससे कीड़े मल के साथ बाहर निकल जायें। निम्नांकित औषधियाँ भी उपयोगी हैं—

बी० बी० बो० कं० का कृमौश (Krimaush) गाय, भैंस, घोड़े के बच्चों को ८ से १० ग्राम, घोड़े, गाय और भैंस को ४० से ६० ग्राम, भेड़, बकरी, कुत्ता और सुअर को १० से २० ग्राम।

फाईजर कं० का वर्मेक्स (Vermex) ५ मि०लि० प्रति १० कि० शरीर-भार के बछड़े को, सायनेमिड कं० का वरबन (Verbun) २५ प्रतिशत पाउडर ४० ग्राम की मात्रा में ४५ किलो शरीर-भार वाले बछड़े-पड़वे को खिलायें

आई० सी० आई०कं० का फेनोविस पाउडर (Phenovis Powder) ½ ग्राम। या आवश्यकतानुसार खिलाने से सब प्रकार के कृमि निश्चित रूप से मर-मर कर मल के साथ निकल जाते हैं।

मुखपाक (मुँह के छाले)

(Stomatitis or Mouth Sore)

जैसे उदर-विकार, कोष्ठबद्धता, पित्त-प्रकोप आदि कारणों से मनुष्य के मुख, जीभ, ओंठ आदि में व्रण हो जाते हैं; वैसे ही पशुओं के मुख में भी उक्त विकारों के कारण मुंह में छाले और घाव हो जाते हैं। शीघ्र ही उपचार न करने पर ये व्रण गले के भीतर तक फैल जाते हैं, जिससे चारा-दाना खाने में असमर्थ होकर पशु दिनोंदिन निर्बल होता जाता है। इस व्याधि की ओर से कुछ दिनों प्रमाद करने से ये छाले जब पेट और आंतों तक फैल जाते हैं, तो पशु मर जाता है।

प्रायः यह व्याधि पशुओं के विशिष्ट संक्रामक रोग जैसे मुंह-खुरपका (F. M. D.) या शीतला माता (Rinder Pest) आदि से सर्वथा भिन्न है।

कभी-कभी पशु को गरम रातिब, दलिया आदि दे देने या गर्म पानी में पशु के मुंह डाल देने, चूना, तेजाब या ऐसी ही कोई दाहक वस्तु खा लेने या किसी कड़ी नुकीली या पैनी वस्तु के चबाने या गर्म औषधियों के प्रभाव से भी मुख में व्रण हो जाते हैं। वैसे सामान्यतः पशुओं को उदर-विकार कम ही होते हैं; तथापि यदा-कदा उदर-विकार, अपच या पेट की गरम दूषित गैस के कारण भी मुख में छाले पड़ जाते हैं।

लक्षण—पशु के मुख-गह्वर की श्लैष्मिक कला में शोथ, प्रदाह एवं व्रण उत्पन्न हो जाते हैं। मुख के भीतर का समस्त भाग—जीभ, तालू, ओठ आदि लाल हो जाते हैं और वहाँ छोटे-छोटे घाव-से दिखाई देते हैं। मुख में तीव्र दाह होती

है। गर्म और दुर्गन्धित श्वास निकलती है। मुंह से झाग और लार टपकती रहती है। जीभ सूजकर बाहर लटक पड़ती है। कभी-कभी इसी व्याधि के प्रभाव से ज्वर भी हो जाता है। पशु को चारा-दाना खाने, पानी पीने और जुगाली करने में बहुत कष्ट होता है।

चिकित्सा—०·१% पोटाशियम परमेंगनेट (लाल दवा) के विलयन या २% फिटकरी के घोल या ०·५% लिस्टेरीन (Listerin) या डेटाल (Dettol) के विलयन से पशु के मुख के अन्दर के भाग को धोने के पश्चात् निम्नांकित औषधियों में से किसी एक का प्रयोग करें—

आई० सी० आई० कं० के सल्फामेथाजीन ५ ग्राम की टिकिया को पीसकर २०० ग्राम ग्लिसरीन या तिल्ली के तेल या नारियल के तेल में मिलाकर मुख के अन्दर लेप करें।

टैनिक एसिड ३० ग्राम और ग्लिसरीन १५० ग्राम—दोनों को भली-भांति मिलाकर चिड़िया के स्वच्छ पंख से मुख के अन्दर लगायें।

पोटाशियम क्लोरेट ८ ग्राम, बोरेक्स १२ ग्राम—दोनों को ६० मि० लि० ग्लिसरीन लिक्विड में भली-भांति मिलाकर मुंह के अन्दर जीभ, तालू, ओठ आदि पर चिड़िया के स्वच्छ पंख से लेप करें।

इनके अतिरिक्त विशेष लाभ के लिए ग्लेक्सो कं० का प्रिपेलीन (Prepalin) ४ से ६ मि० लि० का इन्जेक्शन मांस मे लगायें या साराभाई कं० का बेलामील या वाक हाउ्ट क० का बी-कोम एल या ग्लैक्सो के लिवोजेन की ३ मि० लि० की मांस में सुई लगायें।

या रोश कं० के रिडाक्सन (Redoxone) ५ से १० मि० लि० की सुई धीरे-धीरे शिरा में लगायें।

कड़वे तेल के सिवा किसी भी मीठे खाद्य तेल को चावल के मांड़ में मिलाकर जीभ, तालू, ओंठ की श्लैष्मिक कला पर लगाना भी हितकर है।

क्षुधामांद्य (भूख की कमी)

(Anorexin)

पाचन-क्रिया के विकार या विभिन्न प्रकार के रोगों के प्रभाव से पशुओं में भूख की कमी हो जाने से पशु चारा कम खाने से दुर्बल होता जाता है। यह रोग तीव्र ज्वरों, गैस्ट्रो इण्टेस्टिनल कफ, सर्दी, इन्फ्लुएन्जा, अधिक पीड़ा, पशु को कोई शोक या भयाक्रांत होने पर दीख पड़ता है।

लक्षण—क्षुधामन्दता रोग हो जाने पर पशु चारा बहुत कम खाता है और दिनोंदिन दुर्बल होता जाता है, जिससे उसकी उत्पादन शक्ति में न्यूनता आ जाती है।

चिकित्सा—जिस मूल कारण से क्षुधामन्दता उत्पन्न हुई हो, सर्वप्रथम उसे दूर करना चाहिए। पाचन-क्रिया के सुधार हेतु पशु को सुपाच्य और उत्तम चारा-दाना खिलायें।

फाईजर कं० के एनोरेक्सोन (Anorexone) की २ से १० टिकिया पशु की आयु और शरीर-भार के अनुसार खिलायें।

कब्ज के कारण भूख की कमी हो तो कैलोमल ३ ग्रेन और एलोज १ ड्राम मिलाकर एक गोली बनाकर ऐसी एक-एक गोली प्रातः-सायं खिलाकर पेट को साफ करें।

पाचन-प्रणाली को शक्ति देने के लिए सुपर मिनडिफ (Super Mindif) या चर्न (Churn) का सेवन करायें।

अजीर्ण के कारण भूख न लगती हो तो निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग करें—

बी० बी० बी० कं० का हरमिन्सा या युनि० आयु० का युनिवर्सल बत्तीसा या इण्डियन हर्ब्स कं० का हिमालय बत्तीसा ३० ग्राम प्रतिदिन सुबह-शाम हल्के गर्म पानी से निरन्तर एक सप्ताह खिलायें।

आयल रिसीनी २ औंस, क्लोरोडीन १० बूंद मिलाकर खिलायें।

आयल मेंथा पिपरेटा ५ बूंद, आयल रिसीनी २ औंस, लिक्विड कैल्सिज सैक्रो २ औंस सबका मिश्रण—ऐसी एक-एक मात्रा प्रातः-सायं खिलायें।

कैट्ल रेमेडी कं० का कैटाम २५ ग्राम दिन में दो बार गर्म पानी से एक सप्ताह तक दें।

मिक्श्चर—टिंचर जनशन कम्पाउण्ड २० मि० लि०, टिंचर नक्सवामिका १० मि० लि०, एसिड हाइड्रोक्लोरिक डिल० ४ मि० लि० तथा पानी १०० मि० लि०—सबके मिश्रण की एक-एक मात्रा प्रातः-सायं तीन दिन तक दें। अत्यन्त क्षुधावर्द्धक योग है।

ग्लैक्सो के लिवोजेन या वाकहर्ड्ंट का बी काम एल या साराभाई का बेलाभील किसी एक का ५ मि० लि० का मांस में इन्जेक्शन सप्ताह में दो बार कुल दो सप्ताह लगावें।

यकृत्-विकार

(Liver Disorder)

लक्षण—यकृत (जगर) के विकार पशु के अनियमित, हानिकर और दूषित खान-पान आदि के कारण हो जाते हैं। वेदनाविहीन या वेदनायुक्त यकृतवृद्धि (Inlargement of Liver with or without pain in it), पुराना अपच, क्षुधामन्दता, शिथिलता और आलस्य, मटमैले रंग का गोबर, पाण्डु-कामला (Jaundice) के साथ रक्ताल्पता, शोथ, जलोदर आदि लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। निदान के लिए इसका निश्चय 'लिवर फंक्शन टेस्ट्स' करना चाहिए।

चिकित्सा—टी० सी० एफ० कं० के लिवर एक्सट्रैक्ट विथ विटामिन बी० कम्पलेक्स २ से ५ मि० लि० का मांस में प्रतिदिन या हर तीसरे दिन इन्जेक्शन बहुत लाभप्रद है।

हिमालया ड्रग का लिव-५२ या लिवेटी या वेलीलिव पाउडर १० से ५० ग्राम की मात्रा में यकृत-विकार पीड़ित पशु को खिलायें।

टी० सी० एफ० कं० के डिजीप्लेक्स या प्रोविटेक्स में कोई एक दवा छोटे पशु को एक छोटा चम्मच दिन में दो बार चारा के साथ दें।

मे० एण्ड बेकर कं० का मिफेक्स या ग्लूसीन या केलत्रोरल १०० से ३०० मि० लि० का बड़े पशु को इन्जेक्शन लगायें।

डेक्स्ट्रोज २५% विलयन ५०० से १००० मि० लि० की मात्रा में बूंद-बूंद करके शिरा में पशु को अन्तःक्षेपित करें। कुत्ते को ५० मि० लि० का शिरा में इन्जेक्शन दें।

कैलसियम सैण्डोज विथ विटामिन सी ५ से १० मि० लि० का इन्जेक्शन शिरा में प्रतिदिन लगायें।

साराभाई निर्मित वेलामील या टी० सी० एफ० का लिवर एक्सट्रैक्ट या ग्लैक्सो का लिवोजेन छोटे पशुओं को २ मि० लि० की मांस में तथा बड़े पशुओं को ५ से १० मि० लि० की गहरे मांस में प्रति तीसरे दिन या विशेष आवश्यकता पर प्रतिदिन सुई लगायें। कुत्ते को लिव-५२ ड्राप्स या टिकिया खिलायें।

बढ़े हुए यकृत-विकार में द्वितीयक बैक्टीरियल संक्रमण को नियन्त्रित करने तथा फाइब्रोसिस न होने देने के लिए एण्टीबायोटिक्स तथा डाइक्रिस्टिसिन (साराभाई निर्मित), फाईजर का टेरामाइसिन, हेक्स्ट का होस्टासाइक्लिन, सायनेमिड का एक्रोमाइसिन, पार्क डेविस का क्लोरोमाइसेटिन आदि तथा कार्टि-कोस्टेराइड्स तथा बेटाकार्ट्रिल (फाईजर), वेटनोलन (ग्लेक्सो) आदि का एक साथ प्रयोग करना चाहिए।

हठीला वमन

(Persistent Vomiting)

कोई दूषित विजातीय पदार्थ पेट में चले जाने, सड़ा-गला चारा-दाना खाने, बदहजमी इत्यादि के कारण पशु को कभी-कभी वमन (के) होने लगता है।

चिकित्सा—एम० बी० का एकेमिन या एम० एण्ड बी० का लार्जेक्टिल या सिक्विल की २५ मि० ग्राम की १-२ गोलियां खिलायें और साराभाई के सिक्विल (Siquil) ०·५ से २ मि० लि० को पशु की आयु और शरीर-भार के अनुपात से मांस में सुई लगायें।

अत्यधिक वमन होकर जलाभाव (Dehydration) होने की अवस्था में एलेक्ट्राल पाउडर (Electral Powder) उचित मात्रा में विधिवत् खिलायें और डेक्सट्रोज सेलाइन ....विलयन ५०० से १००० मि० लि० को धीरे-धीरे शिरा में अन्तःक्षेपित करें।

वमन के लिए निम्नलिखित मिक्श्चर भी बहुत लाभप्रद है—एक्वामेंथा पिपरेटा १८० मि० लि०, स्प्रिट क्लोरोफार्म ३० मि० लि०, टिंचर ओपियाई ८ मि० लि०—सबको भली-भांति मिश्रित कर २ से ४ छोटे चम्मच प्रति तीन घंटे के अन्तर से पिलावें।

पाण्डुरोग या पीलिया

(Jaundice)

कारण व लक्षण—सामान्यतः पाण्डुरोग यकृत की विकृति से होता है। खराब चारा-दाना खिलाने, छूत के कुछ रोग, पाचन-क्रिया के पुराने विकार आदि कारणों से पाण्डु या पीलिया रोग हो जाता है। इसमें पशु के मुख और आँखों की झिल्लियाँ पीली हो जाती हैं। पित्तनलिका में शोथ हो जाने, पथरिया कृमियों के संचित हो जाने आदि कारणों से जब पित्त आंतों में नहीं पहुंच पाता तो वह रक्त में मिलकर समस्त शरीर में फैल जाता है, तब शरीर की पतली त्वचा या महीन झिल्ली द्वारा पीलापन प्रगट होने लगता है। इस रोग से आक्रांत होने पर पशु मटमैले रंग का गोबर करने लगता है, पेशाब पीले रंग का होता है। चारा-दाना अच्छी तरह हजम नहीं होता। कब्ज बना रहता है। भूख कम और प्यास अधिक लगती है। शरीर का तापमान कभी बढ़ जाता है, कभी सामान्य से भी कम हो जाता है। पशु सुस्त रहता है। त्वचा में झुर्रियां पड़

जाती हैं। वह प्रतिदिन दुर्बल होता चला जाता है। समय पर उचित चिकित्सा न करने पर पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—मेगसल्फ या एप्सम साल्ट का विरेचन देना बहुत लाभप्रद है। यकृत स्थान पर गर्म सेंक और नर्मी से मालिश करें।

हिमालया ड्रग का लिव–५२ पाउडर या लिवेटी या वेलिलिव पाउडर उचित मात्रा में चारा के साथ खिलायें।

एलोज (एलया) १ ड्राम और केलोमल ३ ग्रेन की एक गोली बनाकर सुबह-शाम ३-४ दिन तक देना बहुत लाभप्रद है।

एम० एण्ड बी० का मिफेक्स (Mifex) या एम० बी० का केल्बोरल या ग्लुसीन (Glucine) या डेक्सट्रोज २५% का १०० से ३०० मि० लि० की बड़े पशुओं को शिरा में सुई लगायें।

छोटे पशुओं को कैल्सियम सैण्डोज विथ विटामिन सी १० मि० लि० का शिरा में इन्जेक्शन लगायें।

ग्लैक्सो के लिवोजेन या साराभाई के बेलामील या टी० सी० एफ० लिवर एक्सट्रेक्ट ५ से १० मि० लि० बड़े पशु को तथा २ मि० लि० छोटे पशु को मांस में सुई लगायें।

ग्लूकोज और केल्शियम ग्लूकोनेट का शिरा में इन्जेक्शन लगायें, जिससे यकृत कोषिकायें सक्रिय और सबल हो जायें।

हिपजामोन का शिरा में इन्जेक्शन लगाना भी बहुत लाभप्रद है। मेथिओनीन, विटामिन बी काम्प्लेक्स आदि खिलाना भी लाभदायक है।

लिव–५२ ड्राप्स और टिकिया कुत्ता और बिल्ली को एक छोटा चम्मच प्रतिदिन दो बार भोजन के साथ दें। बड़े पशुओं को Livogen या Belemyle या Bulsanil का १० मि० लि० इन्जेक्शन मांस में लगाना लाभप्रद है।

आँतड़ियों की शोथ

(Inflammation of the Bowels)

कई प्रकार के कृमियों, खराश-उत्पादक चारा खाने, पाचन-क्रिया के विकार, विषैली चीजें खा जाने, बहुत-से संक्रामक रोगों के प्रभाव से पशु की आँतों में शोथ उत्पन्न हो जाती है।

लक्षण—पशु को अत्यन्त कष्ट और व्याकुलता रहती है। पेट में सदैव धीमी-धीमी पीड़ा रहती है। कभी-कभी शूल तीव्र हो जाता है। कुछ पशुओं को कब्ज हो जाता है और कुछ को दस्त आते हैं। पशु का पेट फूल उठता है। वह चारा नहीं खाता। प्रायः पेट में गुड़गुड़ाहट रहती है। तीव्र अवस्था में ज्वर हो जाता है और मूत्र बन्द हो जाता है।

चिकित्सा—प्रत्येक सम्भव यत्न से मूल कारण को दूर करने का प्रयास करें। पशुओं को माँड़ या दलिया जैसे तरल आहार दें। रोग तीव्र हो जाए तो भोजन कतई न दें।

कब्ज होने पर आयल रिसीनी और लिक्विड पैराफीन दोनों आधा-आधा पिंट गाय, बैल और घोड़े को पिलायें। अतिसार और तृषा में बी० आई० कं० का ग्लूकोज सेलाइन या नार्मल सेलाइन ५०० से १००० मि० लि० का शिरा में इन्जेक्शन लगायें।

पेनिसिलीन और स्ट्रेप्टोमाइसिन मिलाकर इन्जेक्शन लगायें। टिंचर कैटेचू, क्लोरोडिन और स्प्रिट क्लोरोफार्म प्रत्येक ½ औंस मिश्रित कर ऐसी एक मात्रा एक पिंट माँड़ में घोलकर दिन में दो दिन पिलायें।

पल्व कैटेचू और पल्व क्रीटा प्रिप० ३०-३० ग्राम मिलाकर एक मात्रा बड़े पशुओं को तथा पल्व क्रीटा प्रिप० १० ग्राम तथा पल्व कैटेचू १५ ग्राम एक में मिलाकर बछड़े को नित्य दो बार एक पिंट माँड़ में घोलकर पिलायें। या—

कैओलिन ३० ग्राम, एसिड टैनिक १५ ग्राम तथा पल्व जिंजर १५ ग्राम एकत्र मिलाकर बड़े पशु को प्रति १२ घण्टे के अन्तर से माँड़ में खिलायें। या—

टिंचर कैटेचू, टिंचर ओपियाई, टिंचर जिंजीबेरिस प्रत्येक ३०-३० ग्राम २५० मि० लि० पानी में मिलाकर प्रतिदिन एक-दो बार पिलायें।

साराभाई का स्टेविलन ग्रेन्यूल्स या हैक्स्ट का होस्टा साइक्लिन सोल्युबल पाउडर अथवा फाईजर का टेरामाइसिन घुलनशील पाउडर २५ से ३० ग्रा० प्रतिदिन तीन दिन तक दें।

कृमियों से उत्पन्न आंत्रशोथ में फाईजर का वर्मेक्स (Vermex) या सायनेमिड का वर्बन (Verban) और सायने० के कैरिसीड को यथोचित मात्र में दें।

कैनाइन टाइफस से उत्पन्न आंत्रशोथ में लाल दवा १ : २५०० के लोशन से आमाशय प्रक्षालन करना तथा विटामिन बी$_2$ और पेनिसिलीन का प्रयोग लाभदायक है।

फाईजर के प्रोनापेन ५ से १० लाख यूनिट की सूई मांस में प्रतिदिन लगायें तथा टी० सी० एफ० के रिबोफ्लेविन की १० टिकिया प्रति छः घण्टे बाद पानी से खिलायें।

आँतों का क्षय शोथ

(Johnes Disease)

राजयक्ष्माजन्य आंत्रशोथ को उर्दू में अंतड़ियों का तपेदिक और अंग्रेजी में पैराट्यूबरकुलोसिस या पैराट्यूबरकुलस कहते हैं।

यह रोग एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं के संक्रमण से उत्पन्न होता है।

लक्षण—प्रारम्भ में पशु को नित्य कई बार पतले दस्त आते हैं। जबड़ों के नीचे सूजन आ जाती है और पशु निर्बल हो जाता है। रोग की वृद्धि होने पर पशु को अधिक पतले दस्त आने लगते हैं तथा दस्त बन्द करने की किसी औषधि से कोई लाभ नहीं होता। मल फेन आमयुक्त होता है। ज्वर नही रहता, किन्तु प्यास अधिक लगती है। पशु के शरीर में रक्ताल्पता हो जाती है। उसे अधिक थकान तथा जलाभाव हो जाता है। कुछ समय पश्चात् पशु के स्वास्थ्य

में सुधार दिखाई देता है, किन्तु यह स्थायी नहीं होता। उपचार न करने पर रोग-वृद्धि होकर पशु मर जाता है।

सुरक्षा—रोगाक्रांत पशु के साथ रहने वाले सभी पशुओं को जोन्स बेंसिली के जीवित कल्चर में सस्पेन्सन ५ से १० मिग्रा० का त्वचा में इन्जेक्शन लगायें। स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें। पशुओं को संतुलित और पौष्टिक आहार दें। चारा-दाना ताजा, सुपाच्य, सभी विटामिनों से युक्त तथा खनिज लवणों और तत्वों से पूर्ण हो। पशु को सदैव स्वच्छ उन्मुक्त हवा में रखें। रुग्ण पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें।

चिकित्सा—टी एम-५ फीड सप्लीमेंट चारा-पानी के साथ खिलायें। सुबह-शाम आइप्रोनेक्स की टिकिया खिलायें।

विटामिक्स-एम (Vitamix–M) ५ ग्राम नित्य चारा में मिलाकर खिलाते रहें।

डेज कं० का इण्टेरोस्ट्रेप (Interostrep) २ केपसूल चारा के साथ प्रति ६ से ८ घण्टे बाद दें।

साराभाई का एम्बीस्ट्रीन या मर्क कं० का मस्ट्रेप का १ स्टेराइल पाउडर परिश्रुत जल में २·५ मिलि० में घोलकर मांस में नित्य सूई लगायें।

रुग्ण पशु को काम्बायोटिक वेटरीनरी (Combiotic Veterinary) (फाइजर निर्मित) ½ से १ ग्राम का मांस में इन्जेक्शन प्रतिदिन लगायें।

छोटे पशुओं को ½ मात्रा तथा पीने के लिए इण्टेरोस्ट्रेप सस्पेन्शन के २ से ३ छोटे चम्मच दिन में दो-तीन बार दें।

श्वास-संस्थान के सामान्य रोग
(Diseases of the Respiratory Organs)

जुकाम या सर्दी
(Colds)

तीव्र धूप-ताप के पश्चात् तुरन्त शीतल जल पी लेने या वर्षा में बहुत देर भीगने और ठंडी हवा लगने आदि कारणों से पशु को सर्दी-जुकाम हो जाता

है। पशु की नाक से जलस्राव होता और उसे बार-बार छींकें आती हैं। नाक की भीतरी झिल्ली लाल हो जाती है। २-३ दिन के बाद जुकाम पकने पर नाक से गाढ़ा कफ आने लगता है। पशु खांसता, साँस लेने में कष्ट होता है। कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है। पशु खाना-पीना छोड़ देता है।

चिकित्सा—किसी चौड़े मुख के बर्तन—बाल्टी, भगोने आदि में पानी खौलाकर उसमें थोड़ा तारपीन का तेल डालकर पशु को निर्वात बन्द स्थान में खड़ा करके उसके नाक, मुख में भाप दें। किन्तु सतर्क रहें कि पशु कहीं गर्म पानी में मुंह न डाल दे।

तारपीन का तेल और अलसी का तेल मिलाकर छाती पर मलें तथा ऊपर से रुई के गरम फाहों से सेक करें। इससे जुकाम-खाँसी दोनों में लाभ होता है।

इण्डियन हर्ब्स का केफलीन १५ से २५ ग्राम तथा क्रूक्स कं० का क्रोसिन २ टिकिया एकत्र मिलाकर शीरे या गुड़ में अवलेह बनाकर नित्य २-३ बार चटायें।

हैक्स्ट का नेवालजिन ५ से १० टिकिया या कोसाविल (Cosavil) २-४ ड्रेगी या रोश का सेरिडान (Saridon) २ से ४ गोली दिन में दो बार खिलायें। Oxalgin Bolus (Cadila) का एक-एक गोली सुबह-शाम, Avil 50 mg. Tab. (Hoescht का) ५-५ गोली सुबह-शाम अति उत्तम दवा है।

———

गायों की सर्दी

(Catarrh of Oxens, Cow)

अचानक ठंड लग जाने, वर्षा में देर तक भीगने, तर भूमि में रहने आदि कारणों से प्रायः गायों को सर्दी-जुकाम हो जाता है।

लक्षण—नाक और आंख से जलस्राव, भूख न लगना, जुगाली कम करना, गाँठों का कड़ापन, कब्ज या अतिसार, रोग की तीव्रता में ज्वर हो जाना, दूध कम हो जाना आदि।

सुरक्षा—गायों को ठंडे और नमीवाले स्थानों में न रखें। गाय के बांधने का स्थान ऊपर खुला न हो—छत या छप्पर हो। नम भूमि में घूमने-फिरने न दें। वर्षा में पशु को बाहर बाँधकर भीगने न दें। धूप में काफी देर तक रखने के बाद तुरन्त ही शीतल जल न पिलायें।

चिकित्सा—रोश कं० का रिडोक्सोन (Redoxon) ५ से १० गोलियां प्रतिदिन चारा में मिलाकर खिलायें। या एक एम्पूल का मांस, त्वचा या शिरा में प्रतिदिन इन्जेक्शन लगायें। बी० डब्लू० कं० का वेसीलाक्स (Vesylox) गाय के नथनों में ३-४ बूंद दिन में ३-४ बार डालें।

एंग्लो फ्रेंच ड्रग का एस्कोर्बिक एसिड ४ से ८ गोलियाँ प्रतिदिन चारा में मिलाकर खिलाय।

ए० एफ० डी० का कांडाइलेक्स (Codylex) बछड़े को २ से ४ छोटे चम्मच तथा गाय को ४ से ८ छोटे चम्मच ४-४ घण्टे बाद खिलायें।

सेरिडान या नोवालजिन २ से ४ गोलियाँ दिन में दो बार खिलायें। हिस्टामीनजन्य कफ-सर्दी में हैक्स्ट का होस्टाकार्टिन एच १० मिलि० की त्वचा में प्रतिदिन सूई लगायें और एनासिन की २ गोलियाँ खिलायें।

अनुर्जताजनित कफ सर्दी में एम० एण्ड बी० कं० का एन्थिसाल ५% विलयन का १० से २० मिलि० का इंजेक्शन मांस में प्रतिदिन लगायें।

Oxalgin Bolus	१—१ गोली सुबह-शाम
Avil 50 mg.	५-५ गोली सुबह-शाम
Terramycin Bolus या	४-४ गोली सुबह-शाम
Sicolin Bolus या	,, ,,
Wolctrini Bolus या	१ गोली सुबह शाम
Antima 2 : 4 Bolus या	,, ,,
Oriprim Bolus या	,, ,,
Sulcojorin Bolus	,, ,,

खांसी
(Cough)

प्रायः शीत, ताप, आंच, हवा से फेफड़ों में धूल, धुआं जाने, कभी-कभी फुफ्फुस-नलिका में कृमि संचित हो जाने से उसमें शोथ या खराश पैदा हो जाने, यदा-कदा श्वासनली में दवा या खाद्य-पेय वस्तु प्रविष्ट हो जाने, नजला, इन्फ्लुएन्जा, सर्दी आदि कारणों से पशु को खांसी आने लगती है। छोटे पशु-शावकों, बछड़ों, पड़ा-पड़ियां, भेड़-बकरियों को घास चारे के साथ छोटे-छोटे कीड़े पेट में चले जाने तथा कभी-कभी बरसात के पानी में देर तक भीगने से सर्दी लग जाने से भी खांसी आने लगती है। इस रोग में प्रायः दुधारू पशु, भेड़-बकरियाँ और घोड़े पीड़ित होते हैं।

लक्षण—आरम्भ में पशु को सूखा ठसका या घांस उठती है तथा सांस लेने में कठिनाई होती है। गले से सांय-सांय शब्द होता है। फिर कफ उत्पन्न होकर तर खांसी आती है। खांसी के साथ अन्य लक्षण कारणों की दृष्टि से पाये जाते हैं। खांसी होना एक लक्षणमात्र है, जो नजला, इन्फ्लुएन्जा, प्लूरिसी, निमोनिया, सर्दी आदि से होती है। नाक से स्राव होता है या सूखी खांसी आती है। यदि पशु खांसने से पहले कराहे तो उसका सारा शरीर खांसने से कांपने लगता है। कभी-कभी खांसी से घोड़े का दम घुटता जान पड़ता है। उसको कै हो जाती है। मांस सूख जाता है तथा त्वचा पसलियों में घुस जाती है। रात को जब वह लेटता है तो खांसते-खांसते उसका कष्ट बढ़ जाता है।

खांसी के साथ नाक से दुर्गन्धित श्लेष्मा निकलता है।

चिकित्सा—जिस मूल कारण से खांसी आती हो, उसे पहले दूर करें।

एलेम्बिक कं० का ग्लायकोडिन टर्प वसाका २ से ४ चम्मच ४-४ घण्टे बाद पिलायें।

एलार्सिन का टी० टोन २ गोलियाँ दिन में दो बार एक सप्ताह खिलायें। कैटल रेमेडी कं० का कैटकफ २५ ग्राम प्रतिदिन दो बार दें तथा इण्डियन हर्ब्स का कैफलान कफ पाउडर ३० ग्राम दिन में दो बार दें।

पार्क डेविस का बेनाड्रिल २ छोटे चम्मच प्रतिदिन दो बार एक सप्ताह दें।

बी०वी० बी० का कफगान पाउडर बड़े पशु को २५ से ३५ ग्राम, बछड़े को १० से १५ ग्राम तथा भेड़-बकरी व सुअर को १० से २० ग्राम एवं कुत्ते को २ से ५ ग्राम शीरे या गुड़ में अवलेह बनाकर दिन में तीन बार चटायें।

सूखी खांसी और संक्रामक खांसी में सायनेमिड की औरियोमाइसिन १-२ ओब्लेट्स या औरियो सोल्यूबल को पेयजल में २ छोटे चम्मच १० लीटर जल में मिलाकर सुबह-शाम दें तथा एक्रोमाइसिन (Achromycin) लेडरली कं० का २ से ४ मिग्रा० प्रतिकिलो शरीरभार के अनुसार प्रतिदिन मांस में गहरी सुई लगायें।

प्लूरिसी या निमोनिया की खांसी में टेरामाइसिन टेब्लेट्स खिलायें, टेरामाइसिन का इन्जेक्शन लगायें अथवा टेरामाइसिन लिक्विड १० से ३० मि० लि० का इन्जेक्शन लगायें।

दूसरे प्रकार की खांसी तथा ब्रांकोनिमोनिया में सायनेमिड का सल्मेट (Sulmet) २·५ ग्राम को एक टिकिया प्रति २५ किलो शरीर भार के अनुपात से पहले दिन तथा दूसरे दिन दें।

न्यूमोनिया की तीव्र दशा में सलमेट २५%सॉल्यूशन की या मांस या शिरा में सुई लगायें। या Doxcne 5 ml. to 7, Vetry 3ml. to 6ml., Avil 10ml. का।

मिक्शचर—पोटाशियम आयोडाइड व अमोनियम कार्ब प्रत्येक ४-४ ग्राम, पल्व कैम्फर २ ग्राम, पल्व ग्लीसरीजी ३० ग्राम तथा गुड़ काफी—एक में मिलाकर अवलेह बनाकर घोड़े, बैल, गाय और भैंस को दिन में दो बार चटायें।

कष्टप्रद खांसी और श्वासकष्ट में निम्नलिखित मिक्सचर लाभकारी है :—

पोटाशियम आयोडाइड ४ ग्राम, एक्सट्रैक्ट बेलाडोना लिक्व० १ ग्राम, कोडीन फॉस्फेट ०·५ ग्राम, पल्व ग्लीसरीजा ३० ग्राम तथा गुड़ पर्याप्त मात्रा में लेकर एक

में मिलाकर अवलेह बनाकर दिन में दो बार पशु को चटावें। कुत्ते और बिल्ली की खांसी में निम्नांकित मिक्श्चर लाभप्रद हैं—

टिंचर कैम्फर कंम्पा० २ मि० लि०, पोटाशियम आयोडाइड ०·५ ग्राम, टिंचर सिल्ला २ मिलि, ।९७८ अमो० एटोमेटिक ३ मिलि०, सीरप वसाका ५ मिलि० तथा पानी २० मिलि० सबको एकत्र मिश्रित कर २ छोटे चम्मच दिन में २ बार दें।

हिस्टामीन-जन्य सर्दी, कफ, श्वास

(Histaminic Respiratory Disease)

हिस्टामीन के कारण उत्पन्न सर्दी, कफ-विकार और श्वास, पशु की श्वास-नलिका में ऐंठन, श्वास लेने में कष्ट, फुफ्फुसों में पीब तथा श्वसननलिका में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। यह रोग कुत्ते, बिल्लियों को अधिक और अन्य पशुओं को बहुत कम होता है।

चिकित्सा—हिस्टामिन विरोधी निम्नांकित दवायें उपयोगी हैं—

पोलारैमीन, एविल, कार्टास्मील, सेलेस्टैमीन इत्यादि में किसी एक दवा की १ से ५ गोलियाँ पशु के अनुसार दिन में दो बार खिलाना लाभप्रद है।

एम० एण्ड बी० कं० के फेनारगन या ईवन्स के एवील का ५ प्रतिशत विलयन १५ से २० मिलि० की मात्रा में बड़े पशु को मांस में तथा कुत्ते, बिल्ली को ०.५ से १ मिलि० मांस में सुई लगावें।

हैवस्ट के होस्टाकार्टिन एच की १० मिलि० की मात्रा में बड़े पशु को तथा १ मिलि० की सुई कुत्ते, बिल्ली को लगायें।

कुत्ते बिल्ली को डेकाड्रान २ मिलि० ग्राम की मांस में सुई लगायें।

एम० एण्ड बी० का एन्थिसान ५% विलयन १० से २० मिलि० की सुई बड़े पशु को मांस में तथा कुत्ते को २.५% विलयन की १ से ५ मिलि० की मात्रा में मांस में सुई लगायें।

साराभाई का बेटालाग २ से ५ मिलि० या ग्लैक्सो के वेटनेसाल की २ से ४ मिग्रा० की सुई कुत्ते को त्वचा में लगायें।

हैक्स्ट के एविल की १० मिलि० की मात्रा में बड़े पशु को तथा कुत्ते को ०.५ मिलि० की सुई मांस में लगायें।

घोड़ों की सर्दी

(Catarrh of Horses)

वायुमण्डल में अचानक परिवर्तन हो जाने, शरीर गर्म होने पर, शीत में खड़ा रहने, वर्षा में भीग जाने तथा उत्तरी-पश्चिमी हवा के झोंके अधिक समय तक लगने से घोड़ों को सर्दी लग जाती है।

लक्षण—रोग के प्रारम्भ में ज्वर, नाक में शोथ, जुकाम, अधिक छींकें आना, व्याकुलता, जीभ पर गाढ़ा चिपका कफ के साथ पशु सुस्त, तन्द्राग्रस्त-सा, नाक से पतला या गाढ़ा स्राव, नाक में कफ का जमाव, मुख सूखा हुआ-सा लगता है। झटके के साथ सूखी खाँसी, नाक के कफ की कड़ी पपड़ी, श्वास लेने में कष्ट, खाँसी, नाक से हरा दुर्गन्धित स्राव, बार-बार छींके आना घोड़े की सर्दी के लक्षण हैं।

चिकित्सा—हैक्स्ट कं० के कोसाविल की १ गोली तथा ग्लैक्सो कं० के सेलिन ५०० मिग्रा० की आधी गोली मिलाकर ऐसी एक मात्रा गुड़ के साथ नित्य दो बार खिलायें।

इण्डियन हर्ब्स कं० के केफलीन को २० से ३० ग्राम, क्रूक्स के क्रोसिन की दो गोलियाँ एक में मिलाकर शीरे या गुड़ में अवलेह बनाकर प्रतिदिन दो-तीन बार चटाना लाभप्रद है।

टेरामाइसिन या स्टेकलीन या औरियोमाइसिन की १५ से ३० मिलि० का इंजेक्शन गहरे मांस में प्रतिदिन लगाना बहुत गुणकारी है।

टेरामाइसिन ओब्लेट्स २ या ४ अथवा टेरा० लिक्विड ३० मिलि० प्रतिदिन खिलाना और विटामिन्स बी कम्प्लेक्स यथोचित मात्रा में खिलायें।

विटामिन सी अधिक मात्रा में खिलाना भी लाभप्रद है।

इसके अतिरिक्त एक्रोमाइसिन इंजेक्शन तथा सल्फेट का प्रयोग भी बहुत लाभप्रद है।

पशु का कठिन सर्दी-जुकाम
(Rosine Malignant Catarrh)

यह वाइरस के संक्रमण एवं छूत से प्रसारित होनेवाला पशुओं का एक जटिल रोग है।

श्वसन-संस्थान के बाह्य अंगों में श्लैष्मिक प्रदाह, कफ संचय, ज्वर, कैरेक्टो कंजक्टी वाइरस, गेस्ट्रो इन्टेराइटिस, इनसेफेलाइटिस, लिम्फनोड की वृद्धि और क्यूटेनियस एक्जेस्थीमा आदि लक्षण दीखते हैं। यह रोग प्रायः शीतलामाता (Rinder Pest) के समान होता है। इसमें लगभग ५० प्रतिशत पशु रोगाक्रान्त होते हैं और २५ से ५० प्रतिशत पशु मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। नाक से यूप-तुल्य कफ निकलता है, भयंकर श्वासकष्ट होता है, आँख से कीचड़ निकलता है, आँखों की पलकों में शोथ हो जाती है। निश्चयात्मक निदान के लिए लिम्फनोड, मस्तिष्क, यकृत और अन्ननलिका की हिस्टोपैथोलाजी जाँच करानी चाहिये।

सुरक्षा—रुग्ण पशु को अन्य पशुओं से अलग हटा दें। कोई इन्जेक्शन न लगवायें।

चिकित्सा—लक्षण के अनुसार एण्टीबायोटिक तथा सल्फा ड्रग का प्रयोग करना चाहिए।

बाह्य श्वसननलिका-संक्रमण

(Apper Respiratory Tract Injections)

श्वासनलिका के ऊपरी भाग के संक्रमण के रोग जैसे—श्वास-प्रणाली-प्रदाह (Trachitis), स्वरयंत्र-प्रदाह (Laryngitis), नासा-छिद्र-प्रदाह (Rhinitis)-कास (Bronchitis) आदि को निम्नलिखित औषधियों से चिकित्सा करना विधेय है—

फाईजर कं० के प्रोनापेन या साराभाई के क्रिस-फोर या हैक्स्ट के ओम्नासिलीन में किसी एक का २० से ४० लाख अ० इ० का इन्जेक्शन बड़े पशु को तथा ४ से ८ लाख अ० इ० का इन्जेक्शन छोटे पशु को मांस में नित्य ३ से ६ दिन तक लगायें।

एक बाल्टी उबलते हुए पानी में टर्पेन्टाइन आयल (तारपीन का तेल), या टिंचर बेन्जोइन कम्पाउण्ड या युकलिप्टस आयल या कओलिन—इनमें से कोई एक ३० मिलि० भली-भाँति मिश्रित कर पीड़ित पशु के सिर को बाल्टी के ऊपर थामे रखकर पशु के सिर के ऊपर एक मोटा स्वच्छ तौलिया डालकर ढक दें और पशु को इससे निकली हुई भाफ सूंघने को बाध्य करें।

छोटे शावकों विशेशतः कुत्तों के बच्चों को अमृतांजन या विक्स वेपोरब या रवेक्स डाबर कं० का डाबरब सुंघाना चाहिए।

सल्फा डाइमेथोप्रिम वोकोर्ड कं०, एम० एण्ड बी० की, कानसेप्ट या केरिला निर्मित चिरस्थायी प्रभावशाली नवआविष्कृत सल्फा ड्रग है, जिसका प्रभाव २४ घंटे तक रहता है। इसको निम्नलिखित सल्फा औषधियों की आधी मात्रा में चटाना चाहिए तथा आधा मात्रा इन्जेक्शन द्वारा त्वचा में या शीघ्र लाभ के लिए शिरा में सुई लगाना चाहिए।

आई० सी० आई० कं० का सल्फामेथाजीन १ ग्राम प्रति ७·५० किलो शरीर-भार के अनुपात से ५ ग्राम वाली गोलियाँ या ३३ $\frac{1}{3}$ प्रतिशत शक्ति के

विलयन का प्रयोग करना चाहिए। बड़े पशु और घोड़े को पहले दिन इसकी औसतन मात्रा ३० ग्राम है।

साराभाई के सल्फा गोला ५ ग्राम या एम० एण्ड बी० के वेसाडिन ३३ ⅓% विलयन या मे० एण्ड बेकर कं० निर्मित स्ट्रिनासिन या ट्रिनामाइड ·५ ग्राम की गोली या टी० सी० एफ० कं० निर्मित विटीडीन ३३ ⅓% विलयन या एम० एण्ड बी ६९३ की ५ ग्राम की गोली या सायनेमिड के सल्मेट २५% विलयन तथा २·५ ग्राम की गोली को उपर्युक्त मात्रा में पहले दिन दें तथा दूसरे और तीसरे दिन उसकी आधी मात्रा दें।

होस्टासाइक्लिन वाटर सोल्यूवल १०० ग्राम पाउडर या रेवेरीन (Reverine) शिरावाला २५० ग्रा० का वायल (दोनों हैक्स्ट कं० निर्मित) या एक्रोमाइसिन १०० से ५०० मि०ग्राम, सायनेमिड कं० निर्मित ऑरियोमाइसिन सोल्यूबल पाउडर व स्टेराइल पाउडर के वायल ५०० ग्राम गोली के रूप में उपलब्ध में से कोई एक की २ से ५ मि०ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार प्रतिदिन दो तीन बार दें। तीव्र संक्रमण की दशा में अधिक मात्रा दें। उपर्युक्त मात्रा बड़े पशुओं के लिए है। कुत्ते, बिल्लियों को कैपसूल्स, टैब्लेट्स, इन्जेक्शन आदि कम मात्रा में दें। शेष चिकित्सा कफ, खाँसी प्रकरण में वर्णित मिक्सचर आदि दें।

साराभाई का डाइक्रिस्टिसिन या हैक्स्ट का ओम्नामाइसिन जिसके प्रत्येक २० लाख अ० इ० पेनिसिलीन तथा २·५ ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन, किन्तु म्यूनोमाइसिन में विशिष्ट बेक्टेरियल एन्टिजेन भी रहता है, इसको २० से ४० लाख अ० इ० अर्थात् १ से २ वायल्स पर्याप्त पायरोजेन फ्री डिस्टिल्ड वाटर में घोलकर प्रतिदिन मांस में सुई लगायें। चिरस्थायी लाभ के लिए वाइथ का पेनिडयूर या साराभाई या ग्लैक्सो का पेनिसिलीन इन आयल प्रति ३ या ४ दिन बाद मांस में सुई लगायें।

फाईजर कं० का टेरामाइसिन मांस या शिरा वाला इन्जेक्शन वायल्स में, लिक्विड रूप में ५०० मि०ग्राम की गोली तथा मुख द्वारा प्रयोग का सोल्यूबल पाउडर के रूप में उपलब्ध या साराभाई का आक्सीस्टेक्लिन

५० मि०ग्राम प्रति मि० लि० शक्ति का १० से ५० मि० लि० के वायल में मांस या शिरा में देने वाला इन्जेक्शन (वायल) या साराभाई का स्टेबिलन इन्ट्रामस्कुलर ५०० मि०ग्राम वाला वायल, गोली व ग्रेन्यूल्य या वोकहर्ड्ट केलिम्राइक्लिन इन्जेक्शन वायल में से किसी एक की २ से ५ मि०ग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से प्रतिदिन २-३ बार या तीव्र संक्रमण में इससे ऊँची मात्रा में देना लाभदायी है।

दमा

(Asthma)

बहुत दिनों तक अपच या खाँसी बने रहने पर, उचित चिकित्सा न करने पर या। दुर्बल या वृद्ध पशु को बहुत दौड़ाने या भारी काम लेने के कारण कास-श्वास (खाँसी-दमा) रोग हो जाता है।

दमा में पशु को जल्दी-जल्दी खाँसी तथा श्वास खींचने के कारण कोख और पेट में दर्द होने लगता है। निरन्तर कुछ देर तक खाँसी आने से पशु व्याकुल हो जाता है। कभी-कभी खाँसी के कारण कफ भी निकलता है। लेटने से खाँसी का वेग और भी बढ़ जाता है और पशु को महा कष्ट होता है। दमा फेफड़े का रोग हैं और श्वासनलिका से सम्बन्धित है। अतः किसी कारण इन अंगों में अवरोध या विकृति आ जाने पर दमा हो जाता है। इन कारणों में प्रमुख रूप से जीर्ण खाँसी, उदर-विकार, दुर्बलता तथा वृद्धावस्था आदि हैं। कभी-कभी श्वासनलिका में विजातीय और उत्तेजक (Irritating) पदार्थों के प्रविष्ट हो जाने पर भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। प्रायः श्वास का दौरा आता रहता है और कुछ मिनटों रहकर शांत हो जाता है। समुचित उपचार के अभाव में पशु अस्थि-कंकाल-प्राय होकर मर जाता है। यों यह रोग सद्य प्राणनाशक नहीं है।

इन्डियन हर्ब्स कं० का कोफलोन (Coflon) आयुर्वेदिक औषधियों से निर्मित श्वास-संस्थान के रोगों—खांसी, धसका, नये और पुराने ब्रोंकाइटिस, फुफ्फुसों में शोथ, श्वास और श्वसन-संस्थान के अन्य कष्टों को दूर करनेवाली औषधि है।

यह सूक्ष्म चूर्ण रूप में १०० ग्राम और १ किलो की पैकिंग में मिलती है। इसे २५ से ३० ग्राम की मात्रा में शीरे या गुड़ में मिलाकर दिन में दो-तीन बार दें।

बी० बी० बी० का कफगान पाउडर बड़े पशु को २५ से ३५ ग्राम, बछड़े को १० से १५ ग्राम, भेड़, बकरी, सुअर को १० से २० ग्राम० और कुत्ते को २ से ५ ग्राम शीरे या गुड़ में अवलेह बनाकर दिन में तीन बार चटाना चाहिए।

औरियोमाइसिन सोलूबल पाउडर (सायनेमिड कं० निर्मित) श्वास रोगी पशु को एक छोटा चम्मच भर दवा १० लिटर पानी या गुड़ की चाशनी में मिलाकर दें।

सिबा कं० का कोरामीन (Coramine) श्वास-मार्ग के अवरोध को दूर करने वाली, हृदय को बल देने वाली और शिरा की मंदगति को पलटाने वाली औषधि है। इसकी बड़े पशुओं—घोड़े, गाय को २० से २५ मि० लि० की तथा कुत्ते को १ से ३ मि० लि० की मांस में या धीरे-धीरे शिरा में (डेक्स्ट्रोज मिलाकर) सुई लगायें।

एम्फेटामीन (Amphatamine) घोड़े और गाय को २०० से २५० मि० ग्राम की त्वचा में तथा कुत्ते को १ से ४ मि०ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के हिसाब से त्वचा में सुई लगायें।

श्वास-अवरुद्ध होकर मृत्यु की सम्भावना

(Respiratory Failure)

श्वास अवरुद्ध होकर जब पशु मृत्यु के सन्निकट हो, मूर्छा, तीव्र आघात लग जाये तथा जब अत्यधिक बेहोश करने वाली दवा के प्रभाव से श्वास क्रिया रुकने लगे तो निम्नांकित औषधियों और उपचार का तत्काल प्रयोग करने से प्रायः निश्चित सफलता प्राप्त होती है।

चिकित्सा—इसके पहले दमा की चिकित्सा में लिखित कोरामीन या एम्फेटामीन का उसी प्रकार प्रयोग करें।

आक्सीजन और कार्बनडाई-आक्साइड का मिश्रण (आक्सीजन ९५ प्रतिशत और का० डा० आ० ५ प्रतिशत) नलिका को नासिकाछिद्रों में प्रविष्ट करके फेफड़ों में अन्तःक्षेपित करें (नास दें) तथा कृत्रिम श्वसन-क्रिया करें।

छोटे पशुओं को कृत्रिम श्वसन कराना नितान्त अनिवार्य है।

बी० आई० का कैम्फर इन आयल १० से २० मि० लि० की बड़े पशु को त्वचा में सुई लगायें।

कैफीन साइट्रेट गाय और घोड़े को १ से ४ ग्राम तथा बैल को २ से ५ ग्राम तथा कुत्ते को ५० से २५० मि०ग्राम खिलायें।

अमोनियम कार्ब तथा पल्व कैम्फर दोनों मिलाकर रुग्ण पशु को चटायें। बी० डी० एच० का माइक्रोन ड्राप्स या इन्जेक्शन प्रयोग करें।

एड्रेनालीन १ से १००० वाला विलयन का इन्जेक्शन घोड़े और गाय को २ से ४ मि० लि० का शिरा में अथवा २ से ८ मि० लि० का त्वचा में तथा कुत्ते को ०·१ से ०·३ मि० लि० की शिरा में, या ०·१ से ०·५ मि० लि० को त्वचा में सुई लगायें। ध्यान रहे कि यदि क्लोरोफार्म या क्लोरल हाइड्रेट नामक चेतनाहरण (बेहोश करने वाली) औषधि के प्रभाव से श्वास नष्ट हो रहा हो, तो एड्रेनालीन का प्रयोग कदापि न करें।

पक्षाघात

(Paralitic Myoglobinuria)

पक्षाघात, लकवा या फालिज, जिसे अंग्रेजी में पेरालाइटिक मायोग्लोबिन्यूरिया (Paralytic Myoglobinuria) और मनडे मार्निंग सिकनेस (Monday Morning Sickness) कहते हैं, बहुत ही कष्टप्रद और कष्टसाध्य रोग है। यों तो यह रोग किसी भी जाति के पशु को हो सकता है और होता है, किन्तु विशेषकर घोड़ों को यह रोग अधिक होता है।

तेज शीत-ताप या वर्षा में अधिक समय भीगने, विषैली घास आदि खा लेने, कमर पर गहरी चोट लग जाने, रीढ़ की हड्डी में सूत जैसे लम्बे कीड़े पैदा हो जाने आदि कारणों से यह रोग होता है।

अधिक सयय तक विश्राम कर लेने के बाद घोड़े का व्यायाम, फेरना आरम्भ करने के समय प्रोटीन से परिपूर्ण गरिष्ट आहार कर लेने पर विशेष कर घोड़ों में यह रोग हो जाता है।

लक्षण—इस रोग में पशु का एक ओर का अंग या पिछला भाग जड़ हो जाता है, यानी हिलता-डुलता नहीं है। मांस-पेशियाँ एकदम कठोर हो जाती हैं। वह चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है। पेशियों में पीड़ा, अत्यधिक शोथ, तीव्र गति से कष्ट से साँस लेना आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—पशु को पूर्ण विश्राम दें। उसके नीचे मुलायम बिछावन बिछा दें। उसे चलाने-फिराने का प्रयत्न न करें। जहाँ पर वह पड़ा है, उसी स्थान पर उसका उपचार करें। एक-एक घन्टे बाद उसकी करवट बदलवाते रहें।

दूध में अण्डे की जर्दी फेंट कर पिलाना लाभप्रद है।

२० बूँद क्लोरल हाइड्रेट तेल साथ एक घूँट में पिला दें।

हिस्टामिन विरोधी औषधि में एन्थिसान (Anthisan) १० से २० मि० लि० की मांस में सुई लगायें।

एम० एण्ड बी० के लार्जेक्टिल (Largectil) ५ प्रतिशत विलयन की ४ से ६ मि० लि० की मात्रा में शिरा में इन्जेक्शन लगायें। विटामिन ई का इन्जेक्शन मांस में लगायें।

थायेमीन हाइड्रोक्लोराइड ५०० मिग्रा० का इन्जेक्शन शिरा में लगायें। गर्म पानी की भाप देना भी हितकर है, किन्तु भाप बन्द स्थान में ही दें, जिससे हवा बिल्कुल न लगे।

राई को महीन पीसकर पक्षाघात-प्रभावित अंग पर लेप करना भी लाभप्रद है। राई का प्लास्टर बना-बनाया भी मिलता है।

निचले भाग का पक्षाघात

(Paraplagia)

शरीर के निचले भाग का पक्षाघात (लकवा या फालिज) जिसे अधरंग भी कहते हैं, स्नायु-विकार, अत्यन्त निर्बलता, पिछले अंगों की स्नायविक दुर्बलता, वेदना, विटामिन बी, की अत्यधिक कमी, शोथ, बरसात में पशु के देर तक भोंगने, अधिक वीर्यपात तथा अधिक सम्भोग क्रिया से इस भयंकर रोग की उत्पत्ति होती है। यह रोग गाय, भैंस, घोड़े, भेड़ और बकरियों को होता है।

लक्षण—निचला और पिछला अंग जड़सुन्न हो जाता है। पैर की मांस-पेशियाँ सूखकर पैर लकड़ी की तरह अकड़ कर कड़े हो जाते हैं। पशु लड़खड़ाकर बड़ी कठिनता से चल पाता है। किसी-किसी पशु का तापमान १०४° से १०५° फा० तक हो जाता है। एक-दो सप्ताह तक कष्ट भोगकर पशु मृत्यु का ग्रास हो जाता है।

चिकित्सा—इस रोग में थियामीन (Thiamine) यानी विटामिन बी, का प्रयोग लाभदायक है। आहार में भी ऐसी ही वस्तुएं दें, जो इस विटामिन से परिपूर्ण हों।

मर्क कं० के न्यूरोबियान ६ से १२ मिलि० को धीरे-धीरे शिरा या गहरे मांस में प्रति तीसरे दिन सुई लगायें। साथ ही न्यूरोबियान फोर्ट २-३ गोलियाँ पानी से प्रतिदिन एक बार चारा के साथ खिलायें।

ग्लैक्सो के बेरिन, रोश के बेनरवा का प्रतिदिन इन्जेक्शन लगायें।

बेविडाक्स (एल्बोर) या फ्रीज ड्राइड मैक्राबेरिन (ग्लैक्सो) का प्रतिदिन या प्रति तीसरे दिन इन्जेक्शन लगाना बहुत लाभकारी है।

रुग्ण पशु को फाईजर का मिनमिक्स या आई० सी० आई० का चर्न १५० मिनरल सप्लीमेण्ट चारा में मिलाकर प्रतिदिन खिलायें, जिससे उसकी बल-वृद्धि हो।

मर्क कं० के रेडिसाल—एच १००० माइक्रोग्राम प्रति मिलि० तक प्रतिदिन या प्रति तीसरे दिन गहरे मांस में सुई लगायें।

कुमरी
(Kumri)

कारण—फाइलेरिया या सेटारिया डिजिटेटा (Setaria Digiteta) जाति के कीटाणु इस रोग के कारण होते हैं, जो केन्द्रिय नाड़ी संस्थान (Central Nervous System) पर आक्रमण कर इस रोग की उत्पत्ति का कारण बनते हैं। इस रोग से प्रायः घोड़े ही प्रभावित होते हैं।

लक्षण—यह रोग अचानक तीव्र वेग में प्रगट हो जाता है। घोड़ा प्रायः अस्तबल में लेटा हुआ पाया जाता है। वह उठ नहीं पाता, उसके अगले पैर और पिछला भाग पक्षाघात से पीड़ित हो जाता है। इस रोग की परीक्षा लिजूका टैस्ट (Lizuka Test) से की जाती है।

चिकित्सा—सायनेमिड कं० का कैरिसिड (Caricid) १० से ८० मिग्रा० प्रति किलोग्राम शरीर-भार के अनुपात से पशु को खिलायें। साथ ही फाईजर का वर्मेक्स (Vermex) लिक्विड १० से २५ मिलि० प्रतिदिन पिलाना बहुत लाभदायक है।

बेरोज वेलकम कं० का बेनोसाइड फोर्ट (Benocide Forte) १ से २ गोलियाँ प्रतिदिन दो-तीन बार खिलाना गुणकारी है।

डीएथल कार्बमेजीन (Diethal carbamazine) १० से ८० मिग्रा० प्रति किलोग्राम शरीर भार के अनुपात से प्रयोग करना बहुत हितकर है।

बी० एस० एण्ड कं० का कार्बेलिजीन २ गोलियाँ दिन में दो बार खिलायें। एस० पी० डब्लू का फिलेरोन (Filaron) एक एम्पूल का मांस में प्रति ४-५ दिन बाद इन्जेक्शन लगायें। ग्लैक्सो का मैक्राबेरिन फ्रीज ड्राइड स्टेराइल पाउडर लकवा और जोड़ों के दर्द में अच्छा इन्जेक्शन है।

यूनी फार्बाजाल भी लाभदायक है।

बोटुलिज्म
(Botulism)

बोटुलिज्म चेष्टावाहक शिरा (Motor Nerve) के घातक पक्षाघात का रोग है, जिससे पशु, भेड़ और पक्षी पीड़ित होते हैं।

कारण—प्रोटीन तथा फास्फोरस के अभाव से बल० बोटुनिलम नामक सूक्ष्म कीटाणुओं का विष रुग्ण और दुर्बल पशुओं में संक्रमित हो जाने से इस रोग का आक्रमण होता है।

लक्षण—इस रोग में बढ़नेवाली मांसपेशियाँ क्षीण और निर्बल हो जाती हैं तथा पिछले भाग में लकवा मार देता है, जिससे पशु लंगड़ाकर चलता-फिरता है।

चिकित्सा—रोग की प्रारम्भिक अवस्था में विशिष्ट या पोलिवैलेण्ट एण्टी-टाक्सिन सीरम का इन्जेक्शन लगाना लाभदायक है। फिर पशु को विरेचन देना चाहिए, जिससे उसके उदर से सारा विष-विकार निकल जाये तथा लकवा के अन्य उपचार जो पीछे बताये गये हैं उनका उपयोग लाभप्रद है।

गठिया
(Muscular Rheumatism, Gout)

पशु के रोग में विकार उत्पन्न होकर उसकी सन्धियों में विजातीय पदार्थ संचित हो जाने से पुट्ठों तथा जोड़ों में शोथ तथा तीव्र पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। दूषित चारा-दाना खाने, एकदम तेज धूप से ठण्डे स्थान पर जाने, नमीवाले स्थान में बंधे रहने आदि कारणों से गठिया रोग हो जाता है।

लक्षण—संधियों और पुट्ठों में वेदना, संधियों पर अचानक शोथ होकर पशु चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है। व्याकुलता से करवट बदलता रहता है। कभी-कभी उसे ज्वर भी हो जाता है।

चिकित्सा—सर्वप्रथम पशु को विरेचन देना चाहिये। एतदर्थ पशु की अवस्थानुसार ५० से १०० ग्राम तक कैस्टर आयल या उचित परिमाण में मैग-सल्फ देकर उसका पेट साफ करना चाहिए।

ग्लक्सो कं० का वेरिन (Berin) टिकिया और इन्जेक्शन वायल्स के रूप में मिलता है। यह पशुओं के गठिया, सन्धिशोथ और दर्द में उपयोगी है।

ग्लैक्सो कं० का ही मेक्रावेरिन फ्रीज ड्राइडस्टेराइल पाउडर (Macraberin Freeze Dried Sterile Powder) वात के दर्द और कम्पन में अनुपम इन्जेक्शन है।

इण्डियन हर्ब्स कं० का हरबिना ठण्ड लग जाने, ज्वर हो जाने एवं गठिया में बहुत लाभप्रद है।

सुहृद गेंगी का एस्गिपाइरिन (Asgipyrin) जो इन्जेक्शन, एम्पूल तथा टिकियों के रूप में मिलते हैं, पशुओं के सन्धिशोथ, दर्द, कमर दर्द आदि में लाभप्रद है।

१ तोला कपूर को पीसकर १ छटाँक तारपीन के तेल में घोलकर इस तेल की मालिश करना लाभप्रद है।

पथ्य-परहेज—गठिया रोग में पशु को बादी, ठंडी और कफकारक वस्तु कदापि न खिलायें। सुपाच्य गरम वस्तुएँ जैसे चाय, कॉफी, गुड़युक्त गेहूँ की दलिया अदि खिलायें। मटर, अरहर, लोबिया आदि दलहनी अन्न कदापि न दें। पानी भी ठंढा न पिलाकर कुछ गुनगुना पानी पिलायें। हवा, सर्दी और वर्षा से बचाकर रखें। अधिक ठंड हो तो पशु के पास कण्डों की निघूँम आग करें।

अगले पैर का पक्षाघात
(Radial Paralysis)

पशु के अगले पैर एक या दोनों में जब लकवा मार देता है, जिससे वह चलने-फिरने और बोझ ढोने में असमर्थ हो जाता है। पशु के एकाएक गिर जाने या बहुत दिनों तक निष्क्रिय पड़े रहने से रेडियल नर्व (Radial Nerve) दबा रह जाने के परिणामस्वरूप पक्षाघात हो जाता है।

चिकित्सा—पशु के पीड़ित अंग पर लिनीमेण्ट-अमोनिया की भली-भाँति मालिश करें तथा आग से सेकें।

हैक्स्ट कं० का टोनोफॉस्फान (Tonophosphan) और वर्ड कं० के न्यूरोबियान (Neurobion) की शिरा में सुई लगायें।

हड्डी टूट जाने या स्थान-भ्रष्ट हो जाने या कण्डरा के टूट-फूट जाने या फट जाने की अवस्था में रोश कं० के वेनर्वा या ग्लैक्सो के वेरिन का पेरिन्यूरल इन्जेक्शन लगायें या फाईजर कं० के टेरामाइसिन की शिरा में सुई लगायें।

आमवात

(Rheumatism)

आम-दोष, कफ-दोष तथा वातादिक दोषों से वातवाहिनी शिराओं में विजातीय पदार्थ यूरिक एसिड आदि संचित हो जाने से सम्यक्रूपेण रक्ताभिसरण-क्रिया न होने से आमवात, गठियावात, ऊरुस्तम्भ, सन्धिवात आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

आमवात रोग हो जाने पर पशु के घुटने जकड़कर सूज जाते हैं। उसे उठने-बैठने, चलने-फिरने में कष्ट और पीड़ा होती है। पशु परिश्रम का कार्य करने में पूर्णतः असमर्थ हो जाता है तथा दिन भर शिथिल पड़ा रहता है।

चिकित्सा—हिमालया कं० का रूपालया ८ से १२ गोलियाँ घोड़े को तथा गाय, बैल, भैंस आदि को तथा १ से २ टिकिया पशु-शावकों और कुत्ते को प्रति-दिन तीन बार दो सप्ताह खिलायें।

मिक्श्चर—सोडा सेलीसिलास ३० ग्राम, पोटाशियम आयोडाइड आवश्यकतानुसार २ से ३ ग्राम तथा गुड़ पर्याप्त मात्रा में मिलाकर ऐसी एक मात्रा दिन में दो बार ४ से ६ दिन घोड़े और पशुओं को खिलावें। साथ ही उन्हें सोडियम सेलीसिलास विथ सोडियम आयोडाइड २० मि० लि० की शिरा में सुई सप्ताह में एक या दो बार लगायें।

सुहृद् गेगी का एसगीपायरिन (Esgipyrin) की १५ से २५ मि० लि० औषधि की गहरे मांस में बड़े पशुओं को तथा १ से २ मि० लि० की सुई कुत्ते को मांस में लगायें और इसी दवा की गोलियाँ यथोचित मात्रा में चारा-दाना के साथ खिलायें। इससे पीड़ा दूर होती है और आमवात की सूजन मिटती है।

तीव्र पीड़ा में हैक्स्ट कं० निर्मित नावलजिन या बेरालगन १० से २० मि० लि० की घोड़े और बड़े पशुओं को तथा कुत्ते को ०·५ से १ मिलि० की सुई मांस में लगायें तथा इन्हीं औषधियों की गोलियाँ यथोचित मात्रा में खिलायें।

एलासिन का आर० कम्पाउण्ड (R. Compound) की १० गोलियाँ घोड़े और पशुओं को तथा दो गोलियाँ कुत्ते को प्रतिदिन तीन बार १५ दिन तक खिलायें।

रिलेक्जील, स्लोन्स लिनीमेण्ट, आयोडेक्स, लिनीमेंट अमोनिया या रूमाल या क्रीम या इन्फ्रारेड कुत्ते और छोटे पशुओं को लगाकर मालिश कर सेंक करें। बड़े पशुओं को आयोडेक्स मलहम या एलिम्यान लेप लगाकर मालिश करें।

सन्धिशोथ (जोड़ों की सूजन)
(Arthritis)

आमवात प्रकरण में लिखित कारणों से ही जोड़ों में सूजन आ जाती है। पशुओं की मुख्य बड़ी सन्धियों (Joints) में बहुत सूजन और पीड़ा होती है तथा ज्वर हो जाता है।

चिकित्सा—उपर्युक्त लिखित औषधियों के अतिरिक्त निम्नांकित औषधियों का प्रयोग लाभप्रद है—

हैक्स्ट कं० का हॉस्टाकार्टिन-एच या एम० एण्ड बी० का डेकाड्रोन या [illegible]भाई के वेटालेता को १ से २ मि० लि० की सन्धि या जोड़ के कवच (कैप्सूल) में विसंक्रमण की पूर्ण सावधानी रखते हुए सुई लगायें। गन्दे नीडिल और सीरिंज का कदापि प्रयोग न करें। फेनिल बूटाजॉन इन्जेक्शन घोड़े और पशुओं को ९ से १२ मि० लि० तथा कुत्ते को २ से ३ मि० लि० मांस में १-२ दिन सुई लगायें।

सुहृद गेगी के सुमेंतिल, ट्रिएविटन या एसगीपायरीन की एक गोली दिन में दो बार ३ से ४ दिन तक दाना या चारा के साथ खिलायें।

स्नायविक दुर्बलता
(Nervous Debility)

पशु को भयभीत करने, बहुत कम या अत्यधिक परिश्रम करने, मैथुनादि से अधिक वीर्यपात हो जाने, किसी रोग में बहुत दिनों तक ग्रस्त रहने आदि कारणों से स्नायविक दुर्बलता उत्पन्न होती है।

इस रोग से आक्रांत हो जाने पर घोड़े, बैल, गाय, बकरी आदि पशुओं के स्नायु इतने दुर्बल हो जाते हैं कि वे थोड़े ही परिश्रम से थक जाते हैं। वे हताश और उदास दिखाई देते हैं। उन्हें शिथिलता, अत्यधिक थकावट, वेदना और व्याकुलता रहती है। अत्यधिक स्नायविक दुर्बलता के कारण कभी-कभी उनमें मिर्गी, हिस्टीरिया जैसे लक्षण भी दिखाई देते हैं। कभी-कभी पशु इतना उद्दण्ड और उच्छृंखल हो जाता है कि उसे वश में रखना कठिन हो जाता है। थोड़ी-सी उत्तेजना से उसके दिल की धड़कन बढ़ जाती है। साथ ही क्षुधामन्दता, कब्ज की शिकायत हो जाती है। पौष्टिक चारा-दाना से भी उसका वजन नहीं बढ़ता, बल्कि दिनों-दिन कम होता जाता है। रुग्ण पशु की शारीरिक और मानसिक अवस्था से रोग की पहचान सुविधा से हो जाती है।

चिकित्सा—एलासिन कं० के सिलेडिन की २ गोलियाँ तथा मे० एण्ड बेकर की गार्डीनल १ गोली—ऐसी एक मात्रा आवश्यकतानुसार खिलायें।

क्लोरल हाइड्रास ३० ग्राम, आयल लिनी ५०० मिलि० दोनों को १२५ मिलि० पानी में मिलाकर ऐसी एक मात्रा आवश्यकतानुसार पिलायें।

हैक्स्ट कं० का टोनोफोस्फान घोड़े और गाय को १० से २० मि० लि० की त्वचा या शिरा मार्ग में सुई लगायें। कुत्ते को १ से ३ मिलि० की मात्रा में सुई लगायें। चूँकि इस औषधि में फास्फोरस का मिश्रण है, अतः यह मोटर नर्वस क्रियाओं को उत्तेजित करने में लाभदायी है।

कैफीन साइट्रेट (Caffeine Citrate) घोड़े और पशु को २ से ४ ग्राम तथा कुत्ते को ५० से २५० मिग्रा० की मात्रा में त्वचा में सुई लगायें।

लिकर स्ट्रिक्नीन हाइड्रोक्लोराइड ४ से ८ मि० लि० की मात्रा में पिलायें। या इसका स्टेराइल सोल्यूशन का मांस में इंजेक्शन लगायें तो यह घोड़े और पशुओं की सुषुम्ना शिरा को उत्तेजित कर शक्तिशाली बनायेगी।

क्लोरल हाइड्रेट ३० ग्राम को २०० मि० लि० परिस्नुत जल में भली-भांति घोलकर धीरे-धीरे शिरा में इन्जेक्शन लगाना लाभप्रद है।

एम्फेटामीन (Amphetamine) घोड़े और पशु को १०० से ३०० मि० ग्राम की मात्रा में तथा कुत्ते को १ से ४ मि०ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से त्वचा में सुई लगायें।

एम० एण्ड बी० कं० के लार्जेक्टिल १ मि० ग्रा० प्रतिकिलो शरीर-भार के अनुपात से ६ से १० मि० लि० की मात्रा में ५ प्रतिशत वाला विलयन को पशुओं को मांस में सुई लगायें अथवा साराभाई के सिक्विल की ३ से ५ मि० लि० की मात्रा में मांस में या तीव्र अवस्था में शिरा में सुई लगायें।

इनके अतिरिक्त निम्नांकित औषधियाँ भी इस रोग में लाभप्रद हैं—एम० एण्ड बी० का कालबोरल (Calboral), मर्क कं० के न्यूरोबियान इन्जेक्शन एम्पूल तथा प्लेन एवं फोर्ट (टेबलेट्स),एरिस्टोन्यूराल (Aristoneural) १ कैपसूल प्रतिदिन दो बार करके १० दिन तक कुत्ते को तथा चौगुनी मात्रा में बड़े पशु को लाभकारी है।

हृद्-दौर्बल्य (दिल की कमजोरी)
(Weakness of Heart)

हृदय का स्वाभाविक गति से अधिक धड़कना, हृदय की क्रिया में व्यतिक्रम, अधिक परिश्रम से कष्ट बढ़ जाना, हृदय में शूल होना आदि हृदय रोग के उपसर्ग हैं।

स्नायविक दुर्बलता, पशु को प्रायः मारकर भयभीत करते रहना, अत्यधिक परिश्रम, तेज अम्ल, हृदय फैल जाने, पेट की गैस का हृदय में दबाव पड़ने आदि कारणों से हृदय कमजोर हो जाता है। यह एक घातक रोग है। हृदय जब दुर्बल हो जाता है, तो कभी-कभी अचानक मृत्यु भी हो जाती है।

मायोकार्डियम की निर्बलता जो जीर्ण रक्ताल्पता में पायी जाती है, विटामिन ई और ताम्रतत्व की न्यूनता, कुछ विष के अन्तर्ग्रहण, मुँहपका, खुरपका रोग के सूक्ष्म विषाणुओं (Virus) का प्रभाव तथा जहरबाद (Black Quarter) में हृदय की दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है।

लक्षण—पशु थोड़ा भी परिश्रम और व्यायाम करना सहन नहीं कर पाता। थोड़ा भी परिश्रम या व्यायाम हृदय की गति को अत्यधिक बढ़ा देता है। हृदय का यन्त्र से परीक्षा करने पर हृदय का भाग काफी बढ़ा हुआ प्रतीत होता है।

चिकित्सा—निम्नांकित मिक्सचर हृदय-दौर्बल्य में लाभप्रद हैं।—

टिंचर सिल्ला १५ मि० लि०, टिंचर डिजिटेलिस १० मि० लि० और पानी ६० मि० लि०—सबको एकत्र मिलाकर (यह केवल एक मात्रा है) प्रतिदिन एक बार घोड़े और पशु को ८ दिन तक पिलायें।

टिंचर नक्सवॉमिका १६ मि० लि०, टिंचर डिजिटेलिस ८ मि० लि०, टिंचर जिंजीबेरिस ३० मिलि०—तीनों को १२५ मि० लि० पानी में मिलाकर (यह एक मात्रा है) ढरके में भरकर घोड़े और पशु को नित्य-निरन्तर ८ दिन तक पिलायें।

स्प्रिट अमोनिया एटोमेटिक १·५ मि० लि०, टिंक० सिल्ला ०·५ मि० लि०, सीरप १० मि० लि०—सबको २० मि०लि० पानी में मिलाकर (यह एक मात्रा है) केवल कुत्ते को प्रतिदिन दो बार एक सप्ताह तक पिलायें।

निम्नलिखित इन्जेक्शन भी बहुत लाभदायी हैं—

डिजोटेलिन (Digitalin) को १५ से २० मिग्रा० की मात्रा की सुई घोड़े और पशुओं को त्वचा में (S. C.) या मांस में तथा कुत्ते को १ से १० मिलि० ग्राम को त्वचा या मांस में प्रतिदिन सुई लगायें।

डिजीटॉक्सिन (Digitoxin) कुत्ते को ०·१ से १ मि० ग्राम खिलायें या मांस में इन्जेक्शन लगायें।

तीव्र हृद्यावसाद
(Acute Heart Failure)

पशु का आपरेशन करते समय विशेषकर बच्चा उत्पन्न होने में कठिनाई को दूर करने के समय, श्वासनलिका के अवरुद्ध हो जाने पर, जल्दी में और बेहोश करने वाली औषधियों का प्रयोग करने या हाइपरटानिक सॉल्यूशन को शिरामार्ग में तेजी से प्रविष्ट करने में तीव्र हृदयावरोध हो जाता है।

लक्षण—सायनोसिस के कारण रक्त काला दीख पड़ता है. श्वसन-क्रिया रुकती-सी प्रतीत होती है, जिसके कारण पशु का दम घुटता-सा दिखाई देता है। नाड़ी अनियमित कभी मंदी, कभी तीव्र चलती जान पड़ती है। नेत्रों की पुतली फैल जाती है तथा त्वचा शीतल हो जाती है। हृदय की गति रुक जाने के ३ मिनट के भीतर ही मस्तिष्क का अपरिवर्तनीय विनाश हो जाता है, अतः अति शीघ्र ही उपचार करना चाहिए। इसमें रक्तस्राव का चिह्न नहीं मिलता।

चिकित्सा—हृदय के शब्द की उपस्थिति या अनुपस्थिति की तत्काल जांच करें। तत्क्षण ही बेहोश करने वाली औषधि का शिरागत विलयन प्रविष्ट करना बंद कर दें। छोटा पशु हो तो उसके पिछले भाग को ऊंचा कर दें तथा मस्तक को नीचा कर दें। श्वसन मार्ग से आक्सीजन सुंघाना आरम्भ कर दें। कृत्रिम श्वसन-क्रिया करावें। छोटे पशु के हृदय क्षेत्र पर मालिश करें।

एपिनेफ्रीन (Epinephrine) या एड्रेनालीन (Adrenaline) का १:१००० शक्ति विलयन की १ मि० लि० की मात्रा में हृदयपेशी के अन्तर्गत (I. C.) इन्जेक्शन लगायें।

एलर्जी (विकल दशा)

(Allergic Condition)

तीव्र धूप, बर्रे-मधुमक्खी, बिच्छू, डांस आदि विषैले कीटों के काटने से प्रभावित होकर, कोई विषैली घास आदि खा लेने, वैक्सीनों और एण्टीबायोटिक दवाओं तथा सल्फा ड्रग्ज इत्यादि के अधिक प्रयोग—एलर्जी के कारण होते हैं। सभी पशु इस कष्टप्रद व्याधि से प्रभावित हो सकते हैं, किन्तु घोड़े प्रायः इससे पीड़ित होते हैं।

लक्षण—यह व्याधि उत्पन्न हो जाने पर पशु व्याकुल और अशांत रहता है। उसके समस्त शरीर में विकट खुजली होती है और ददोरे पड़ जाते है। तीव्र अवस्था में पशु खुजलाते-खुजलाते बेचैन हो जाता है। शरीर के विभिन्न भागों

पर विशेषतया नाक, कान, पलक और थन इत्यादि में हल्की-हल्की शोथ आ जाती है। प्रायः भूख नष्ट हो जाती है।

चिकित्सा—आई० सी० आई० कं० का लारेक्सेन (Lorexane) १ प्रतिशत वाला क्रीम या लोशन पीड़ित अंग पर मलें। लोशन के एक भाग को ९ भाग पानी में मिलाकर ही मलें।

सिबा कं० का पाइरीवेन्जामीन (Pyribenzamine) का २ प्रतिशत वाला सॉल्यूशन २५ से ३० मि० लि० तक शिरा में इन्जेक्शन द्वारा प्रतिदिन कुछ समय तक प्रयोग करायें।

मे० एण्ड बेकर का एन्थीसान (Anthisan) :१० मि० लि० वाला इन्जेक्शन लगाना भी लाभप्रद है। इसके लिए फेनरगन (Phenergan) ५ मि० लि० वाला इन्जेक्शन भी प्रयोग किया जाता है या ऐवील का :१० एम० एल० लगाया जाना लाभप्रद है।

आक्रान्त भागों पर जिंक ग्राक्साइड, केल्शियम कार्बोनेट २५—२५ ग्राम, ओलिक एसिड २½ ग्राम, अलसी का तेल २५० मिलि०, लाइम वाटर (चूने का पानी) १०० मिलि सबको एकत्र मिलाकर लगायें।

सिबा की एण्टीस्टीन प्रिवीन (Antisetine Privine) पशु के नथुनों में ५-७ बूंद टपकावें या मर्क कं० का प्रोथ्रिसिन (Prothricin) नाक मे १-२ बूंद-टपकायें।

बिन्थ्राप का नियोसिनेफ्रीन (Neo-Syniphrine) पशु की नाक में बूंद-बूंद डालें।

आई० सी० आई० कं० का टेटमासाल विलयन के एक भाग को .१० भाग गर्म पानी मे मिलाकर खुजली से पीड़ित स्थान पर लगायें। इसे ब्रश से लगाना चाहिये। यदि टेटमासाल साबुन और ब्रश से खुजली के स्थान को साफ करके इसे लगाया जाय, तो अधिक अच्छा है। इण्डियन हर्ब्स का हिमेक्स मलहम पीड़ित स्थान पर दिन में १-२ बार लगायें।

शीतपित्त (पित्ती उछलना)
(Urticaria)

जिस प्रकार कभी-कभी मनुष्य को शीतपित्त, सिरपित्ती या पित्ती उछलने का रोग हो जाता है, वैसे ही पशुओं को कभी-कभी यह अनुर्जताजन्य चर्म शोथ का रोग हो जाता है। पिछले प्रकरण में वर्णित एलर्जी से मिलता-जुलता यह रोग है। इसमें शरीर पर स्थान-स्थान पर चकत्ते (ददोरे) हो जाते हैं, जिनमें जोर की खुजली और जलन होती है।

यह व्याधि पित्त के आधिक्य और रक्त की उष्णता के कारण उत्पन्न होती है। सामान्यतः यह रोग पाचन-क्रिया की गड़बड़ी में ठंड लगने या पित्त न निकलने से, अजीर्ण, अग्निमांद्य और कब्ज होने से, जरायु का कोई रोग होने से, बर्र, मधुमक्खी, खटमल आदि के काटने और किसी भी प्रकार का वातरोग होने से हुआ करता है।

लक्षण—जब पित्त रक्त में मिलकर त्वचा के नीचे पहुँचता है, तो वहाँ पर खुजली उत्पन्न कर देता है और त्वचा के ऊपर ददोरे पड़ जाते हैं। इनमें तेज खुजली और जलन होती है। पशु छटपटाता है और सींगों, खुरों, पेड़, दीवाल आदि से रगड़-रगड़ कर खुजलाता है। इसी को सिरपित्ती या पित्ती उछलना कहते हैं। पित्ती के चकत्ते बार-बार मिटते और उछलते रहते हैं।

चिकित्सा—सर्वप्रथम पशु के शरीर से पित्त के प्रबल वेग को निकालने के लिए कैस्टर आयल या मैगसल्फ का विरेचन दें।

मे० एण्ड बेकर की फेनारगन क्रीम या हैक्स्ट का कैम्बिसान मलहम दिन में तीन-चार बार शरीर पर मलें। इसके साथ ही एण्टीहिस्टामीन औषधियों—साराभाई के वेरालाग या हैक्स्ट के एविल या होस्टाकार्टिन—एच या ग्लैक्सो के वेटनीसाल या मर्क के डेकाड्रोन आदि किसी एक की सूई लगावें।

अत्यधिक खुजली दूर करने के लिए जाइलोकेन मलहम या हिमालया निर्मित वेजोकार्ट मलहम का लेप करें तथा साराभाई के सिक्विल या एम० एंड बी० के लार्जेक्टिल का यथोचित मात्रा में मांस या शिरा में इन्जेक्शन लगावें।

गेरू और शहद १०-१० तोला मिश्रित कर ढरके से पिलाना बहुत लाभप्रद है। इस रोग में गेरू खिलाना और लगाना बहुत लाभप्रद है। गुड़ और गेरू आटे में मिलाकर गुलगुला बनाकर खिलायें।

ओस, शीतल वायु से बचाव करें। कम्बल उढ़ायें। पानी गुनगुना या ताजा पिलायें।

पेरिफेरल सर्कुलेटरी फेल्योर

(Peripheral Circulatory Failure)

संज्ञाहीनता या शोफ से शिरागत रक्तप्रवाह-क्रिया अवरूद्ध हो जाना, कैल्सियम की अत्यन्त कमी हो जाने से दूध का ज्वर (Milk fever) हो जाना, अत्यधिक रक्तस्राव और जलाभाव (Dehydration) में रक्तवाहिनीगत रक्त का आयतन कम हो जाना आदि इस रोग के कारण हैं।

लक्षण—अत्यन्त दुर्बलता, तापक्रम सामान्य से भी बहुत कम हो जाना, हृदय का तीव्र किन्तु बहुत क्षीण, अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी, त्वचा शीतल तथा श्लेष्मिक-कला पीली, श्वसन क्रिया बढ़ जाना किन्तु छिछला होना, मूर्च्छा, रह-रह कर आक्षेप आना आदि।

चिकित्सा—स्पष्टरूप से पता लगा लेना चाहिये कि यह अवस्था वासोडाइलेशन (Vasodilation) के कारण है या घटे हुए सर्कुलेटरी ब्लड वोल्यूम के कारण है। जिस प्रकार हो तत्काल वैसी व्यवस्था करनी चाहिए।

शिरा में एड्रेनालीन के १:१००० शक्तिशाली औषधि २ से ४ मि० लि० की मात्रा में सूई लगायें। यदि वासोडाइलेशन हो, तो जलाभाव को दूर करने के लिए तथा सर्कुलेटरी ब्लड वोल्यूम (अर्थात सी० बी० बी०) को सम्यक् रूप में लाने के लिए गर्म किया हुआ डेक्स्ट्रोज सेलाइन या रक्त ट्रान्सफ्यूजन विधि से शिरा में अन्तर्क्षेपित करें।

सतर्क रहें—सर्कुलेटरी ब्लड वोल्यूम के कम होने पर एड्रेनालीन का प्रयोग कदापि न करें, अन्यथा रक्तवाहिनी नलिका संकुचित हो जायगी और रक्त का

प्रवाह भी बाद में रुक जायेगा। इस प्रकार रोग की स्थिति में हृदय को उत्तेजित करने वाली औषधियों का कोई महत्व नहीं है।

क्षणस्थायी ज्वर

(Ephemeral Fever or Three Days Sickness)

ज्वर के वाइरस कीड़ों के माध्यम से पशुओं में इस रोग की उत्पत्ति होती है। रुग्ण पशु दिनोंदिन अत्यधिक दुर्बल होता चला जाता है।

लक्षण—अचानक बहुत तीव्र ज्वर हो जाता है। क्षुधामंदता, पेशियों का कठोर हो जाना तथा अंगों का लँगड़ा जाना (एक या दोनों अंगों में) आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। पशु तीसरे या चौथे दिन स्वस्थ हो जाता है। ज्वरावस्था में खुली हवा और ठंड लगने से द्वितीयक बैक्टेरियल न्यूमोनिया जैसे उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। तीन दिन बाद पूर्ववत् स्वस्थावस्था में आने के कारण ही इसे 'तीन द्विवसीय ज्वर' (Three Days Fever) कहते हैं।

चिकित्सा—भारतीय बूटी भवन का फ्लूहरेक्स दो कैपसूल बड़े पशु को तथा एक कैपसूल बछड़े और छोटे पशु को गुड़ के अन्दर भर कर खिलायें। इण्डियन हर्ब्स का हरबिना दो कैपसूल चारा के साथ मिलाकर प्रतिदिन दो बार पूर्ण लाभ होने तक खिलायें।

हैक्स्ट निर्मित नोवाल्जिन या बैरालगन १५ से २० मिलि० की गहरे मांस में सुई लगायें।

मिक्सचर—स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी ३० मिलि०, सोडियम सैलीसिलास ३० ग्राम, पोटाशियम नाइट्रास १० ग्राम, पोटाशियम आयोडाइड ५ ग्राम—सबको पर्याप्त पानी में एक साथ मिलाकर ऐसी एक मात्रा प्रतिदिन दो बार पिलायें।

फाईजर का काम्बायोटिक या साराभाई का डाइक्रिस्टिसिन या हैक्स्ट का ओम्नामाइसिन या ग्लैक्सो का म्यूनोमाइसिन १ से २ ग्राम की मात्रा में सुई लगायें।

———

सामान्य ज्वर

(Fever)

ऋतु-परिवर्तन, खान-पान की गड़बड़ी, अधिक समय तक पानी में रहने आदि कारणों से पशुओं को कभी ज्वर हो जाता है।

लक्षण—शरीर का तापमान बढ़ जाता है, नाड़ी और श्वास की गति तेज हो जाती हैं, रोयें खड़े हो जाते हैं। पशु शिथिल होकर चारा-खाना और पागुर करना बन्द कर देता है, उसका शरीर कांपता, पेशाब लाल-पीले रंग का आता है आदि।

चिकित्सा—कब्ज दूर करने के लिए पशु को हल्का जुलाब दें, जिससे पेट साफ हो जाये। ठंडी हवा में न रखकर सुरक्षित स्थान पर बाँधें। उसके शरीर पर झूल आदि डाल दें।

इण्डियन हर्ब्स का हरविना २ कैपसूल चारा के साथ मिलाकर पूर्ण स्वस्थ होने तक नित्य दो बार खिलायें।

सायनोमिड का औरियोमाइसिन सोलुबल ओब्लेट्स (Aureomycin soluble Oblets) की एक गोली पशु-शावक को और ४ गोलियाँ बड़े पशु को खिलायें।

अ० बू० भ० का फ्लूहरेक्स २ कैपसूल बड़े पशु को और १ कैपसूल छोटे पशु को गुड़ के अन्दर भरकर खिलायें।

सायनेमिड कं० का औरियोमाइसिन सोलुबल पाउडर बछड़े को ४ चम्मच दवा प्रति ५० किलो शरीर-भार के अनुसार १० लिटर पानी में घोलकर पिलायें। नवजात शावकों को २ चम्मच पाउडर ६० मिलि० दूध या ताजे पानी में घोलकर पिलायें।

———

मलेरिया
(Malaria)

मनुष्यों में मलेरिया उत्पन्न करनेवाले मच्छरों के प्लाज्मोडियम कीटाणुओं के काटने से कभी-कभी पशुओं को भी मलेरिया ज्वर हो जाता है। वैसे सामान्यतः पशुओं को यह रोग बहुत ही कम होता है।

लक्षण—पशु ठंड से काँपता है, उसका तापमान बढ़ जाता है, प्यास बढ़ जाती है। पशु व्याकुल और शिथिल होकर ३-४ घण्टे पड़ा रहता है। चारा खाना कम कर देता है।

चिकित्सा—कुनाइन (Nevaquine Injection या chlo. quine inj. 15 ml. daily Intramuscular), पैलुड्रीन आदि मलेरियानाशक दवायें उचित परिमाण में दें।

एनाप्लाज्मोसिस
(Anaplasmosis)

'ए० मार्जिनेलिस' नामक कीटाणुओं का संक्रमण जब लाल रक्तकणों के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है, तो यह रोग उत्पन्न होता है। यह रोग प्रमुख रूप से किलनी के काटने से होता है। अपने देश के पशुओं में किलनी प्रचुरता से पाई जाती है।

लक्षण—निरन्तर अत्यधिक तीव्र ज्वर, शीघ्रता से निरन्तर बढ़ती हुई रक्ताल्पता उत्पन्न होती है। लाल रक्तकण में एनाप्लाज्मा की उपस्थिति रहती है। कभी-कभी इक्टेरस (Icterus) रोग भी हो जाता है।

फाईजर के टेरामाइसिन या साराभाई के आक्सीस्टेक्लीन की ५ से १० मि०ग्रा० प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से मांस में सुई निरन्तर ५-७ दिन लगायें।

आधुनिक शोथ की रिपोर्ट के अनुसार यदि टेरामाइसिन २२ मिग्रा० प्रति-किलो शरीर-भार के अनुपात में निरन्तर ५ दिन तक प्रयोग की जाये तो अत्यन्त प्रभावशाली लाभ पहुँचेगा तथा कीटाणुओं को समूल नष्ट करेगा।

रेवेरीन (Reverine) १० मिग्रा० प्रति किलो शारीरिक भार के अनुपात से शिरा में कुल ५ से ७ दिन तक अथवा हॉस्टासाइक्लिन (दोनों हैक्स्ट कं० द्वारा निर्मित) उपर्युक्त मात्रा में मांस में सुई ५-७ दिन लगाये। टी० सी० एफ० के पेंटीसेटीन उपर्युक्त मात्रा में उपर्युक्त विधि से ही सुई लगायें।

ग्लोक्साजोन (Gloxazone) ५ मिग्रा० प्रतिकिलो शरीर भार के अनुसार शिरा में अथवा इमिजाल (Imizol) ५ मिग्रा० प्रतिकिलो की दर से मांस में ऐसी एक मात्रा ७ दिन के अन्तर पर इन्जेक्शन दें।

पशु के शरीर-पोषण के लिए साराभाई का बेलामील या ग्लैक्सो का लिवोजेन ५ से १० मिलि० का मांस में सप्ताह में दो बार करके ६ इन्जेक्शन लगायें। साथ ही इम्फेरान १० मिलि० को मांस में सप्ताह में दो बार सुई लगायें।

हिमालया ड्रग का लिव-५२,१० ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से १० दिन अथवा ग्लैक्सो का विमेराल १० मिलि० पीने की दवा प्रतिदिन १० दिन तक चारा या पानी में मिलाकर दें।

सुरक्षा—किलनियों को नष्ट करें।

———

पैराटाइफाइड

(Paratyphoid)

सालमोनेला वर्ग के कीटाणुओं के संक्रमण से उत्पन्न होने वाला यह रोग बड़े पशुओं और बछड़ों को होता है।

लक्षण—आँत में शोथ हो जाती है। प्रायः यकृत और प्लीहा में वृद्धि हो जाती है तथा यकृत और वृक्क रोगग्रस्त हो जाते हैं। बड़े पशु के गोबर में इस रोग

के कीटाणु होते हैं, जो रोग का प्रसार करते हैं। किन्तु पशुशावकों में आन्त्रशोथ, अतिसार, शरीर क्षीण होते जाना, शिथिलता आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

चिकित्सा—साराभाई के आक्सीस्टेविलन या वाकेहर्ड्स के वोलिसाइक्लिन ५० मिग्रा० प्रति मिलि० वाला १० से ५० मिलि० की मात्रा में मांस या शिरा में इन्जेक्शन लगायें। साथ ही सायनेमिड का औरियोमाइसिन सोल्युबल पाउडर या ५०० मिग्रा० की टेबलेट १ से २ प्रतिदिन १-२ बार खिलायें।

हैक्स्ट के होस्टासाइक्लिन १०० ग्राम को पानी में घोलकर दिन में २-३ बार पिलायें।

टेरामाइसिन का इन्जेक्शन, क्लोरोमाइसेटिन तथा औरियोमाइसिन का खिलाना भी बहुत लाभप्रद है। सल्मैट की गोलियाँ भी हितकर हैं।

———

शोथ सूजन

(Swellings)

पशुओं के बदन के विभिन्न वाह्य अंगों पर प्रायः सूजन हो जाती है। अंगों के अनुसार इन विभिन्न शोथों के विभिन्न नाम हैं। किन्तु उपचार-रीति प्रायः सबकी एक समान है।

खान-पान के विकारों से वातविकार होकर ही प्रायः शोथ होतो है।

चिकित्सा—रुग्ण पशु को ग्लेक्सो के फर्सोलिट या मे० एण्ड बेकर के नेप्टाल (Neptal) अथवा नेफ्रिल (Nephril) की २ गोलियाँ दिन में २-३ खिलाना लाभप्रद है।

यदि रक्तातिसार के पश्चात् घातक रक्ताल्पता के कारण शोथ हो और पेशाब कम आता हो तो हैक्स्ट कं० के लैसिक्स का २ से ४ मिलि० की मात्रा में मांस में तथा मैफ्राबिन १००० माइक्रोग्राम तथा ५० मिलि० डेक्स्ट्रोज—सबको मिश्रित कर धीरे-धीरे शिरा में इन्जेक्शन लगायें तथा टी० सी० एफ० के लिवर एक्सट्रेक्ट की २ से ५ मिलि० प्रति तीसरे दिन गहरे मांस में सुई लगायें और हैक्स्ट के लेसिक्स

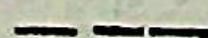
को २ गोलियाँ मैक्राफोलिन विथ आयरन २ गोलियाँ एक साथ चारा में मिलाकर प्रतिदिन १-२ बार खिलायें ।

शोथ को दूर करने के लिए इक्थियाल वेलाडोना प्लास्टर लगाना बहुत लाभप्रद है ।

यदि असावधानी से घोड़े की पीठ पर जीन कसने से सूजन हो गई हो तो साराभाई के पेण्टिड्स ४ लाख ख० इ० की एक गोली तथा मे० एण्ड बेकर के सल्फाडायाजिन की २ गोलियाँ—दोनों को पीसकर एकत्र मिलाकर जल में घोलकर पिलायें। पीड़ित स्थान पर सिबा के सिबाजाल मलहम को लगाकर मलें तथा फाईजर के काम्बोयोटिक १ ग्राम को मांस में सुई लगायें ।

यदि चोट लगने से उत्पन्न घाव, चोट-मोच के कारण शोथ और प्रदाह उत्पन्न हो जाय तो साराभाई के डाइक्रिस्टिसिन फोर्ट की सुई नित्य मांस में लगायें और सुहृद गैगी के सुगैन्रिल (Suganril) की २ से ४ गोलियाँ अथवा डी० डब्लू० के सेप्ट्रान (Septran) की १-२ गोलियाँ प्रतिदिन दो बार चारा में मिलाकर खिलायें । किन्तु यदि आमवात, गठिया, वात आदि के कारण घुटनों में सूजन और पीड़ा हो, पशु लड़खड़ाकर चलता हो तो सुहृद गैगी के एसिगीपायरीन (Esgipyrin) की २ से ४ गोलियाँ तथा मर्क कं० के न्यूरोबियान (Neurobion) फोर्ट की १ २ गोलियाँ—सबको मिलाकर चारा में डालकर दिन में एक बार खिलायें तथा एसिगीपायरिन की ५ से १० मिलि० की सुई गहरे मांस में प्रतिदिन तथा मर्क के न्यूरोबियान के ६ मिलि० की सुई शिरा में प्रति तीसरे दिन पूर्ण लाभ होने तक लगायें ।

रैनबक्सी के आरटैजेन (Artagen) की २ से ४ गोलियाँ खिलाना भी लाभप्रद है ।



घातक सवंगि शोथ

(Malignant Oedema)

वल० सेप्टिकम कीटाणुओं के संक्रमण से मांसपेशियों के तन्तुओं में दूषित जल संचित होकर पशुओं और भेड़ों के समस्त अंग में शोथ हो जाती है। यह रोग नारी पशु में प्रसव के पश्चात् विशेषत: भेड़ों को हो जाता है।

लक्षण—सारा शरीर फूल आता है। मल और मूत्र वहुत कम आता है। पशु सदैव सुस्त वैठा रहता है। भेड़ों की ऊन काटने, पूँछ काटने तथा बधिया करने के पश्चात् प्राय: यह रोग हो जाता है।

चिकित्सा—एम० वी० के नेप्टाल (Neptal) १ मि० लि० की मांस में हर तीसरे दिन या फ्रूसेमाइड (Frusemide) को १० से २० मि० ग्राम की मांस में छोटे पशुओं को या हैक्स्ट के लैसिक्स (Laxis) की ३ से ६ मि० लि० का मांस में प्रतिदिन इन्जेक्शन लगाने से घातक सवंगि शोथ मिट जाती है तथा इसके साथ ही सहायक औषधि के रूप में टी० सी० एफ० द्वारा निर्मित तीन औषधियाँ—टीनोफेरान या फेराडाल या मिनोलैड सीरप में कोई १ से २ छोटे चम्मच चारा के साथ दिन में दो वार देना लाभप्रद है।

टी० सी० एफ० के ह्वोल लिवर एक्सट्रैक्ट का इन्जेक्शन प्रतिदिन मांस में लगायें।

ग्लैक्सो के नियो-नैक्लेक्स (Neo-Neclex) या फाईजर के नेफ्रिल (Nephril) की गोलियाँ उचित मात्रा में प्रतिदिन खिलाना गुणकारी है। औरियोमाइसिन भी लाभदायक है। इसे उचित मात्रा में खिलायें तथा एक्रोमाइसिन का इन्जेक्शन मांस में गहरा लगायें।

ग्लैक्सो के लिवोजेन, विटकोफेल या साराभाई के बेलामील या रैलीज के इम्फेसान-बी-१२ या इम्फीविट की २ से ३ मि० लि० की मात्रा में गहरे मांस में इन्जेक्शन लगाना भी बहुत लाभप्रद है।

शारीरिक दुर्बलता और शोथ को दूर करने के लिए सैंडोज का कैल्सियम सैण्डोज विथ विटामिन सी ५ से १० मि० लि० का शिरा में धीरे-धीरे इन्जेक्शन

लगाने से पर्याप्त बल और स्फूर्ति आकर शोथ नष्ट हो जाती है इससे अधिक मात्रा में मूत्र आकर सूजन मिट जाती है ।

बैक्टीरियल संक्रमण से चर्म शोथ

(Dermatitis with Bacterial Invasion)

त्वचा रोग उत्पादक बैक्टीरिया जब पशु या घोड़े पर संक्रमण करते हैं तो उनकी त्वचा में प्रदाह-लालिमा एवं खुजलीयुक्त शोथ उत्पन्न हो जाने पर पशु व्याकुल हो जाता है ।

चिकित्सा—पीड़ित स्थान की त्वचा को डेटाल या सेवलान मिले गर्म पानी या नीम की पत्तियाँ डालकर उबाले हुए पानी से धोकर सुखाने के बाद निम्नलिखित मलहमों में किसी एक को लगायें—

हिमालया ड्रग का वेजीकार्ट मलहम, हैक्स्ट का केम्बिसान मलहम, फाईजर का टेरामाइसिन मलहम, ग्लेक्सो का मायवेसिन मलहम, आई० सी० आई० का सेवलान एण्टीसेप्टिक क्रीम, मे० एण्ड बेकर का एण्टीसेप्टिक क्रीम, वेटक्रीम (Vetcream) और वेटलान (Vetlan) या हैक्स्ट का ओम्नामाइसिन । इनमें से किसी एण्टीबायोटिक की सुई मांस में प्रतिदिन लगाने से रोग शीघ्र दूर होता है ।

भैंस का कर्ण शोथ

(Otitis in Buffaloes)

यह रोग प्रायः बरसात के मौसम में होता है । भैंस के एक या दोनों कानों में सूजन हो जाती है । क्षुधा नष्ट हो जाती है । उनका दूध बहुत कम हो जाता है । उनको ज्वर रहने लगता है । भैंसों की कानों में शोथ का रोग बहुधा बिहार, आसाम, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश आदि में होता है ।

चिकित्सा—औरियोमाइसिन टेब्लेट खिलायें ।

आयडोफार्म और बोरिक आयण्टमेण्ट लगायें ।

१.२५ शक्ति के टारटार एमेटिक आयण्टमेंट का प्रयोग भी लाभदायक है।

टेरामाईसिन १० मि० लि० की मांस में सुई लगायें। Gentamicin Ear Drops ५-५ बूंद दिन में तीन बार कान में डालना लाभप्रद है।

लसिकाग्रन्थि शोथ

इस रोग में लसिका ग्रन्थियां सूजकर फट जाती हैं। उनमें से सफेद पीव निकलने लगती है। स्नायु सूज जाते हैं। श्लेष्मिक झिल्लियों में रक्त की न्यूनता हो जाती है।

सुरक्षाः—रुग्ण पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग कर दें। मरे हुए पशुओं के सम्पर्क में आई हुई वस्तुओं को कीटाणुनाशक दवाओं से धोकर कीटाणुरहित कर दें।

चिकित्सा—टेरामाइसिन का इन्जेक्शन लगायें।

सायनेमिड निर्मित कैरीसिड २५ से ५० मि० ग्राम प्रति ५०० ग्राम शरीर-भार के अनुपात से चारा के साथ खिलायें। सल्फाडायजीन की १ गोली दिन में दो-तीन बार जल से खिलायें।

मे० एण्ड बेकर कं० का ट्राइनामाइड (Trinamide) की १-२ गोलियां दिन के एक-दो बार खिलायें।

मस्तिष्क-प्रदाह

(Encephalomyelitis)

शारीरिक संस्पर्श, रासायनिक औषधियों या संक्रामक कीटाणुओं द्वारा चारा खाने या विष द्वारा प्रभावित होने पर मस्तिष्कगत-अंगों तथा सुषुम्ना नाड़ी में प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। यह रोग घोड़े, गाय-भैंस, भेंड़, कुत्ते और अन्य पशुओं को हो जाता है।

लक्षण—पशु के तापमान में अतिशय वृद्धि हो जाती है। तीव्र रोग में पशु चलने में असमर्थ हो जाता है। पशु एकाएक गिर जाता है और उठने में असमर्थ हो

जाता है। मांसपेशियों में आक्षेप और ऐंठन होती है। पशु का शरीर शिथिल, मुख मलिन हो जाता है और अन्ततः पशु की मृत्यु हो जाती है।

सुरक्षा:—रोग का पता लगते ही रुग्ण पशु को पृथक् बाँधें। उसे कृत्रिम विधि से निर्मित चिक इम्ब्रियो का फार्मेलिन से निर्मित संक्रमण वाले कीटाणु के एमल्शन का १ मि० लि० का इन्जेक्शन लगा दें। यह इन्जेक्शन ७ से १० दिन बाद दुबारा लगायें। इसकी रोगक्षमता एक वर्ष तक बनी रहती है। अतः प्रति वर्ष इसका इन्जेक्शन पशुओं को लगाते रहें।

चिकित्सा—रुग्ण पशु को मस्तिष्क-दाह शामक औषधियों जैसे बार्बिट्यूरेट्स, क्लोरल हाइड्रेट का विलयन पिलायें। यदि रुग्ण पशु को इस रोग के एण्टीसोरम का २५० मि० लि० की मात्रा में हर २४ घण्टे के अन्तर पर इन्जेक्शन लगायें तो रोग में काफी कमी हो जायगी। टेरामाइसिन का इन्जेक्शन भी प्रति ४८ घंटे बाद लगाना लाभदायक है।

अपस्मार या मिर्गी

(Hysteria)

मिर्गी, मूर्छा (Fits), आक्षेप (Convulsion) या अपस्मार का रोग सामान्यतः पशु-शावकों विशेषकर कुत्तों को स्नायविक दुर्बलता-जन्य मानसिक विकृति या उदर-कृमियों के मस्तिष्क में प्रविष्ट हो जाने से होता है।

लक्षण—यह रोग दौरे से होता है। जब दौरा होता है, तो पशु अचानक काँपता, लड़खड़ाता और मूर्छित होकर गिर जाता है। उसकी गर्दन पीछे को घूम जाती है तथा मुंह से झाग गिरने लगती है। साथ ही पैर भी अकड़ जाते हैं।

चिकित्सा—बेहोशी की दशा में अमोनिया गैस या रीठे के छिलके का महीन चूर्ण सुंघायें। इससे उसे तत्काल होश हो जायगा।

रैनबैक्सी के कैमपोस या बाइथ के एक्वेनिल या ईस्ट इन्डिया के सेडोनल या एस० के० एण्ड एफ० के एस्केजीन या एलार्सिल के सिलेडीन या मे० एण्ड बेकर के लार्जेक्टिल—इनमें से किसी एक स्नायुशामक तथा शांतिप्रदायक औषधि की

रोग की मन्द या तीव्र अवस्था के अनुसार ३० से ३०० मि०ग्रा० की मात्रा में गोलियाँ प्रतिदिन एक-दो बार खिलायें।

आई० सी० आई० के मायसोलिन (Mysoline) ०·२५ ग्राम वाली गोलियों की औसतन मात्रा १ गोली प्रति ५ कि० शरीर-भार के अनुसार यानी ५० मि०ग्राम प्रति किलो प्रतिदिन कुल मात्रा दो भागों में बाँटकर हर १२ घन्टे बाद गोली को चूर्ण करके दाना या चारा के साथ खिलायें।

साराभाई का सिक्विल (Siquil) २० से ४० मि०ग्रा० कुत्ते की त्वचा में या शिरा में इन्जेक्शन लगायें।

एम० एण्ड बी० के गार्डीनल (Gardinal) की गोलियाँ ३० से ३०० मि० ग्राम की मात्रा में आवश्यकतानुसार खिलायें।

अत्यधिक बढ़े हुए उपद्रव की अवस्था में एम० एण्ड बी० का इन्ट्रावल सोडियम (Intraval Sodium) २५ से ३० मि० ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से (०.५ ग्राम दवा २० मिलि० परिश्रुत जल में घोलकर २० किलो शरीर-भार वाले प्रौढ़ कुत्ते के लिए औसतन मात्रा बनायें) धीरे-धीरे शिरा में (I. V.) लगाने से उसे पर्याप्त शांति मिलती है तथा सभी उपद्रव दूर हो जाते हैं।

जबड़हड्डा या लम्पी जबड़ा
(Actinomycosis)

जबड़हड्डा या लम्पी जबड़ा तथा अंग्रेजी में एक्टिनोमाइकोसिस, बल्मिक (Balmick) रेफंगस (Rayfungus) कहे जाने वाले इस रोग की उत्पत्ति एक्टिनोमाइसेज बोविस नामक परोपजीवी कीटाणुओं के संक्रमण से होती है। यह रोग मुख्यत: गो-पशुओं का रोग है, किन्तु कभी-कभी भैंस, घोड़े, भेड़ और बकरी भी इससे प्रभावित होते हैं और मनुष्य भी इससे पीड़ित हो सकते हैं। क्षय-रोग के समान ही यह एक जीवाणु-जन्य दीर्घकालिक रोग है। इस रोग के जीवाणु फफोलों की पीब में सामूहिक रूप से रहते हैं। रुग्ण पशु की लार, पीब, नासिकास्राव या रुग्ण के संक्रमण से दूषित चारा-पानी आदि तथा किसी घाव के मार्ग से भी रक्त में प्रविष्ट होकर इस रोग के जीवाणु रोग का प्रसार करते हैं।

लक्षण—रोग संक्रमण लगने के कई-कई मास पश्चात् यह रोग प्रगट होता है, क्योंकि सामान्य अवस्था में यह रोग शारीरिक संस्थानों में कोई गड़बड़ी उत्पन्न नहीं करता। जब जबड़ा रोगग्रस्त होता है तो रोगी पशु के जबड़े की हड्डी बड़ी हो जाती है और वहाँ पर फोड़े हो जाते हैं। पशु को चारा-दाने चबाने में कठिनाई होती है। उसका खाना-पीना दिनोंदिन कम होते जाने से वह पोषण के अभाव में दुर्बल और क्षीणकाय हो जाता है। थन में यह रोग होने पर वहाँ पर एक बड़ी-सी गाँठ या छोटी-छोटी कई कड़ी गाँठें पड़ जाती हैं, जो कि टटोलने पर स्पष्ट रूप से जान पड़ती हैं। यह दशा टी० बी० का भ्रम उत्पन्न कर सकती हैं, किन्तु टी० बी० के और इसके लक्षणों में बहुत अन्तर है।

सुरक्षा—स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें। रुग्ण पशु को अन्य पशुओं से तुरन्त पृथक् कर दें। पशु के निवास-स्थान को फिनाइल से धोते रहें।

चिकित्सा—यथासम्भव शल्य-क्रिया (आपरेशन) द्वारा इस रोग की पिड़िकाओं को काटकर निकाल दें अथवा फोड़ों को चीर कर और खुरचकर उनके भीतर का दूषित पदार्थ निकाल दें। फिर उसमें टिंचर आयोडीन लगा दें।

इस रोग में पोटाशियम आयोडाइड २ ग्राम को २० मिलि० परिश्रुतजल में घोलकर शिरा में सूई लगायें या फौवारा के रूप में प्रति २४ घण्टे बाद तब तक प्रयोग करें, जब तक पूर्ण लाभ न हो जाये। आयोडीन के विषैले लक्षण प्रगट होते ही इस दवा का प्रयोग एक सप्ताह के लिए बन्द कर दें। साथ ही एक्रोमाइसिन या प्रोनापेन (Pronapen—फाइजर निर्मित) का इन्जेक्शन प्रतिदिन मांस में लगाते रहें। मे० एण्ड बेकर का सल्फाडायाजीन यथोचित मात्रा में प्रयोग करते रहें।

स्ट्रेप्टोमाइसिन विथ पेनसिलीन यथा काम्बायोटिक, ओम्नामाइसिन, डाइक्रिस्टिसिन या म्यूनोमाइसिन को एक ग्राम की मात्रा में परिश्रुत जल में घोलकर प्रतिदिन मांस में सुई ६ से ८ दिन तक लगायें या वेटमपीन १ ग्राम हर आध घण्टे पर मांस में लगाये।

निम्नांकित मिक्सचर भी लाभप्रद है—

पोटाशियम आयोडाइड १० ग्राम, बिन आयोडाइड आफ मर्करी ०-२ ग्राम पानी में घोलकर एक ड्रेन्च के रूप में एक सप्ताह तक दें।

———

कठजीभा रोग

(Wooden Tongue or Actinobacillosis)

हिन्दी में काष्ठ नाम जिह्वा और बोलचाल की भाषा में कठजीभा रोग में पशु की जीभ सूजकर लकड़ी के समान मोटी और कड़ी हो जाती है। यह पशु रोग विशेषकर के मुलायम तन्तुओं जैसे—जीभ, ग्रन्थियों, फेफड़े और सबक्युटेनियस तन्तुओं को संक्रमित करता है।

लक्षण—आरम्भ में यह रोग त्वचा के नीचे एक कड़ी गाँठ के रूप में प्रगट होता है, फिर यह गाँठ तेजी के साथ बढ़ती है और शीघ्र ही एक ठण्डे या दबे हुए फोड़े का स्वरूप धारण कर लेता है, उसका केन्द्रिय भाग मुलायम होता है। तदुपरान्त उस फोड़े के आस-पास गोलाकार क्षेत्र में उसी प्रकार के बहुत-से फोड़े पैदा हो जाते हैं। प्रत्येक फोड़ा नुकीला होकर फूट जाता है और उसमें से हल्के पीले रंग की गाढ़ी क्रीम के समान पीप निकलने लगती है, जिसमें छोटे-छोटे दाने रहते हैं, इन्हीं में इस रोग के जीवाणु सामूहिकरूप से रहते हैं। यह रोग धीरे-धीरे दूसरे कोमल अवयवों जैसे जीभ, गाल, ग्रंथियों यहाँ तक कि फेफड़ों में फैल जाता है। इस रोग का कारण एक्टिनोबैसिलस लिग्नीएरेसी नामक गोल दण्डाकार कीटाणु हैं। ये दोनों के रूप में एकत्रित रहते हैं।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा भी जबड़हड्डा रोग की भाँति ही करनी चाहिए। आयोडीन और अन्य दवाओं से इसका उपचार लम्बीजबड़ा के समान ही करें। कोमल अंगों पर पेनीसिलिन मलह्म फार वेटरीनरी लगाते रहें। पेनीसिलीन ४ लाख का इन्जेक्शन मांस में प्रतिदिन लगाते रहें।

यदि इस रोग की चिकित्सा प्रारम्भिक अवस्था में ही यानी रोग के त्वचा तक ही सीमित रहने पर ही कर ली जाय, तो रोग अधिक चिन्तनीय और गम्भीर

नहीं रहता, किन्तु जब रोग जीभ तक फैल जाता है तो प्रायः पशु की मृत्यु हो जाती है और उसका उपचार कठिन हो जाता है।

———

तालू या गरवा रोग

तालू या गरवा रोग को कहीं-कहीं पट्टा रोग भी कहा जाता है। इसमें पशु की जीभ के नीचे की ओर एक काली रंग उभड़ आती है, जिससे पशु चारा खाने में असमर्थ हो जाता है। वह बार-बार मुँह चपर-चपर करता है, जीभ बाहर निकालता है तथा नथुनों को चाटता है, किन्तु उसकी जीभ नथनों तक नहीं पहुँच पाती।

चिकित्सा—इस रोग का एकमात्र उपचार यही है कि उस रग को छेदकर उसमें भरे हुए रक्त को निकाल दिया जाय। एतदर्थ या तो निकटस्थ पशु-चिकित्सालय के डाक्टर की सहायता लें या किसी अनुभवी विज्ञ व्यक्ति द्वारा या स्वयं ही एक तेज धारवाले चाकू या छुरी को पानी में खौलाकर, फिर उस पर स्प्रिट लगाकर तथा हाथों को भलीभांति साबुन से धोकर, उस चाकू या छुरी से उस नस को धीरे से छेदकर उसका खून दबाकर निकाल दें। ऊपर से हल्दी तथा फिटकरी का चूर्ण ३-४ बार मल दें। पशु एक-दो दिन में ही ठीक होकर चारा खाने लगेगा।

बहता रोग

इस रोग में पशु की जीभ सूजकर मोटी हो जाती है। उसे महाकष्ट होता है। खाना-पीना बिल्कुल बन्द कर देता है। मुँह से सदैव लार तथा आँखों से पानी बहता रहता है। इस रोग का कारण जीभ के नीचे की चार रगों में रक्त बढ़ जाना होता है।

चिकित्सा—उपरोक्त विधि से ही अथवा किसी पशु डाक्टर द्वारा उन रगों को छेदकर रक्त निकाल देना ही इस रोग की एकमात्र चिकित्सा है।

अधर ग्रंथि या चुधी रोग

इसी प्रकार कभी-कभी पशु की ओंठ की त्वचा में मांस बढ़ जाने से गाँठ-सी पड़ जाती है और कुछ दिनों में पककर वह पशु को चारा खाने में भो असमर्थ

बना देती है। इस गाँठ को भी उक्त विधि से शल्य-क्रिया करके उसका मांस निकाल देना चाहिए। इस बात का ध्यान रहे कि शल्य-क्रिया के शस्त्रों तथा हाथों को पूर्वोक्त विधि से कीटाणु-रहित कर लेना अत्यावश्यक है। इस रोग को ग्रामीण चुधी रोग कहते हैं।

मूत्राश्मरी या पथरी
(Urinary Calculi)

शुष्क, रुक्ष, गरिष्ठ चीजें अधिक खिलाने, पानी कम पिलाने, चूना-युक्त पानी अधिक पिलाने, पेशाब करते समय भी पशु को काम में लगाये रखने या पशु के मूत्राशय में केल्शियम और मैगनेसियम के कार्बोनेट्स तथा फास्फेट संचित हो जाने से पथरी का रोग हो जाता है। कभी-कभी ये आर्गेनिक पदार्थ बड़े रूप के हो सकते हैं। ये मूत्र-प्रणाली के किसी भाग में पाये जा सकते हैं, यथा गुर्दे के मार्ग में, मूत्र-मार्ग में, मूत्रमार्ग में या मूत्र-नलिका में। इन अवरोधों में किसी भी अवरोध के कारण मूत्र-विसर्जन में कष्ट होता है।

लक्षण—गुर्दे और मसाने में भयंकर पीड़ा होती है। मूत्र रुक जाता है या मूत्र थोड़ा-थोड़ा बार-बार कष्ट से आता है। जिससे पशु कष्ट से छटपटाता है, बार-बार उठता-बैठता है। मूत्र में रक्त आना, पीठ में तीव्र पीड़ा होना, मूत्र में रेत या पथरी के कण निकलना आदि उपसर्ग होते हैं।

चिकित्सा—सर्वप्रथम पशु को एनिमा देकर उसका पेट साफ कर दें, जिससे पथरी के नीचे सरकने में सरलता रहे।

मूत्र-मार्ग की पथरी को आपरेशन-द्वारा निकाल दें। पशु को पर्याप्त मात्रा में पानी पिलायें और विटामिन ए वाले हरे चारे खिलायें।

इस रोग से उत्पन्न कष्ट को दूर करने के लिए एलार्सिन कं० का बंगशील (Bangshil) बड़े पशु को १० गोलियाँ प्रतिदिन तीन बार १०-१५ दिन तक और कुत्ते तथा छोटे पशु को २ से ५ गोलियाँ प्रतिदिन तीन बार १०-१५ दिन दें। इसके बाद आधी मात्रा की दर से एक महीने तक दें।

ग्लैक्सो के विटाब्लेण्ड २० ग्राम को १०० किलो ताजा चारा में मिलाकर खिलाते रहें।

फाईजर का विटामेक्स चारा में मिलाकर खिलाना लाभदायक है।

हिमालया ड्रग का सिस्टोन (Systone) २ गोलियाँ दिन में तीन बार १५ दिन तक खिलायें।

पथरीजन्य पीड़ा की शान्ति के लिए निम्नलिखित मिक्सचर गुणकारी हैं—

सोडाबाई कार्ब १ से २ ग्राम, एलवावलोरोफार्म ४ से ५ मि० लि०, टिंचर हायोसायमस ०·५ से १ मि० लि० तथा सीरप ५ मि० लि०—सबको मिलाकर ऐसी एक मात्रा दिन में दो बार कुत्ते को पिलाने से कष्ट दूर होता है।

सोडाबाई कार्ब ३० ग्राम, टिंचर हायोसायमस ३० मिलि० तथा पानी १२५ मि० लि०—सबको मिश्रित कर ऐसी एक मात्रा दिन में दो बार पिलायें। यह योग घोड़े, गाय, बैल, भैंस के लिए लाभदायक है।

हिमालया ड्रग का सिस्टोन (Cystone) २ से ४ गोलियाँ कुल्थी के काढ़े के साथ दिन में दो-तीन बार देना लाभप्रद है।

यदि पशु पथरी की पीड़ा से बहुत ही व्याकुल हो, छटपटा रहा हो, तो पशु-चिकित्सालय के डाक्टर को बुलाकर मारफिया का इन्जेक्शन लगवा देना चाहिए। इससे पशु को नींद आकर कुछ शान्ति मिल जायगी।

मूत्र में रक्त आना
(Hamaturia)

अधिक तेज धूप या गर्मी में काम करने, कमर पर गहरी चोट लग जाने, कोई विषैली घास खा लेने, पथरी हो जाने, गुर्दे-मसाने की आन्तरिक त्वचा छिल जाने या मूत्रनली में किसी प्रकार व्रण हो जाने आदि कारणों से पेशाब में रक्त आने की व्याधि उत्पन्न हो जाती है। यह रोग कजेटियस रेडवाटर से भिन्न है।

लक्षण—पशु को रक्तमिश्रित लाल रंग का मूत्र आता है। कभी-कभी तीव्र ज्वर भी आ जाता है। प्रायः कब्ज और कभी अतिसार भी हो जाता है।

चिकित्सा—एलम पाउडर (फिटकरी का सूक्ष्म चूर्ण) १०-१५ ग्राम आधा किलो दूध में मिलाकर पिलाना बहुत ही लाभप्रद है।

मेथीलिन ब्लू (Methyline Blue) १०० घ० से० से २५० घ० से० तक के सोल्यूशन का इन्जेक्शन लगाने से पेशाब में रक्त आना बन्द होता है।

१ प्रतिशत फिटकरी के घोल से पशु के मूत्राशय का डूश द्वारा प्रक्षालन करना भी बहुत लाभप्रद है। इसके साथ ही ऐसे चारे-दाने का खिलाना भी आवश्यक और लाभकारी है, जिसमें कैल्सियम और विटामिन पर्याप्त मात्रा में हों।

सोडाबाईकार्ब १५ से २५ ग्राम और शुद्ध गंधक १० से २० ग्राम २५०-३०० ग्राम दूध में मिलाकर नित्य दो बार देना भी लाभप्रद है। यदि अतिसार हो तो सोडा न दें।

एलार्सिन का वंगशील बड़े पशु को १० गोलियाँ प्रतिदिन तीन बार १०-१५ दिन और छोटे पशुओं तथा कुत्तों को २ से ५ गोलियाँ नित्य ३ बार १०-१५ दिन दें।

हिमालया ड्रग का सिस्टोन नित्य ५ गोलियाँ दिन में ३ बार १०-१५ दिन खिलाना लाभप्रद है।

पशुओं में अत्यंत रक्ताल्पता
(Malignant Anaemia in Animals)

किसी कारणवश शरीर का रक्त घट जाये और रक्त में जो लाल कण होते हैं, उनकी संख्या घट जाये तो उसे रक्तहीनता या रक्ताल्पता कहते हैं।

कारण—यकृत या प्लीहा की क्रिया में विकार, दूषित आहार, आहार में विटामिनों की कमी, पर्याप्त हरा चारा न मिलना, रोग या चोट से रक्तस्राव, प्रसव-पूर्व या पश्चात् अधिक स्राव, पुराना अजीर्ण, डिप्थीरिया, न्यूमोनिया, क्षय आदि संक्रामक रोग रक्ताल्पता के कारण हैं।

लक्षण—पशु बहुत दुबला हो जाता है। उसे अपच, क्षुधामांद्य, कब्ज, थोड़े परिश्रम से श्वास फूलना, श्वासकष्ट, शरीर का तापक्रम सामान्य से कम आदि लक्षण होते हैं। रोग पुराना होने पर पांडु-कामला हो जाता है।

चिकित्सा—पशुओं में अत्यधिक या घातक रक्तन्यूनता होने पर निम्नलिखित रक्तवर्द्धक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए—

मिनोलैड (Minolad) या टोनोफेरान (Tonoferron) या फेराडाल (Ferradol) एक छोटा चम्मच कुत्ते को तथा ४-५ छोटे चम्मच बड़े पशु को चारा या दाना के साथ प्रतिदिन दो बार खिलायें।

फेसोविट (Fesovit) १ कैप्सूल दिन में दो बार चारा या पानी के साथ निगलवाना लाभप्रद है।

निम्नलिखित मिक्सचर भी बहुत गुणकारी हैं—

घोड़े और पशुओं के लिए—कोबाटसल्फ ०·२ ग्राम, फेरीसल्फ एक्सी ०·५ ग्राम, कापरसल्फ ०·२ ग्राम तथा गुड़ पर्याप्त—सबको मिश्रित कर अवलेह बनाकर प्रतिदिन एक बार निरन्तर १० दिन तक चटावें।

कुत्ते के लिए—फेरीएट अमोनिया साइट्रेट ५ ग्राम, सीरप २० मि० लि० तथा पानी १२५ मि० लि०—सबको एकत्र मिलाकर एक छोटा चम्मच प्रतिदिन दो बार १० दिन तक पिलायें। कुत्ते को हिमालया ड्रग का लिव-५२, ड्राप्स, रैलीज इम्फीविट या इम्फेरान २ से ३ मि० लि० की मांस में सुई सप्ताह में दो बार लगायें।

फाईजर का एनोरेक्सोन आवश्यकतानुसार २ से ४ गोलियाँ प्रतिदिन एक-दो बार चारा में मिलाकर खिलायें।

साराभाई का वेलामील या एफ० डी० सी० का विटकोकाल या ग्लेक्सो का लिवोजेन या टी० सी० एफ० लिवर एक्सट्रेक्ट २ से ३ मि० लि० को मांस में सुई सप्ताह में दो बार लगायें।

रैलीज का इम्फेरान विथ विटामिन बी$_{१२}$ घोड़े और पशु को १० मि० लि० की सुई मांस में सप्ताह में दो बार तथा कुत्ते को ३ मि० लि० की शिरा में सुई सप्ताह में दो बार लगायें।

ब्लड-ट्रांसफ्यूजन

घातक एवं घोर रक्ताल्पता, रक्तस्राव की संकटकालीन अवस्था में, संज्ञाहीनता में थेइलोरिओसिस (Theiloriosis), एनाप्लाजमेसिस (Anaplasmesis) जैसे हेमोलायटिक रक्ताल्पता में जब कि हिमोग्लोबिन का तल ४ ग्राम प्रति १०० मिलि० से भी नीचे चला जाता है, ब्लड-ट्रान्सफ्यूजन पशु के प्राण की रक्षा करने में बहुत ही लाभदायी है। ब्लड-ट्रान्सफ्यूजन पशुओं में सामान्य रोग प्रतिरोधक-क्षमता उत्पन्न करने में भी उपयोगी है। अतः निम्नलिखित विधि के अनुसार पशुओं में सावधानी से रक्त का ट्रांसफ्यूजन आवश्यकता होने पर तत्काल करना चाहिए।

रक्त का चुनाव—पशुओं में विशेषतः कुत्तों में ब्लड-ट्रांसफ्यूजन करते समय क्रास मैचिंग (Cross Matching) की जांच कर लेनी बहुत आवश्यक है। यों तो पशुओं में प्रथम ट्रान्सफ्यूजन के लिए क्रास मैचिंग अनिवार्य नहीं है। कुत्तों में रक्त के 'ए' ग्रुप के लिए जांच कर लेनी चाहिए (यदि थोड़ा भी समय शेष हो तो)। नियम यह है कि ए-ऋणात्मक ग्राहक या प्राप्तकर्ता (A-Positive Recipient) किसी भी दाता (Donar) से रक्त प्राप्त कर सकता है।

दाता के लाल रक्तकण को प्राप्तकर्ता के सीरम में (जो परखनली में रखा हुआ है) रखकर जांच करनी चाहिए। आधे घण्टे में हिमोलायसिस नहीं होना चाहिए। ग्राहक के लाल रक्तकण (Red Blood Corpuscles) को भी उसी प्रकार दाता के सीरम में रखकर जाना जा सकता है, किन्तु पहली जांच ही मुख्य है यानी अधिक आवश्यक है। इसे ही क्रास मैचिंग कहते हैं। यह क्रास मैचिंग जांच तब अवश्य करनी चाहिए जब कि ग्राहक में एक से अधिक ट्रांसफ्यूजन प्रदान किये जा रहे हों।

प्रविधि—रक्त को उस एक या दो विसंक्रमित सेलाइन बोतल (आटोक्लेव द्वारा विसंक्रमित) जिसमें ३.८५% सोडियम साइट्रेट का विलयन १० मिलि०, प्रत्येक १०० मिलि० रक्त के अनुपात से रखी गई हो, में जमा करते हैं। रक्त को पशु के जुगलर वेन (juglar Vein) से बड़े छिद्र वाली मोटी नीडिल या केनूला द्वारा जमा किया जाता है।

रक्तदान करने (Bleeding) तथा ग्रहण करने (Transfusion) की दर पशुओं के लिए ४ से ७ मिलि० प्रति पौण्ड शारीरिक-भार के अनुपात से अर्थात् औसतन २ मिलि० तथा कुत्तों के लिए ५ मि० लि० प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से अर्थात् औसतन १०० मिलि० है।

सावधान !—रक्त की बोतल को तब घुमाते हुए रखना चाहिए जब कि रक्त का फौवारा बोतल की भीतरी दीवाल पर पहुँचे, जिससे झाग न बनने पाये। क्योंकि रक्त में झाग बनना रक्त को विकृत और हानिकर बना देता है। स्टेराइल (विसंक्रमित झाग) द्वारा रक्त को छानकर रक्त से झाग को दूर कर देना चाहिए। रेफ्रिजरेटर में या अन्य फ्रीज यन्त्र या अन्य विधि द्वारा रक्त को एक सप्ताह तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

सावधान !—रक्त को शिरामार्ग (I. V.) या उदर्य्याकला मार्ग (Intra. peritoneal Route—उदर के पेरिटोनियम के थैले में) से ट्रांसफ्यूजन करने से पहले शारीरिक तापक्रम के अनुसार रक्त को गर्म करके ले आना चाहिए और तब अन्त:क्षेपित करना चाहिए। गर्म करने के लिए रक्त को थर्मोस्टेबुल सेलाइन बोतल में ही संचित करके उसे आटोक्लेव, हाटवाटर बाथ में निर्धारित समय तक रखना चाहिए।

कुछ पशुओं में रक्त ग्रहण करने के बाद व्याकुलता और थर-थर कांपना जैसे उपद्रव दिखाई देते हैं। इन सब प्रतिक्रियाओं को नियन्त्रित करने के लिए एण्टी-हिस्टामीनो औषधियाँ—जिनका उल्लेख पीछे के प्रकरणों में किया जा चुका है—का प्रयोग करना चाहिए। किसी-किसी पशु में ट्रांसफ्यूजन के १० से १४ दिन पश्चात् इस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है, किन्तु यह हल्की और सरलता से नियंत्रण करने योग्य होती है। जागरुकता और सतर्कता से किया गया प्रायः कोई कार्य हानि नहीं पहुँचाता।

गर्भाशय का बाहर निकल आना
(Prolapse of Uterus)

बच्चेदानी के बाहर निकल आने की इस व्याधि से सभी दुधारू पशु पीड़ित हो सकते हैं। किन्तु गाय और भैंसों को यह व्याधि अधिक होती है।

लक्षण—बूढ़ी गायें और भैंसें जब बच्चा जनती हैं तो प्रायः उन्हें यह रोग हो जाता है। उनकी बच्चेदानी जो लाल रंग की होती है, बाहर निकल आती है। इससे पशु को अत्यन्त कष्ट और व्याकुलता होती है।

चिकित्सा—जब यह रोग हो जाये तो तुरन्त ही धीरे से एण्टीसेप्टिक लोशन से बाहर निकले हुए भाग को धोयें, किन्तु धोने में रगड़ बिल्कुल नहीं लगनी चाहिए। इसके लिए आई० सी० आई० सेव्लान १% या एक में एक हजार वाला पोटासियम परमेंगनेट (लाल दवा) का लोशन बहुत उपयोगी है। बहते रक्तस्राव को १ में १००० वाला एड्रीनेलीन को फाहे में लगाकर रोकें। धोने के बाद निकले हुए भाग को स्प्रिट से तर करके बहुत धीरे से ह ! की मुट्ठी द्वारा उसको भीतर प्रविष्ट कर दें। हाथों को पहले किसी एण्टीसेप्टिक लोशन से भली-भाँति धोकर साफ कर लेना चाहिए। जब पीड़ित अंग भली प्रकार अपने स्थान पर पहुँच जाय तो बहुत स्वच्छ गाज को स्प्रिट में भिगोकर भीतर रखें। दूसरे दिन गाज को निकालकर पहले दिन को तरह ही दूसरी स्प्रिट में भिगोई हुई रूई का फाहा रखें।

जिस पशु को यह रोग हो उसे बच्चा जनने से सात सप्ताह पूर्व और बच्चा देने के एक सप्ताह बाद तक बैठने न दिया जाय, क्योंकि यह रोग बैठने से ही अधिकतर होता है। लिखित क्रिया के बाद भी पशु को एक सप्ताह तक बैठने नहीं देना चाहिए। ए[redacted] पशु के अगले पैरों के पीछे और पिछले पैरों के आगे के भाग के अन्दर पशु के दोनों ओर पशु के पैरों की ऊँचाई के नाप का लकड़ी या बाँस का एक ऐसा अड़गड़ा या बाड़ा देना चाहिए कि पशु उसके बीच में खड़ा रहे, बैठ न सके।

यदि गोबर करते समय ऐंठन और अत्यधिक कष्ट हो तो स्थानीय संज्ञाहरण (स्थान को सुन्न कर देने वाला) कोई मलहम जैसे जाइलोकेन (Xylocain) का लेप लगा दें। पॉस्टेरियर पिच्यूट्री एक्सट्रेक्ट (बी० आई० या अन्य कं० द्वारा निर्मित) ५ मि० लि० की शिरा में सूई लगायें तो गर्भाशय का संकुचन और अन्दर की ओर जाना । त सरल हो जायगा। पशु को कैथेटर द्वारा मूत्र करायें। फिर से बच्चेदानी बाहर न निकलने पाये, इसके लिए निम्नांकित औषधियों का प्रयोग करें—

मिक्सचर—आयल लिनि० ५०० मिलि०, क्लोरल हाइड्रास ५० से ६० ग्राम तथा पानी २०० मि० लि० – सबको एकत्र कर दो बर्तनों में कई बार फेरकर मिश्रित कर ऐसी एक भाग बड़े पशु को पिलायें।

साराभाई के सिक्विल का ५ मि० लि० की या मे० एण्ड बेकर के लार्गेक्टिल ५ प्रतिशत विलयन की १० मि० लि० को आधी मात्रा का मांस में सुई लगायें या हैक्स्ट नोवोकेन १० मि० लि० का एपिडयूरल (मस्तिष्कगत) इन्जेक्शन लगायें।

बाहर निकली हुई बच्चेदानी को यथास्थान करने के बाद रोप ट्रश (रस्सी की पेटी) को लगा दें और तीन दिन तक लगाये रखें।

बच्चेदानी को हाथ की मुट्ठी से भीतर करने में यदि पशु को बहुत अधिक आघात पहुँचे या बेहोश हो जाये तो फेनार्गन, एन्थिसान या एविल का प्रयोग करें।

गर्भाशय में पीप बनना
(Pyometra)

आँवल के पूरी तरह न निकल पाने, अपूर्ण उपचार, योनि, गर्भाशय आदि के बाहर निकल आने और इन रोगों की ओर से लापरवाही करने से गर्भाशय के भीतर पीप उत्पन्न हो जाती है। माल्टा ज्वर (Brucellosis), वाइब्रिओसिस, ट्रिकोमोनिएसिस जैसे संक्रमण भी इस रोग के कारण हो सकते हैं।

लक्षण—पशु रोगी जैसा दिखाई देता है, ज्वर रहता है, पशु के दूध में पीप की बूंदें रहती हैं। जब रुग्ण पशु बैठी रहती है तो गर्भाशय का पीप जैसा दुर्गन्धित स्राव निकलता हुआ दीख पड़ता है। निश्चयात्मक निदान के लिए गुदा-मार्ग की ओर से गर्भाशय की परीक्षा करनी चाहिए।

चिकित्सा—यदि इस रोग के यथोचित उपचार में थोड़ा भी विलम्ब हुआ तो गर्भाशय के सूज जाने से उसमें बड़े अकार की पेसरी को प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। अतएव सर्वप्रथम गर्भाशय के स्राव को गुदा-मार्ग की हल्की मालिश द्वारा दूर हटा देना चाहिए, मेथारजिन या पोस्टेरियर पिच्यूट्री एक्सट्रैक्ट का प्रयोग करके भी इस कार्य में सहायता पहुँचाई जा सकती है। इसे दो-तीन दिन देना चाहिए।

मे० एण्ड बेकर के वेटओएस्ट्राल की १० से २० मि०ग्रा० की त्वचा में सुई लगाना भी लाभप्रद है। किन्तु इस दवा का अंश पशु के दूध में आ सकता है।

फाईजर के मास्टेलोन-यू या बोकार्ड का वेटाडीन का गर्भाशय में तथा किसी भी टेट्रासाइक्लिन की मांस में सुई लगाना लाभप्रद है।

पशु के गर्भाशय में डाइक्रिस्टिसिन या काम्बायोटिक का इन्जेक्शन लगायें।

कैल्वोरल के पैरेण्टेरल कैल्सियम १०० से १५० मि० लि० प्रतिदिन तीन दिन तक प्रयोग करें तथा इसके साथ हैक्स्ट के टोनोफोस्फान १० मि० लि० का प्रयोग गर्भाशय की मांसपेशियों को बल प्रदान करना तथा गर्भाशय के शीघ्र संकुचन में सहायता करता है।

जेर का न निकलना
(Retention of Placenta)

सामान्यतः आध घन्टे से ५-७ घन्टे के अन्दर आंवल को निकल जाना चाहिए। किन्तु इतने समय में न निकले तो इसे निकालने का उपाय करना चाहिए। क्योंकि आंवल न निकलने से गर्भाशय में शोथ आ जाती है और इसका दूषित स्राव शरीर में फैल जाने से घातक दशा उत्पन्न हो जाती है। यदि पशु बच भी जाये तो उसका दूध कम हो जाता है।

यह रोग विशेष रूप से गाय और भैंसों को होता है। दूसरे दुधारू पशु भी इससे पीड़ित हो सकते हैं।

चिकित्सा—कण्ट्री लाईकर (Country Liquor) ४ औंस, एक्सट्रेक्ट अर्गट लिक्विड ५० मिनिम, नमक ४ औंस, स्वच्छ जल १ पाइण्ट—सबको मिश्रित कर पिलायें। किन्तु यदि इसके प्रयोग के बाद भी २४ घन्टे तक आंवल न निकले तो निम्नांकित चिकित्सा या आपरेशन करायें।

आंवल के निष्कासन के लिए निम्नांकित योग भी गुणकारी हैं—

मैगसल्फ १२ औंस, पल्वर्जिजीवर, पल्व अनोसी १-१ औंस, अर्गट प्रिपेटेरा १ औंस, पुराना गुड़ ५०० ग्राम, पानी २ पिंट सबको एकत्र मिश्रित कर चारा में मिलाकर खिलायें।

इसके बाद घोड़ी और गाय के गर्भाशय में निम्नांकित दवा प्रविष्ट करें—

क्रिस्टेलीन पेनसिलीन ५ लाख यूनिट, स्ट्रेप्टोमाइसिन ½ ग्राम तथा नार्मल सेलाईन सोल्यूशन २० मि० लि०—सबको एकत्र मिला लें।

पिच्यूट्री (पोस्टेरियर लोव) १० मि० लि० के एक-दो इन्जेक्शन लगायें।

स्ट्रिलबोयेस्ट्रोल का इन्जेक्शन भी लाभदायक है।

बच्चा उत्पन्न होने के तुरन्त बाद आँवल को निकालकर गर्भाशय की पूरी सफाई के लिए निम्नांकित मिक्सचर का प्रयोग गुणकारी है—

टिंचर जिजीबेरिस ६० मि० लि०, मैगसल्फ २५० ग्राम, एक्सट्रैक्ट अर्गट लिक्विड १० मि० लि०, पानी ५६० मिली०—सबको भली-भाँति पिलायें।

चरक का एम२ टोन तरल या कैट्ल रेमेडोज का यूटरोसेन तरल १०० मि० लि० दो बार प्रतिदिन तथा २ से ३ दिन के बाद फिर दे सकते हैं।

ग्लैक्सो के अर्बोलीन (Erbolin) की २० गोलियाँ प्रतिदिन दो बार निरन्तर दो दिन तक देना लाभप्रद है।

यदि उपर्युक्त औषधियों के प्रयोग से आँवल बाहर न निकले तो आँवल के साथ हाथ से निकाल देना चाहिए। किन्तु ऐसा करते समय विसंक्रमण नियम और सावधानियों का पूर्णतः पालन करना चाहिए।

एम० एण्ड बी० के टेगेरान (Tegeron) क्रीम को हाथ में लगाकर यानी लेप करके तब हल्के हाथ से जहाँ तक सम्भव हो सम्पूर्ण आँवल को बाहर निकाल लेना चाहिए। जेर निकालने के बाद फ्यूरिया पोटास की चार गोली गर्भाशय में रखना चाहिए।

आँवल निकालने की एणटीबायोटिक चिकित्सा

आधुनिक नव-अनुसंधानकर्ता डाक्टरों की सम्मति है कि यदि एण्टीबायोटिक दवाओं द्वारा गर्भाशय के संक्रमण को सम्यक् रीति से नियंत्रण में ले जाया गया, तो हाथ से आँवल को निकालने की आवश्यकता नहीं है।

निम्नांकित में से कोई पेसरी २ से ४ प्रतिदिन के हिसाब से लगातार कम से कम तीन-दिन तक भीतर रखें—

एच० जूल्स का फुजोन (Fuzone) या एस० के० एफ का फुरिया (Furea) या एम० एण्ड बी० का काम्प्रोन या सल्फामेथाजीन, सल्फाडायाजीन या कोई सल्फा ड्रग ५ ग्राम की मात्रा में या फाईजर का टेरामाइसिन ५०० मि० ग्रा० की मात्रा में या सायनेमिड के औरियोमाईसिन की गोलियाँ खिलायें।

२० से ४० लाख यूनिट की मात्रा मे स्ट्रेप्टोपेनसिलीन जैसे—डाइव्रि स्टिसिन फोर्ट, काम्बायटिक, ओम्नामाइसिन (हैक्स्ट) या म्यूनोमाइसिन का इन्टायूटेराइन (बच्चेदाना में) सुई प्रतिदिन कम से कम तीन दिन तक लगायें।

स्ट्रेप्टोपेनीसिलीन १० से २० लाख की मात्रा में २० मि० लि० परिश्रुत जल में मिलाकर विसंक्रमित पिपेट द्वारा गर्भाशय में आवश्यकता पड़ने पर प्रतिदिन और अधिक बार भी अन्तःक्षेपित किया जा सकता है। या

फाईजर के मास्टेलोन-यू को बच्चेदानी में अन्तःक्षेपित तीन दिन तक करें। साथ ही टरामाइसिन २० मि० लि० की मांस में सुई प्रतिदिन कुल तीन दिन तक लगायें।

सिवा का मेथरजीन ९ से १२ मि० लि० की त्वचा में या सिबा या सेण्डोज का न्यूमाइनरजिन उपर्युक्त मात्रा में त्वचा में इन्जेक्शन तीन दिन तक लगायें तो बच्चेदानी शीघ्र ही संकुचित होकर आँवल को निकाल देगी तब एलार्सिन का मायरान या हिमालया ड्रग का ल्यूकोल और सेप्टिलिन (Septilin) की २० गोलियाँ दिन में दो बार १० से १५ दिन खिलायें।

योनि का बाहर निकल आना
(Prolapse of Vagina)

कभी-कभी पशु की योनि बाहर निकल आती है, जिससे पशु को उठने-बैठने, मूत्र विसर्जन करने और चलने-फिरने में बहुत कष्ट होता है।

लक्षण—योनि की श्लेष्मिककला बाहर निकल आती है और वह हल्की गुलाबी, लाल दीख पड़ती है। पशु को अन्दर हल्की टीस होती है। जब तक योनि को भीतर न किया जाय वह बाहर ही निकली दीखती है।

चिकित्सा—फटे-चिटे भाग की जांच करके आई० सी० आई० के सेव्लान (Savlon) के १ प्रतिशत मिले ठंडे पानी से योनि को सींचें।

१७

यदि रक्तस्राव हो रहा हो तो १:१००० शक्ति वाले एड्रेनालीन का वहां फाहा लगायें। इस कार्य के लिए पशु को पहले स्वच्छ स्थान पर ले जायें और वहां पीछे के भाग को ऊँचा करके बाहर निकली हुई योनि को मुलायम स्वच्छ वस्त्र पर रखें। तत्पश्चात् हल्के हाथ की मुट्ठी के द्वारा धीरे-धीरे योनि को भीतर प्रविष्ट करें। ऐसा करने से पूर्व चिकित्सक को अपने हाथों को विसंक्रमित कर लेना चाहिए। शेष चिकित्सा 'गर्भाशय के बाहर निकल आने' के प्रकरण के अनुसार करें।

योनिमुख की स्थानभ्रष्टता

यह रोग बड़ी आयु में गायों को प्रसव के तुरन्त बाद हो जाता है। बच्चा गर्भाशय से बाहर निकालते समय अधिक जोर लगाने या गन्दे हाथ और गलत ढंग से बच्चा निकालने से हो जाता है।

लक्षण—योनिमुख उलट जाता है या थोड़ा बाहर निकल आता है। कभी-कभी तो गर्भाशय योनिद्वार से बाहर लटकने लग जाता है। पशु म्लानमुख, विकल और पीड़ित दीखता है।

सुरक्षा—बच्चा उत्पन्न होते समय सफाई और सावधानी रखें और संक्रमण-रहित विधि से बच्चा उत्पन्न करें।

चिकित्सा—उलटे योनिमुख और गर्भाशय को १० हजार भाग पानी में एक भाग एक्रीफ्लेविन, जिसे पीली दवा भी कहते हैं अथवा एक गैलन पानी में ३ छोटे चम्मच नमक या एक हजार पानी में एक भाग लाल दवा मिलाकर उस भाग को भली-भाँति धोयें। किन्तु ध्यान रहे—गर्भाशय और योनिमुख बिल्कुल न रगड़ें। पानी केवल ऊपर से ही डालें। उलटे हुए योनिभाग को कीटाणुनाशक विलयन से धोकर और हाथों को साफ करके उसमें तेल लगाकर अंगूठे से योनिभाग को धीरे-धीरे अन्दर प्रविष्ट कर दें। इस भाग को दुबारा बाहर आने से रोकने के लिए मोटे शीशे की एक बोतल लेकर उसके गले में दो लम्बी डोरियाँ बांधकर योनि को बोतल से दबाकर अन्दर कर दें और बोतल को भी अन्दर ले जाकर उस मुँह को पशु को पीठ और पूँछ के साथ डोरी से बाँध दें। बहुत कष्ट होनेपर क्लोरल हाइड्रेट १–२ औंस एक पिंट पानी में घोलकर पिलायें। टेरामाइसिन आदि अति व्यापक क्षेत्रीय एण्टीबायोटिक औषधियों का प्रयोग करें।

अण्डकोष-शोथ
(Orchitis)

चोट लग जाने या एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं के संक्रमण से, या कभी-कभी वात-प्रकोप आदि कारणों से प्रायः पशु के अण्डकोषों (फोतों) में सूजन आ जाती है। पशु के अण्डकोष सूजकर बड़े हो जाते हैं। पशु पिछली टांगों को फैला कर चलता है। अधिक कष्ट होने पर कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है।

चिकित्सा—शोथ को घुलाने के लिए इक्थियाल बेलाडोना प्लास्टर बहुत उपयोगी है। रुग्ण पशु को मे० एण्ड बेकर के नेप्टाल (Neptal) की दो गोलियाँ दिन में दो-तीन बार खिलायें या नेफ्रिल (Nephril) की दो गोलियाँ तथा ग्लैक्सो के फर्सोलेट की २ गोलियाँ दिन में दो बार खिलायें।

चोट से शोथ हो जाने की अवस्था में टेरामाइसिन का अण्डकोष में इन्जेक्शन लगायें और इसी की गोलियाँ खिलायें।

सुहृद गेगी के सुगेन्रिल (Suganril) की २ से ४ गोलियाँ या बी० डब्लू० के सेप्ट्रान (Septran) की १-२ गोलियाँ प्रतिदिन चारा में मिलाकर खिलायें।

यदि सूजन के बाद अण्डकोषों में पानी भर जाय, यानी पशु को हाइड्रोसील रोग हो जाय तो पशु को सरकारी पशु-चिकित्सालय में ले जाकर अण्डकोष का आपरेशन करवा दें।

रक्त के श्वेतकणों का आधिक्य
(Leukaemia)

श्वेतरक्तता या रक्त के श्वेतकणों की अधिकता पशुओं का एक घातक रोग है। दूध देनेवाले पशु, घोड़े, भेड़, बकरियाँ और कुत्ते इस रोग से पीड़ित होते हैं।

लक्षण—इस रोग के दो प्रमुख भेद हैं—

(१) जिसमें लिम्फ ग्लैण्ड और प्लीहा पीड़ित होकर बढ़ जाती हैं।

(२) जिसमें अस्थियों की मज्जा पीड़ित होती है।

यह रोग प्रायः राजस्थान में होता है। आरम्भ में लिम्फनोड (Lymph-node) और प्लीहा (Spleen) बढ़ने लगते हैं। फिर श्लेष्मिककला पीली और मंद पड़ जाती है। पशु को सांस लेने में कठिनता, निर्बलता, पाचन-क्रिया विकृति, क्षुधामान्द्य, यकृत-क्रिया-विकृति आदि विकार होते हैं। पिछले पैरों में प्रायः पक्षाघात-सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त निर्बलता, हृत्कम्प-वृद्धि, भार में कमी, मस्तक में चक्कर, पीलापन, मसूढ़ों, नाक, आमाशय, आँत, त्वचा के नीचे से रक्तस्राव होता है। यदि रक्तस्राव मस्तिष्क में हो, तो पशु की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। रोग की तीव्रावस्था में तीव्र ज्वर और लिम्फैटिक ग्रन्थियाँ बढ़ जाती हैं। यह रोग क्रमशः धीरे-धीरे बढ़ता है। उपचार न करने पर पशु तीन वर्ष में मर जाता है।

चिकित्सा—कणात्मक ल्यूकोमिया में माइलेरन (Mylaran) १५ से २५ मि० ग्राम आरम्भ में १० दिन तक और फिर उसके पश्चात् ३२ से ४५ मिग्रा० प्रतिदिन खिलायें।

क्रानिक लिम्फोसायटिक ल्यूकीमिया में आरम्भ में प्लीहा बढ़ने की अवस्था में टेम (Tem) पानी से दें और फिर कार्टिका स्टेराइड्स तुल्य दवा जैसे—प्रेडनीसोन (Prednisone) ५० से १०० मि० ग्रा० प्रतिदिन चारा में मिलाकर खिलायें। तीव्र ल्यूकीमिया में एमीनोप्टेरिन २ से ५ मि०ग्राम या ए-मेथोप्टेरिन १० से ५० मि० ग्राम चारा में खिलायें। यदि इनसे लाभ न हो तो ६—मर्कप्टोप्यूरिन (6—M. P.) २·५ मि० ग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार चारा में मिलाकर खिलाते रहें। डेकाड्रोन और प्रेडनीसोलोन भी लाभदायक हैं।

आर्सेनिक (संखिया) के मिश्रण और बेंजोल (Benzol) का प्रयोग लाभदायक है। ½ ग्राम से १ ग्राम तक बेन्जोल तेल कैपसूल में भरकर प्रयोग करायें। पशु को विश्राम दें और उचित आहार की ओर ध्यान दें।

कुछ रुग्ण पशुओं के एक्स-रे में प्लीहा को रखकर किरण लगाना लाभदायक होता है। एक्स-रे की जगह रेडियो फास्फारस (P_{32}) का प्रयोग किया जाता है। रेडियो फास्फोरस को सोडियम एसिड फास्फेट के रूप में तैयार करके उचित मात्रा में प्रातः चारा खाने के तीन घंटे बाद खिलाकर फिर घंटा भर कोई चारा

नहीं दिया जाता। तब यह दवा अपना प्रभाव करती है। प्रति मास रक्त का परीक्षण किया जाता है। प्रतिवर्ष ३-४ मात्रा देना पर्याप्त है।

आधुनिक चिकित्सा-अनुसंधान के अनुसार कोर्टिकोस्टेराइड जैसे—ए० सी० टी० एच० कार्टिजन या प्रेडनीसोलोन तथा ६—मर्केप्टो—प्यूरिन को मिलाकर एक साथ प्रतिदिन प्रयोग करना विशेष लाभप्रद है। इस प्रयोग से मरणासन्न पशु का जीवन ९ मास से २ वर्ष तक खींचकर बढ़ाया जा सकता है। रुग्ण पशु को सदैव हवादार प्राकृतिक रूप से रमणीक भूमि पर स्थित प्रकोष्ठ में रखना चाहिए।

लिस्टेरिओसिस
(Listeriosis)

लिस्टेरिया मोनोसाइजेनिस नामक कीटाणुओं के संक्रमण से कभी-कभी पशुओं को लिस्टेरिओसिस रोग हो जाता है।

लक्षण—मेनिंगो इनसेफेलाइटिस, चक्कर आना, सिर दबा हुआ रहना, पशु का सुस्त-शिथिल दीखना, गर्भपात होना, कभी-कभी तीव्र दोषमयता (सेप्टिसीमिया) प्रगट होना आदि इस रोग के सामान्य लक्षण हैं। निश्चयात्मक निदान के लिए मस्तिष्क को एच० पी० परीक्षा करनी अत्यावश्यक है।

चिकित्सा—प्रारम्भिक अवस्था में सारामाई का डाइक्रिस्टिसिन १ से २ ग्राम या फाईजर का काम्बायोटिक या स्ट्रेप्टोपेनसिलीन १ से २ ग्राम की मांस में सुई लगायें तथा क्लोर टेट्रासाइक्लिन जैसे सायनेमिड का औरियोमाइसिन की गोलियाँ या सोल्यूबल पाउडर या न्यूट्रिशनल पाउडर यथोचित मात्रा में खिलायें।

वंध्यत्व (बाँझपन)
(Sterility or Infertility)

वंध्यत्व दोष नर और मादा दोनों लिंगों के पशुओं के विकार से उत्पन्न हो सकता है। यों तो वंध्यत्व का कारण बहुत-से रोग हो सकते हैं, किन्तु तीन कारण इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय हैं —

(१) कण्टेजियस एबॉर्शन (Contagious Abortion),

(२) ट्रीकोमोनियासिस (Trichomoniasis),

(३) वाइब्रियोसिस (Vibriosis) कीटाणु ।

तथापि जिस कारण से यह रोग हो उसके निराकरण का उपाय करें और अन्य पशुओं को इसके संक्रमण से बचायें ।

बंध्यत्व चार प्रकार के होते हैं—

(१) जन्मजात विकृति और वंशपरम्परागत बंध्यत्व—जैसे नर में वृषणों का न उतरना आदि तथा मादा में गर्भाशय का न होना या उल्टा होना ।

(२) हारमोन की न्यूनता से बंध्यत्व—पशुओं में थायराइड, एड्रिनेल्स और गोनोड्स नामक अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के हारमोन्स, जिनमें प्रथम दो जो मादा के गर्भाशय में रहते हैं और अंतिम जो नर की अण्डग्रन्थियों में रहते हैं—की न्यूनता से भी संतति उत्पत्ति मे व्याघात होता है । आई० सी० एस० एच० की न्यूनता हो जाने से साँड़ों की सम्भोग शक्ति कम हो जाती है । एफ० एस० एच० के घटने से साँड़ में वीर्य-उत्पत्ति नहीं होती ।

मादा पशुओं में भी अंतःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव की कमी से गर्भाशय छोटा होने के कारण फालिक्स पूर्ण परिपक्व नहीं हो पाते । ऐसी अवस्था में गर्भवती घोड़ी का सीरम अर्थात् गानॅडाट्रोफिक हारमोन एक हजार से डेढ़ हजार यूनिट मादा पशु को इन्जक्शन लगाने से ३ से ५ दिन में ओस्ट्रस उत्पन्न होने लग जाता है और मादा पशु को गर्भ हो जाता है ।

(३) संक्रमणजन्य बंध्यत्व—पशु की जननेन्द्रिय में संक्रामक रोगों के कीटाणु प्रविष्ट हो जाने पर संतानोत्पादन शक्ति का ह्रास हो जाता है । यह कीटाणु वहाँ पहुँचकर अनेक विकार उत्पन्न कर देते हैं, जिसके कारण नर और मादा पशु में सन्तानोत्पादन-क्षमता न्यून हो जाती है ।

रोग का संक्रमण नारी पशु की योनि में होने से योनिशोथ, गर्भाशय-ग्रीवा में होने से गर्भाशय-ग्रीवा-शोथ, गर्भाशय के अन्दर होने से गर्भाशय शोथ आदि रोग हो जाते हैं । गर्भाशय की भीतरी झिल्ली की शोथ (Endometritis) को प्रारम्भिक रोग अवस्था में श्लेष्मिक स्राव थोड़ा पूयमय रहता है । यह स्थिति बहुत हानिकर है । इस अवस्था में ४०० शक्ति के लुगोल सोल्यूशन (Lugol's

solution) का गर्भाशय में डूश करने से समस्त कष्ट मिट जाते हैं। लुगोल विलयन का योग निम्नांकित है :—

आयोडीन २ ग्राम, पोटासियम आयोडाइड ३ ग्राम, डिस्टिलवाटर ८० मि० लि०—यह सान्द्र विलयन है और इस आयतन में २० गुना परिश्रुतजल मिलाकर शरीर तापक्रम के समान गर्म करके इन्जेक्शन द्वारा प्रयोग कर सकते हैं। टेरामाइसिन का इन्जेक्शन भी लाभदायक है।

गर्भाशय में मवाद होने पर 'बी० आई० पी० पी०' नामक पेस्ट गर्भाशय में लगाना भी गुणकारी है। इसका योग इस प्रकार है—आयाडोफार्म २० ग्राम, बिस्मथ सबनाइट्रेट १० ग्राम, लिक्विड पैराफीन १००० मि० लि०—तीनों को मिलाकर प्रयोग करें। इसके साथ ही स्टिल बोएस्ट्रोल (Stil Bostrol) हारमोन को २० से २५ मि० ग्राम की मात्रा में प्रयोग करना भी बहुत लाभकारी है। इसके प्रयोग के पश्चात् ओरियोमाइसिन, टेरामाइसिन तथा पेनीसिलीन का इन्जेक्शन या मुख से खिलाने का प्रयोग भी प्रतिदिन करें।

कीटाणुओं के संक्रमण से उत्पन्न बंध्यत्व में स्ट्रेप्टोमाईसिन, सल्फेट वायोसिन, पी० ए० एस०, काम्बायोटिक, पेनीसिलीन आदि दवाओं का प्रयोग करें।

(४) पोषण की न्यूनता के बंध्यत्व—पशुओं को पौष्टिक आहार की कमी से उनकी जननेन्द्रियों की वृद्धि तथा उनमें सन्तानोत्पादन क्रिया को सम्यक्रूपेण संचालित करने म बाधा पहुँचती है। प्रोटीन, खनिज पदार्थ, आवश्यक पोषक तत्व, विटामिन्स पशुओं के विशेषतः नारी पशुओं के चारा व पानी में पर्याप्त मात्रा में होने आवश्यक है। इनकी न्यूनता से रक्ताल्पता और शक्तिहीनता के कारण नारी पशु बंध्या हो जाती है। प्रोटीन विशेषकर जान्तव प्रोटीन नर-पशुओं में वीर्य को पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न करने तथा मैथुनशक्ति बढ़ाने के लिए आवश्यक है। संतुलित आहार यथावश्यक मात्रा में देना चाहिए, जिससे उनका समुचित विकास हो सके।

इसके अतिरिक्त ग्लैक्सो का विटा-ब्लेड २० ग्राम को १ क्विन्टल (१०० किलो) चारा में मिलाकर खिलाते रहें—जिससे विटामिन ए और डी$_3$ की कमी

की पूर्ति हो सके। फाईजर के विटामिन्स एम को आवश्यक मात्रा में खिलाना भी लाभदायक है। नारी पशु को विटामिन ई या वीट जर्म आयल भी पर्याप्त मात्रा में खिलाना आवश्यक है।

सार--संक्षिप्त यह है कि नर और नारी पशु को भली-भांति जांचने के बाद उनमें जो विकृतियाँ, दोष या न्यूनता हों उनका उपचार करें। तब नारी पशु को स्वस्थ और सबल नर पशु से सहवास करायें या कृत्रिम विधि से गर्भाधान करायें।

गाय-भैंस की प्रजनन-शक्ति वृद्धि हेतु
(To Increase Breedability of Cow And Buffaloes)

प्रजनन अंगों के अविकसित रहने, हार्मोन की न्यूनता, गर्भाशय में विकार और त्रुटिपूर्ण बनावट, डिम्बग्रन्थियों के उचित रूप से कार्य न करने के कारण नारी पशुओं में बंध्यत्व दोष आ जाता है। अतः बड़ी सजगता से इनकी जांच करके प्रत्येक सम्भव यत्न से इनका निराकरण करना चाहिए और तब निम्नांकित औषधियों के प्रयोग से उनमें कामोत्तेजना उत्पन्न कर उन्हें प्रजनन के योग्य बनाना चाहिए।

चिकित्सा—जो पशु ठीक समय पर गाभिन नहीं होते तथा समय पर गर्भधारण नहीं करते उन्हें बी० बी० वो० का बांझना प्रयोग कराना बहुत लाभप्रद है। गाय व भैंस का ३ कैपसूल तथा भेड़ और बकरी को १ कैपसूल प्रतिदिन तीन दिन तक गुड़ के अन्दर भरकर खिलायें। यदि २४ घंटे में पशु में गर्मी न आये तो दुबारा दें। ऐसा देखा गया है कि इसके प्रयोग से पशु २४ घंटे से लेकर २१ दिन के अन्दर कभी भी गर्मी में आ सकता है।

इन्डियन हर्ब्स का प्रजना गाय और भैंस को ३ कैपसूल दें। यदि २४ घंटे के बाद कामोत्तेजना का कोई लक्षण न दीख पड़े तो दुबारा यही मात्रा दें।

कोकु-प्लस (Cocu-Plus)—एक गोली दिन में दो बार निरन्तर १५ दिन तक खिलाने से मादा पशु में उत्तेजना आ जाती है।

एलार्सिन का एग्रोज कम्पाउण्ड १० गोलियाँ प्रतिदिन दो बार करके १०-१५ दिन तक देना लाभप्रद है।

हैक्स्ट का टोनोफोस्फान इन्जेक्शन १० मिलि० का सप्ताह में दो बार लगायें तथा इसके साथ-साथ ग्लैक्सो के प्रिपेलीन फोर्ट ६ मि० लि० का या वीटासेल ५ एम. एल का एकदिन नागा देकर मांस में सप्ताह में तीन बार इन्जेक्शन लगायें। पशु के नारी रोग विशेषज्ञ चिकित्सक के परामर्शानुसार पशु के अण्डाशय एवं गर्भाशय प्रदेश पर विधिवत् मालिश करें।

एरीज मिनरल मिक्सचर (Aries Mineral Mixture) ३० ग्राम, ग्लैक्सो का विटा ब्लेण्ड ए डी$_3$ (Vitablend A D$_3$) ५ ग्राम एकत्र मिलाकर प्रतिदिन चारा में मिलाकर १५ दिन तक खिलायें। फेर्टिवेट (Fertivet (Az-Ex) ३०० मिग्रा० प्रतिदिन ५ दिन तक देते रहें। विशेषज्ञ से परामर्श लेकर हार्मोन द्वारा चिकित्सा करें। इसके लिए एम० एड० बी० का वेटस्ट्राल इन्जेक्शन लगायें, उत्तेजना आने पर नर पशु से मिलायें या कृत्रिम गर्भाधान करायें।

उत्तम श्रेणी के पशु-शावक जनन

(For Maintenance of optimum Breeding)

उत्तम श्रेणी के बच्चे उत्पन्न करने के लिए नर पशु (सांड, भैंसा, घोड़ा आदि) को निम्नलिखित औषधियों के प्रयोग से उनका वीर्य सुपुष्ट, स्वस्थ, शक्तिशाली और क्रियाशील होकर सुन्दर और हृष्टपुष्ट शावक उत्पन्न होते हैं।

चिकित्सा—एलार्सिन के फोर्टेज की १० गोलियाँ दिन में दो बार १५ दिन तक और उसके बाद १० गोलियाँ दिन में एक बार एक मास तक दें।

यूनि० आयु० का सेक्सोना साँड़ को ४० से ५० ग्राम तथा घोड़े को ३० ग्राम प्रतिदिन ४० दिन तक खिलायें।

हिमालया ड्रग का जेरीफार्ट (Geriforte) विशेषकर अजायबघर के साँड़ को या घोड़ा को ३० से ४० ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन एक दो-बार १५ से ४० दिन तक दें।

हिमालया ड्रग का स्पीमेन या स्पीमेन फोर्ट पाउडर १२ ग्राम प्रतिदिन एक-दो बार ४० दिन तक खिलायें।

हैक्स्ट के टोनोफास्फान १० से २० मिलि० का मांस में इन्जेक्शन सप्ताह में दो बार चार सप्ताह तक लगाते रहें।

इण्डियन हर्ब्स का सैक्सोम साँड़ को ४० से ५० ग्राम प्रतिदिन ४० दिन तक तथा घोड़ा को ३० ग्राम प्रतिदिन ४० दिन तक खिलाते रहें।

हिमालया ड्रग का टेण्टेक्स फोर्ट १५ से २० ग्राम प्रतिदिन ४० दिन तक खिलायें।

बी० बी० बी० का रतराज बड़े आकार के साँड़ को ३० से ४० ग्राम, मध्यम आकार के साँड़ को २५ से ३० ग्राम, घोड़ा को २० से ३० ग्राम, भेड़ा और हिरन को ४ से ६ ग्राम, सुअर को ८ से १२ ग्राम, कुत्ता को ४ से ५ ग्राम तथा बकरा को ५ से ७ ग्राम दवा शीरे या गुड़ में मिलाकर प्रतिदिन एकबार महीने भर तक दें। इन दवाओं के साथ स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए हिमालया बत्तीसा या बी० बी० बी०का हरमिन्सा यथोचित मात्रा में प्रतिदिन प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होता है।

दूध की कमी
(Agalactia)

यों तो सभी दुधारू पशुओं को यह रोग हो सकता है। किन्तु गायों, भैंसों और बकरियों का इस व्याधि से ग्रस्त हो जाना हानि का कारण होता है।

कारण—समुचित आहार का अभाव, शारीरिक निर्बलता, पशु का बहुत दिनों तक किसी रोग से पीड़ित रहना, कुछ संक्रामक रोग विशेषकर थनपका इत्यादि इस रोग के कारण हो सकते हैं।

लक्षण—पशु अपनी निश्चित मात्रा से कम दूध देता है या आरम्भ से ही पशु में दूध की कमी पाई जाती है। यदि थनपका या किसी अन्य कीटाणुजन्य रोग के कारण थन में कष्ट हो तो शोथ, दूध में पीप, रक्त और पीले पानी का मिश्रण इसका साक्षी होता है।

चिकित्सा—जिस मूल कारण से यह रोग हो पहले उसे दूर करें। यदि कोई कीटाणुजन्य रोग इसका कारण हो तो पूर्णरूप से उसका उपचार करें। यदि थनपका के कारण थनों से रक्त और पीप आ रही हो तो प्रोकेन पेनीसिलीन जी ५० हजार यूनिट डिस्टिल्ड वाटर ५० मिलि० में मिलाकर सायंकाल दूध दुहने के बाद ४ दिन तक लगातार थन में इन्जेक्शन करें। यदि इससे आराम न हो तो उक्त सोल्यूशन में डाईहाइड्रो स्ट्रेप्टोमाइसिन १०० मिग्रा० बढ़ा लें। टेरामाइसिन का इन्जेक्शन मांस में लगायें।

एरिस का बून-ओ-मिल्क (Boon-O-Milk) चारा में ०·५% अर्थात् प्रतिदिन के चारा में २० ग्राम मिलाकर खिलायें। एरीज मिनरल मिक्सचर ३० ग्राम प्रतिदिन चारा में दें। साराभाई का मिल्कामिन १ किलो दवा १०० किलो चारा में मिलाकर खिलायें। आई० सी० आई० का एब्लोमिन पशु को ३० ग्राम प्रतिदिन के चारा में मिलाकर दें। ये सब मिनरल मिक्सचर हैं।

या पशु को हृष्ट-पुष्ट करने और दूध बढ़ाने के लिए उसे सुपर मिनडिफ (Supper Mindif—बूट्स कं० निर्मित) प्रयोग करायें। टी० एम० ५ (T. M. 5.--फाईजर निर्मित) दो चम्मच भर चारा में मिलाकर खिलायें।

वाक हर्ट का टोनालान (Tonolan) २० ग्राम प्रतिदिन चारा में मिलाकर ३० दिन तक खिलायें या इन्डियन हर्ब्स का गेलोग (Golog) २५ से ५० ग्राम प्रतिदिन चारा में मिलाकर ३० दिन तक दें।

एथिकेर का मिल्कमेक्स ५० ग्राम प्रतिदिन चारा में मिलाकर एक सप्ताह खिलायें या यूनि० आयुर्वेद के मोरोलेक (Morolac) की १० गोलियाँ दिन में दो बार १० दिन तक खिलायें या चरक का गोलाकोल ग्रेन्यूल्स (Golakol Granules) २५ से ५० ग्राम प्रतिदिन दो बार दें।

एलार्सिन के लेप्टाडेन की १० गोलियां प्रतिदिन दो बार १० दिन तक खिलाने से सभी कष्ट दूर होकर दुग्ध-वृद्धि होती है।

एफाली का वेटिल्क (Vetilk) ५० ग्राम प्रतिदिन २० दिन तक देने से दूध की कमी दूर होती है और गर्भाशय को शक्ति मिलती है।

गला खराब होना

इस रोग में अचानक ज्वर चढ़ आता है। आँख और नाक से पानी बहने आ लग जाता है। भूख नष्ट हो जाती है। पशु का दूध घट जाता है।

फाईजर का एनोरेक्सोन (Anorexon) चारा-पानी देने से पूर्व ४ गोलियाँ खिलायें। फाईजर का ही टी० एम० फोर्ट (T. M. Forte) ५-५ ग्राम चारा में मिलाकर खिलाते रहें। फाईजर का विटामिन-एम चारा के साथ मिलाकर खिलाना बहुत लाभप्रद है।

कैलपोल (Calpol) एक गोली तथा सेलिन (Celin) ५०० मिग्रा० की एक गोली दोनों को मिलाकर प्रति ४ घण्टे के अन्तर से खिलायें।

साराभाई के डाइक्रिस्टिसोन की ½ से २½ ग्राम की मात्रा में मांस में सुई प्रति १२ घण्टे बाद लगायें तथा हेवन्स की एविल १० एम० एल० भी मांस में लगावें।

दांतों व दाढ़ की अनियमित वृद्धि

(Irregular Teeth)

यह रोग सामान्यतः बूढ़े पशुओं को हो जाता है। उनके दांत ऊँचे-नीचे तथा दाढ़ें वढ़ जाती हैं, जिससे पशु को चारा खाने में बहुत कष्ट होता है। पशु चारे को दांतों से भली प्रकार चबा नहीं पाता, जिससे गोबर के साथ मोटा और समूचा चारा निकलता है और पशु दिनों-दिन दुर्बल होता जाता है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा के लिए पशु को किसी डाक्टर के पास ले जाकर रेती से उसके दांत रित कर समतल करवा देना चाहिए और बढ़े हुए दांत निकलवा देना चाहिए।

विभिन्न पशुओं के कुछ विशिष्ट रोग
(Some special diseases in Diffrent kinds of Animals)

बछरे-बछियों के रोग

खेरवान रोग
(Kherwan Disease)

यह रोग विशेषकर ९ मास से डेढ़ वर्ष के बछड़ों को होता है।

लक्षण—पशु बहुत दुर्बल हो जाता है तथा पतले दस्त आते हैं। पशु को पिछले पेर और पूंछ में सुई चुभाने से कष्ट प्रतीत नहीं होता। शरीर के तापक्रम में प्रायः वृद्धि नहीं होती है। पशु एक सप्ताह तक रोगाक्रांत रहता है।

चिकित्सा—औरियोमाइसिन सोल्यूबल पाउडर एक छोटा चम्मच प्रति १० लि० जल में मिलाकर दिन में दो बार पिलायें।

हैक्स्ट का होस्टासाइक्लिन (Hostacycline) सोल्युबल पाउडर या साराभाई का स्टेक्लिन (Steclin) ग्रेन्युल्स २५ से ३० ग्राम प्रति दिन करके तीन दिन तक खिलायें।

फाईजर का घुलनशील टेरामाइसिन पाउडर होस्टासाइक्लिन की तरह प्रयोग करना भी लाभप्रद है।

टेरामाइसिन की गहरे मांस में सुई लगायें।

सल्फेट ओबलेट प्रतिदिन दो बार खिलाये।

बछड़े-बछियों का गलाघोंटू रोग

बछड़े-बछियों का गलाघोंटू रोग मुख और गले का भयंकर संक्रामक रोग है। कभी-कभी उत्पन्न होने के तीन दिन बाद ही बछड़े-बछिया इस रोग से पीड़ित हो जाते हैं।

लक्षण—रुग्ण बछड़े-बछिया शिथिल-सुस्त हो जाते हैं और भूख नष्ट हो जाती है। १०४° फारेनहाइट तक ज्वर हो जाता है। मुंह की झिल्ली में शोथ हो जाती है। यह शोथ जीभ तथा गले के भीतरी भाग में भी हो जाती है, वहाँ से वह

और भी भीतर तक फैल सकती है। नाक से पीले रंग का स्राव बहने लगता है और मुंह से लार टपकने लगती है। ओठों, मसूढ़ों और मुख के भीतरी भाग पर लाल दाने और भूरे-पीले रंग के छाले हो जाते हैं। आँतों में इसके विष का असर पड़ने पर मरोड़ होने लगती है।

चिकित्सा—रोग के प्रारम्भ में सल्फापायरीन वा सल्फामेराजीन १ ग्राम प्रतिदिन खिलाना लाभप्रद है।

मुँह के फफोलों पर रेक्टिफाइड स्प्रिट या बोरोग्लीसरीन से बना टिंचर आयोडीन लगायें।

तीव्र अवस्था में सायनेमिड का एक्रोमाइसिन (Achromycin) का इन्जेक्शन गहरे मांस में लगाना लाभदायक है।

साराभाई के आक्सीस्टेक्लिन या स्ट्रेक्लिन ५०० मिग्रा० या वाकहर्ट के वोलिसाइक्लिन (Wolicycline) २ से ५ मिग्रा० प्रतिकिलो शारीरिक भार के अनुपात से मांस में सुई लगायें।

हैक्स्ट के होस्टासाइक्लिन सोल्युबल पाउडर ३ से १० मिग्रा० प्रति किलो शरीर भार के अनुसार पानी में घोलकर पिलायें।

बछड़े-बछियों का नाभि रोग

बछड़े-बछियों का नाभि रोग उनके उत्पन्न होने के समय या कुछ समय पश्चात् एक प्रकार के संक्रामक कीटाणुओं के नाभि से होकर रक्त में प्रविष्ट हो जाने से उत्पन्न होता है।

लक्षण—बछड़े-बछियों की नाभि में शोथ आ जाती है। उससे दुर्गन्धित स्राव होने लगता है। ज्वर, सुस्ती और निर्बलता होती है। रुग्ण पशु दिन भर लेटा रहता है। इस रोग के कीटाणु यकृत और भिन्न संधियों में प्रविष्ट होकर कष्ट उत्पन्न करते हैं। संधियों में शोथ होकर वे कठोर हो जाती और उनमें पीड़ा होने लगती है। अत्यधिक निर्बलता और पीड़ा के कारण पशु अधिक देर तक खड़ा नहीं रह सकता।

सुरक्षा—जब गाय व्याने लगे तो उसे कीटाणुनाशक औषधि छिड़ककर स्वच्छ स्थान पर ले जायें। व्याने के समय स्वच्छता पर विशेष ध्यान दें। उस स्थान पर फिनाइल का छिड़काव कर दें।

चिकित्सा—छोटे बछड़े-बछियों की नाल पर टिंचर आयोडिन लगाकर आयोडिन में कपड़ा भिगोकर बांध दें। नाल गिरने तक उन्हें स्वच्छ कीटाणु-रहित किये गये स्थान पर बांधें। जेन्टियन वायलेट लगाना भी लाभप्रद है।

रुग्ण पशु को टेरामाइसिन या पेनीसिलीन का इन्जेक्शन १२ या २४ घंटे बाद लगायें।

फाईजर का काम्बायोटिक ब्रेटरनरो ½ ग्राम प्रतिदिन या आवश्यकतानुसार १२-१२ घंटे बाद मांस में इन्जेक्शन लगाना लाभदायक है।

फाईजर का प्रोनापेन बछड़े को ४ से १० लाख यूनिट की मांस में सुई प्रतिदिन ३ से ६ दिन लगायें। यदि वेदना भी हो तो हैक्स्ट के ओम्नामाइसिन ४ से १० लाख यूनिट की मांस में सुई लगायें।

साराभाई के क्रिसफोर की उपर्युक्त मात्रा में प्रतिदिन मांस में इन्जेक्शन लगाना भी लाभप्रद है।

बछड़ों की नाभिशोथ

कभी-कभी बछड़ों को नाभि में सूजन हो जाता है। छूने से या यों ही इसमें पीड़ा होती है, जिससे बछड़ा छटपटाता रहता है। कुछ समय पश्चात शोथवाला स्थान नर्म हो जाता है और उस स्थान को दबाने पर रक्तयुक्त पीप निकलती है। बछड़ा शिथिल और उदास रहता, उसे हल्का-सा ज्वर रहता है।

चिकित्सा—शोथयुक्त स्थान को प्रतिदिन दो बार नीम की पत्तियाँ डालकर उबाले हुए पानी से सेंकना चाहिए। जब घाव का मुंह खुल जाये तो उसके अन्दर की पीप और दूषित स्राव को भली-भांति निकालकर और पोंछकर घाव को भली-भांति साफ कर देना चाहिए। फिर उसके भीतर सिबाजोल पाउडर को भरकर चिपकने वाला प्लास्टर लगा देना चाहिए। जबतक घाव भली-भांति ठीक होकर भर न जाय तबतक यह क्रिया करते रहना चाहिए।

घाव को शीघ्र अच्छा करने के लिए साराभाई के डाइक्रिस्टिसिन या ग्लैक्सो के म्यूनोमाइसिन या हैक्स्ट के ओम्नामाइसिन या फाईजर के काम्ब्रायोटिक या एलेम्बिक के बिस्ट्रेपन में से किसी भी एक दवा को १ ग्राम की मात्रा में मांस में इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

बछड़े-बछियों का उदर-मरोड़

अजीर्ण और आंत्रशोथ के कारण प्रत्येक आयु के बछड़ों-बछियों को उदर में ऐंठन-मरोड़ का रोग हो जाता है। जिससे उन्हें अतिसार हो जाता है और वे दिनों-दिन दुर्बल होते जाते हैं।

लक्षण—मरोड़ आने से पूर्व रुग्ण बछड़े-बछियों का तापक्रम बढ़ जाता है। वह शिथिल और विकल हो जाते हैं। खाना-पीना अच्छा नहीं लगता। दो-चार दिन के अन्दर ही बछड़े-बछियों को दुर्गन्धित दस्त आने लगते हैं। समस्त शरीर ठंडा हो जाता है, नेत्रों की चमक चली जाती है, नेत्र अन्दर धँस जाते हैं। दुर्बलता के कारण वे खड़े नहीं हो पाते, उनके पेट में मरोड़ उठती रहती है।

चिकित्सा—रुग्ण पशु-शावकों को कुछ भी चारा-दाना न देकर १२ घंटे भूखा रखें। तत्पश्चात् ४ से ६ औंस स्वच्छ कैस्टर आयल का सौम्य विरेचन दें। इसके पश्चात् आधे पाइन्ट पानी में एक औंस सोडाबाईकार्ब बी० पी० मिलाकर पिलायें।

जितना दूध वे पीते रहे हों उसकी आधी मात्रा में उसमें उतना ही गर्म पानी और ५०-६० ग्राम चूने का पानी मिलाकर पिलायें।

रोग का आक्रमण होते ही तीन-चार दिन तक सल्फामेराजीन या सल्फामेथाजीन (Sulphamathazine) २४ घंटे के अंतर से देना बहुत लाभकारी है। पहली मात्रा पशु को प्रति १० पौंड शारीरिक भार पर १ ग्राम की दर से दें। उसके पश्चात् प्रति १५ पौंड शरीर-भार पर १ ग्राम के हिसाब से दवा खिलायें।

टेरामाइसिन का मांस में गहरा इन्जेक्शन लगायें।

पार्क डेविस के क्लोरोस्ट्रेप (Chlorostrep) कैपसूल और सस्पेंशन उचित मात्रा में बछड़े-बछियों को प्रति ६ घण्टे पश्चात् दें।

साराभाई के डाइक्रिस्टिन १ ग्राम की सुई मांस में प्रतिदिन लगावें।

नवजात गोशावक का मलावरोध

बछड़ा-बछिया को यदि पैदा होने के बाद मल नहीं आता तो उसे कोष्टबद्धता होने की आशंका रहती है। एतदर्थ निम्नांकित उपचारों से उसका मल-त्याग करायें—

चिकित्सा—गुदा-मार्ग में ग्लीसरीन की बत्ती प्रविष्ट करें। २००-२५० ग्राम गर्म दूध में ५०-६० ग्राम लिक्विड पेराफीन मिलाकर पिलायें।

साबुन को गर्म पानी में घोलकर एनिमा दें।

बकरियों के कुछ विशेष रोग

(बकरियों का प्लूरो न्युमोनिया)

न्युमोनिया यानी फुफ्फुसशोथ मनुष्य तथा पशु दोनों के लिए समान रूप से भयंकर रोग है, जिसकी चिकित्सा में विलम्ब प्राणघातक सिद्ध होता है। प्रायः जुकाम, खांसी के बाद न्युमोनिया हो जाता है। बकरियों को न्युमोनिया हो जाने पर ज्वर और खांसी के साथ छाती में दर्द, नाक से दुर्गन्धित स्राव, दबाने से छाती में दर्द आदि कष्ट होते हैं।

चिकित्सा—गम्भीर अवस्था में सायनेमिड के एक्रोमाइसिन का ७ से ११ मि० ग्राम प्रतिकिलो ग्राम शरीर-भार के अनुपात से मांस में प्रतिदिन इन्जेक्शन लगायें। साथ ही सायनेमिड के सल्मेट की आधी गोली दिन में दो-तीन बार चारा में मिलाकर खिलायें।

टायलोसिन टारट्रेट (Tylosin Tartarate) २ से ५ मि०ग्राम प्रति आधा किलो ग्राम के अनुपात से मांस में सुई प्रति ६ घंटे बाद लगायें।

टी० सी० एफ० का वेटीसेटीन (Vetycetin) तथा एरिथ्रोमाइसिन (Erythromycin) या साराभाई का आक्सीस्टेक्लिन उचित मात्रा में देना लाभप्रद है।

बकरियों का लँगड़ाना

लक्षण—बकरी के शरीर के किसी भाग पर आ जाती है। उसे दबाने पर चटखने का शब्द होता है। तेज ज्वर हो जाता है, पैरों में लँगड़ापन आ जाता है और पशु में व्याकुलता लक्षित होती है।

सुरक्षा—इस रोग की ऋतु आरम्भ होने से प्रथम सभी बकरियों को इन्जेक्शन लगवा दें। उनके स्थान पर स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें। प्रतिदिन कोई कीटाणुनाशक दवा जैसे फिनाइल या डेटाल या लोरेक्सेन डस्टिंग पाउडर छिड़कें। रुग्ण बकरियों को अधिक चलने-फिरने न दें।

चिकित्सा—आई० सी० आई० का चर्न १०५ मिनरल सप्लीमेण्ट (Churn-105 Mineral supplement) चारा में मिलाकर प्रतिदिन खिलायें।

फाईजर के काम्बायोटिक (Combiotic) का एक ग्राम का इन्जेक्शन प्रतिदिन लगाना लाभप्रद है।

मे० एण्ड बेकर के वेसाडिन (Vesadin) का इन्जेक्शन गहरे मांस में लगायें।

बकरियों का आंगार व्रण
(Anthrax)

आंगार व्रण (Anthrax) एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं से उत्पन्न होने-वाला संक्रामक रोग है, जिसमें बकरी पगुराना व चारा खाना बन्द कर देती है। तीव्र ज्वर, कम्पन, उत्तेजना और पार्श्वशूल होता है। मुँह, नाक, कान आदि से रक्त आता है। अवस्था गम्भीर होने पर बकरी मर जाती है।

सुरक्षा—सभी बकरियों को एन्थ्रेक्स का इन्जेक्शन लगवा दें। जिन चारागाहों से इस रोग का प्रसार हुआ हो, उन्हें मिट्टी पलटनेवाले हल से गहरा जोतकर दो महीने तक खाली छोड़ दें। इस रोग से ग्रस्त बकरियों के मर जाने पर उनके शवों को तुरन्त जला दें या ५-६ फुट गहरे गड्ढे में गाड़ दें और ऊपर से चूना-मिट्टी डाल दें।

चिकित्सा—साराभाई के क्रिसफोर या फाईजर के प्रोनापेन ४ से ८ और १२ लाख यूनिट की मांस में सुई लगायें।

सायनेमिड के एक्रोमाइसिन २ से ४ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार प्रतिदिन गहरे मांस में सुई लगायें। साथ ही फाईजर के टेरामाइसिन की आधी से लेकर २ गोलियां दिन में एक-दो बार खिलायें या ५०० मि० ग्राम ऐम्पिसिलिन की सुई हर छः घन्टे पर मांस में लगायें।

भेड़-बकरियों का संक्रामक गर्भपात
(Contagious Abortion or Meditaranian Fever)

गोपशुओं के संक्रामक गर्भपात के समान ही भेड़-बकरियों के गर्भपात के इस रोग में भेड़-बकरियाँ विशेषकर बकरियाँ अधिक पीड़ित होती हैं। इस रोग की उत्पत्ति के मूल कारण एक विशेष प्रकार के कीटाणु हैं। ये कीटाणु खाने-पीने की वस्तुओं द्वारा या घाव-चोट के व्रण द्वारा या रुग्ण नर पशु की जननेन्द्रिय द्वारा भेड़-बकरियों में यह रोग उत्पन्न करते हैं।

लक्षण—गोपशुओं के संक्रामक गर्भपात के समान ही भेड़-बकरियों में भी इस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं और उसी प्रकार उनका भी गर्भपात हो जाता है। चूंकि बकरियां झुन्ड के रूप में रखी जाती हैं, अतः उस समूह की बहुत-सी बकरियां इस रोग में आक्रान्त हो जाती हैं। बकरियाँ इस रोग में मर जाती हैं। इस रोग

के कीटाणुओं के संक्रमण से बकरों के अण्डकोष बढ़ जाते हैं और उनकी संधियों में सूजन हो जाती है।

सुरक्षा और चिकित्सा—इस रोग की कोई विशेष विश्वस्त औषधि नहीं है, अतः रोग की रोक-थाम के लिए ही विशेष ध्यान देना चाहिए। पीछे गापशुओं के गर्भपात के लिए लिखित यत्न इस रोग के लिए भी उपयुक्त हैं।

भेड़-बकरियों का क्षय रोग
(Pseudo Tuberculosis)

भेड़-बकरियों के होने वाले इस क्षय रोग का कारण एक सूक्ष्म ग्राम पोजीटिव कोक्का बेसिलरा कीटाणु होते हैं। इस रोग में लिम्फग्रान्थ में जलयुक्त फोड़ा बन जाता है। इस कीटाणु के विष से पशु दिनों-दिन दुर्बल होता जाता है और उसका शरीर अतिशय निर्बल हो जाता है।

लक्षण—भेड़-बकरी की देह में उत्तरोत्तर शोथ बढ़ती जाती है। उसकी लसिका ग्रन्थियों में विशेषतः उस वक्ष-गह्वर में यूप भर जाती है। सक्रमित ग्रन्थि अपने पूर्वाकार से कई गुण बड़ा हो जाता है। नय व्रण में पीब भर जाती है। अन्य प्रकार की ग्रन्थि शुष्क और दानेदार हो जाती तथा फोड़ा कैपसूल जैसा हो जाता है। केलसियम का संचय नहीं होता।

सुरक्षा—रोगपीड़ित भेड़-बकरियों को दूसरी स्वस्थ भेड़-बकरियों से तुरन्त पृथक् कर दें। पशुशाला स्वच्छ रखें। सभी भेड़-बकरियों को इस रोग का इन्जेक्शन लगवा दें।

चिकित्सा—प्रतिदिन १ ग्राम स्ट्रेप्टोमाइसिन का इन्जेक्शन लगायें। लसिका ग्रन्थियों के शोथ-युक्त स्थान पर कापरसल्फेट (नीला थोथा) लगायें।

टेरामाइसिन की गोलियाँ या उनका लिक्विड-यथोचित मात्रा में खिलाते रहें। इसके साथ ही पेरा-अमीनो सेलिसीलिक एसिड (पास Pas) तथा आइसोनिएजिड जैसे फाइजर का आइसोनेक्स का विधिवत प्रयोग करना बहुत लाभकारी है।

भेड़-बकरियों का संक्रामक रोग

एगालैक्सिया

(Aegalexia)

प्लूरो न्युमोनिया के रोगाणुओं को ही एक अलग जाति के जीवाणुओं के संक्रमण से यह संक्रामक रोग भेड़-बकरियों को आक्रान्त करता है। यह जीवाणु उनके शरीर के स्रावों, विशेषतया उनके दूध में विद्यमान रहता है। इसी से इस रोग में भेड़-बकरियों के अयन, नेत्रों और सन्धियों पर शोथ आ जाती है। इस रोग के कारण उनका दूध घट जाता है, पशु दुर्बल हो जाता है। दूध में पीला तरल पदार्थ निकलता है जिसमें छिछड़े होते हैं। इस रोग के लक्षण थनैल रोग से सादृश्य रखते हैं। गाभिन भेड़-बकरियों को इस रोग से गर्भपात भी हो जाता है। इस रोग में करीब १५ प्रतिशत रोगपीड़ित भेड़-बकरियों की मृत्यु हो जाती है, किन्तु जो बच जाती हैं, उनपर दीर्घकाल तक पुनः इस रोग का आक्रमण नहीं होता।

चिकित्सा—स्टीवर्सल का सोडियम साल्ट इस रोग को प्रभावशाली और लाभकारी औषधि है। यह औषधि इस रोग को दूर कर देती है। इस रोग के संक्रमण को रोकने में सीरम विशेष स्थायी प्रभाव नहीं दिखाते, अतः इस रोग के नियन्त्रण में पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी।

———

भेड़-बकरियों की चेचक

(Pox)

बकरियों की चेचक से भेड़ों की चेचक अलग प्रकार की और विशेष प्रचण्ड तथा संक्रामक होती है। इस रोग से आक्रान्त २० से २५ प्रतिशत मेमने प्रायः मर जाते हैं। किन्तु बकरियों में यह रोग हल्का ही होता है। भेड़ों में इसका प्रसार धीरे-धीरे होता है और बकरियों के अतिरिक्त इनकी छूत अन्य बड़े पशुओं को नहीं लगती है।

लक्षण—इस रोग का आक्रमण होने पर भेड़ों को पहले तीव्र ज्वर होता है तथा न्युमोनिया और आन्त्रशोथ के लक्षण प्रकट होते हैं। शरीर के जिन अंगों पर बाल नहीं होते वहाँ फफोले पैदा हो जाते हैं। प्रायः नेत्रों के चारों ओर जाँघों के भीतरी भागों में, अयन और पूँछ के नीचे फफोले होते हैं और आन्तरिक अवयवों में श्वासनलिका, वृक्क, फुफ्फुस तथा आँतें भी रोगग्रस्त हो जाती हैं। तब अधिकांश भेड़ों की मृत्यु हो जाती है, जो बच जाती है, वे बहुत दुर्बल और शक्तिहीन हो जाती हैं।

चिकित्सा—रुग्ण पशु को लाल दवा १:१००० के लोशन से धोयें। उसके बाद बोरिक आयण्टमेण्ट लगाना चाहिए। लाल दवा का लोशन इस रोग के लिए उत्तम एण्टीसेप्टिक दवा है। चेचक के इन्जेक्शन लगाये जायें।

उत्तम संक्रमणशील मलहम जैसे साराभाई का स्पेक्ट्रोसिन (Spectrocin), आई० सी० आई० का सेवलान क्रीम (Sevlon Cream), फाइजर का टेरामाइसिन मलहम; ग्लेक्सो के मायवेसिन इत्यादि में कोई दिन में एक-दो बार संक्रमित आक्रान्त त्वचा पर लगा देना चाहिए।

पशुओं, घोड़ों और मनुष्यों को गाय के थनों को चेचक से प्राप्त इन्जेक्शन प्रयोग कराये जाते हैं, किन्तु भेड़ों, बकरियों, ऊंटों को भेड़ों से प्राप्त हुए इन्जेक्शन लगाये जाते हैं।

सुरक्षा—चेचक का टीका आसपास के अन्य पशुओं को लगवा दें। यदि रोग अधिक फैल रहा हो तो पशुओं की गुदा और लिंग के बीच में पूर्वोक्त चेचक का टीका लगवाना अधिक उपयोगी होता है। भेड़ों को चेचक की वैक्सीन का टीका उनकी पूँछ के नीचे या कान के भीतर की ओर लगाया जाता है।

———

भेड़ों के विशेष रोग

भेड़ में बाहरी परजीवी कीट

लक्षण—बाह्य परजीवी कीड़ों के आक्रमण से भेड़ की त्वचा पर चकत्ते पड़ जाते हैं तथा उनमें तीव्र खुजली होती है। हल्का ज्वर हो आता है। रुग्ण भेड़ें

अपने शरीर को दीवाल या पेड़ से रगड़ कर खुजलाती हैं। उनमें बेचैनी और चिड़चिड़ापन हो जाता है।

सुरक्षा—चर कर लौटने पर भेड़ों की भली प्रकार जाँच करें कि उनके शरीर पर कीड़े तो नहीं लिपटे हैं। उन्हें नहलाकर साफ रखें।

चिकित्सा—भेड़ों को गैमेक्सीन (Gammexane) आई० सी० आई० की या डी० डी० टी० या अल्टान पाउडर (Altan Powder) के घोल से नहलायें। या मैलेथियान (Malathion) ५०% भार/आयतन शक्ति वाला ०.१ प्रतिशत विलयन से भेड़ों को नहलाकर साफ करें।

टाटा-फिशन का सुमिथिआन (Sumithion) ५०% भार/आयतन शक्ति-वाला विलयन ५० मि० लि० को २० लिटर पानी में मिलाकर भेड़ों को नहलायें।

सावधान! इन दवाओं की विषैली प्रतिक्रिया के उत्पन्न होते ही उन्हें तत्काल दूर करने के लिए उनका प्रतिविष एट्रोपीन सल्फ ३० से ५० मिग्रा० बड़े पशु तथा ०.६ मिग्रा० छोटे पशुओं, भेड़ों के लिए अपने पास सदैव संचित रखें। जिससे यथासमय प्रयोग किया जा सके।

इण्टेरोटाक्सिमिया
(Enterotoxaemia)

यह रोग जुगाली करने वाले पशु विशेष रूप से भेड़ में तीव्र विष के कारण होता है। यह तीव्र विषक्ल पर फ्रीन्जेन्स टाइप डी के द्वारा छोड़ा जाता है, जो पशुओं का अँतड़ियों में रहता है। इस रोग से ३ से १० सप्ताह के मेमने पीड़ित होते हैं। किन्तु कभी-कभी यह रोग बड़ी भेड़, बकरी और बछड़ों में भी पाया जाता है। यह रोग मेमने को भयंकर रूप से होता है, जिससे उनकी २ से १२ घण्टे में मृत्यु हो जाती है।

बड़ी भेंड़ में श्वासकष्ट, अफारा, आक्षेप, ऐंठन, पेशियों में कंपकंपी, लड़-खड़ाना, अतिसार आदि लक्षण प्रगट होते हैं। निश्चयात्मक निदान के लिए पिछले

भाग से लिये गये आँत के द्रव को एक विसंक्रमित काँच की शीशे में एकत्रित करें और इसको संरक्षित करने के लिए इसमें कुछ क्लोरोफार्म की बूंदें डालें और मिलाकर तथा उसी द्रव्य का स्लाइड पर लेप लगाकर जांच के लिए भेजें।

सुरक्षा--प्रतिवर्ष इसके प्रतिरोध का टीका लगवायें। २.५ मिलि० की मात्रा में मल्टी कम्पोनेंट क्लोस्ट्रीडियल वंक्सीन (आई० बी० आर० आइ निर्मित) या इंस्टीट्यूट आफ वेटरीनरी वायोलोजिकल प्रोडक्ट्स पूना ७ से वैक्सीन मगाकर इन्जेक्शन लगवायें। फिर २१ दिन के बाद अधिक से अधिक मात्रा में इन्जेक्शन लगवायें। वेटुलिज्म की भाँति ही चिकित्सा करें।



भेड़ के आंत्रिक परजीवी कीट

लक्षण--परजीवी कीड़ों के आँत में प्रविष्ट हो जाने पर भेड़ को अतिसार हो जाता है और जबड़े के नीचे शोथ हो जाती है। शरीर का भार और रक्त कम हो जाता है, पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से मल में जाँच करने पर परजीवी कीड़ों के अंडे दिखाई देते हैं।

सुरक्षा - भेड़ों को गन्दे तालाबों का पानी न पिलायें। उन्हें कीड़े मारनेवाली दवायें सप्ताह में एक बार अवश्य खिलायें। स्वच्छ चारा-पानी दें।

चिकित्सा—भेड़ों को आई० सी० आई० का फेनोविस पाउडर (Phenowis powder) या मे एण्ड वेकर का डीसेस्टोल (Dicestol) की आधे ग्राम की गोली अथवा सायनेमिड के कैरीमिड (Caricide) और वर्बन (Verban) दोनों को मिलाकर ३-४ दिन तक नित्य खिलायें।

आई० सी० आई० नीलवर्म भेड़ को १५ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से साफ गर्म पानी में घोलकर पिलायें।

इण्डियन हर्ब्स का वोपेल पाउडर भेड़ और बकरियों को १ से २ ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुसार खाली पेट मीठे शर्बत या शीरे में घोलकर २-३ दिन तक पिलायें या बी० वी० बी० कुमौरा भेड़ को १० से १२ ग्राम वोपेल के समान प्रयोग करायें। यदि ८-१० घंटे में कीड़े न निकालें तो केस्टरआयल

पिलाकर विरेचन दें। यदि फिर भी कीड़े नहीं निकलें तो एक सप्ताह पश्चात् पुनः एक मात्रा और दें।

भेड़ों का चक्कर काटने का रोग
(Circling Desease of Sheep)

लक्षण—भेड़ की आँतों में विषैले तत्व उत्पन्न होकर भेड़ों के सिर में चक्कर आने लगते हैं। जिससे भेड़ें चक्कर काटती हुई घूमने लगती हैं। उनकी स्नायविक शक्ति दुर्बल पड़ जाती है तथा मस्तिष्क क्रिया में विकृति उत्पन्न हो जाती है। यह रोग मस्तिष्क प्रदाह, माथे में चक्कर, लिस्टेरेलोसिस रोगों में लक्षण के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

चिकित्सा—रेनबक्सी के केम्पोज (Calmpose) की ५ मि० ग्राम वाली २ से ४ गोलियाँ पर्याप्त पानी में घोलकर पिलायें।

टेरामाइसिन का गहरे मांस में इन्जेक्शन प्रतिदिन लगाना लाभकारी है।

स्टेमेटिल (Stemetil) १ गोली तथा विटामिक्स एम उचित मात्रा में दिन में ३-४ बार खिलाना गुणकारी है।

क्राम्बायोटिक का एक इन्जेक्शन प्रतिदिन लगाना लाभप्रद है।

सैण्डोज का कैलसियम सैण्डोज विथ विटामिन सी ५ से १० मि० लि० या डेक्सट्रोज २५ प्रतिशत शक्ति का ५० मि० लि० का शिरा में इन्जेक्शन धीरे-धीरे प्रतिदिन लगायें साथ ही साराभाई का वेलामील या एम० एस० डी० का ट्रिरेडिसोल-एच १००० माइक्रोग्राम प्रति मि० लि० शक्ति का ५ मि० लि० की गहरे मांस में प्रति तीसरे दिन सुई लगायें।

नीली जीभ
(Blue Tongue)

यह प्रमुख रूप से भेड़ का रोग है, किन्तु कभी-कभी अन्य पशुओं में भी कीड़े के काटने के द्वारा भी यह रोग हो जाता है।

लक्षण—प्रारम्भ में ५-६ दिन तक ज्वर रहता है, नाक से स्राव बहता है, मुँह से लार टपकती है तथा सारे मुख में व्रण, फुन्सी और छाले पड़ जाते हैं,

मसूड़े और जीभ में शोथ हो जाती है, मुँह से दुर्गन्ध आती है जीभ के पार्श्व तल में सफेद व्रण हो जाते हैं, जो बैंगनी रंग के हो जाते हैं। चारा-पानी निगलने में कठिनाई होती है। पैर पर घाव और लंगड़ापन रहता है। सिर के चारों ओर घनी पट्टी जैसी दीख पड़ती है। निश्चयात्मक निदान के लिए सीरम को सी० एफ० टेस्ट के लिए भेजें।

चिकित्सा—कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। संक्रमण को दूर करने के लिए एण्टीबायोटिक्स का प्रयोग करें तथा विटामिन ए जैसे ग्लैक्सो का प्रिपेलीन और विटामिन सी जैसे रोश का रिडाक्सान की यथोचित मात्रा में सुई लगायें और मुख से खिलायें।

घोड़ों के कुछ विशेष रोग

मोतरा (Sparin)

मोतरा घोड़े का मुख्य रोग है। इस रोग में घोड़े की गाँठों की हड्डी में जब कोई गिल्टी या शोथ उत्पन्न हो जाती है, तो इसे मोतरा कहते हैं। यह शोथ या गिल्टी टटोलने पर भली-भांति जान पड़ती है। इसके कारण घोड़ा लंगड़ाने लगता है और चलने में कष्ट होता है। इसी प्रकार प्रायः अगले पैर की पसली में त्वचा के नीचे एक अधिक हड्डी पैदा हो जाती है। इनको वेरहड्डी (Bone sparin) कहा जाता है।

चिकित्सा—आपरेशन के अतिरिक्त कोई दवा नहीं है। प्रतिदिन टेरामाइसिन की मांस में सुई लगाना और पाउडर चारा में मिलाकर खिलाना लाभकारी है।

श्वासावरोधक महामारी

स्ट्रैंगल्स (Strangles)

'स्ट्रैंगल इक्वी०' नामक जीवाणुओं के संक्रमण से यह रोग छोटे घोड़ों को होता है।

लक्षण—आरम्भ में घोड़े का तापक्रम बढ़कर ज्वर हो जाता है, नाक से स्राव बहता है, ग्रसनिका (Pharynx) में सूजन और प्रदाह हो जाता है, जिससे

समीप की लिम्फनोड्स भी शोथयुक्त हो जाती हैं तथा फोड़ा निकल आता है निश्चयात्मक निदान के लिए पीप के लेप की परीक्षा सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से करायें।

सुरक्षा—इण्डियन वेटरीनरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट इज्जत नगर (उ० प्र०) में उपलब्ध किल्ड वेक्सीन (Killed Vaccine) का इन्जेक्शन लगवायें। इसकी मात्रा २ मि० लि०, ३ मि० लि० या ५ मि० लि० है तथा प्रति सप्ताह त्वचा में सूई लगायी जाती है।

चिकित्सा—फाईजर के काम्बायोटिक या साराभाई के डाइक्रिस्टिसिन या हैक्स्ट के ओम्नामाइसिन का १ से २ ग्राम और सायनेमिड के एक्रोमाइसिन या हैक्स्ट के हास्टासाइक्लिन या वाक हड्‌स के वोलीसाइक्लिन का ५०० मि० ग्राम से १ ग्राम तक का मांस या शिरा में इन्जेक्शन दोनों बदल-बदल कर लगायें तथा टेट्रासाइक्लिन की टेबलेट प्रतिदिन दो बार खिलायें। केडिला का डेक्सोना ५ एम० एल० मांस में दिन को २ बार तथा एम० एण्ड बी० का फेनारगन सूई १० एम० एल० मांस में लगाना भी लाभप्रद है।

अफ्रिकन अश्व व्याधि

(African Horse Sickness)

यह घोड़ों का घोर घातक रोग है, जो 'विसेरो ट्रापिक वाइरस' के संक्रमण से एक प्रकार के कृमि के द्वारा उत्पन्न होता है। यह घोड़ों को बहुत दुर्बल बनाकर मृत्यु के मुख में पहुँचा देता है।

लक्षण—तीव्र फुस्फुसीय प्रकार के रोग में कष्टप्रद खाँसी, श्वासकष्ट, नाक से पतला व कभी-कभी गाढ़ा स्राव बहना, फुफ्फुसों में शोथ आदि लक्षण दीख पड़ते हैं। ४-५ दिनों में घोड़ा मर जाता है, इसे डनकप्प (Dunkupp) भी कहते हैं। उपत्वचा प्रकार के (Subcute form) इस रोग में सिर में शोथ विशेषकर आंख की पलकें तथा टेम्पोरलफोसा में शोथ, मुख की श्लैष्मिक कला का नीला हो जाना आदि लक्षण दीख पड़ते हैं। पशु दो से तीन सप्ताह

तक जीवित रहता है। इसे डिक्कप (Dikkup) भी कहते हैं तथा जो अधिक संख्या में पाया जाता है। निश्चयात्मक निदान के लिए सीरम को सी० एफ० टेस्ट के लिए भेजें।

सुरक्षा—इंडियन वेटरीनरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट इज्जतनगर (उ० प्र०) में उपलब्ध 'फ्रीज ड्राइड पॉलीवेलेण्ट न्यून शक्तिवाला वैक्सीन' को ५ मि० लि० की मात्रा में त्वचा में इन्जेक्शन लगायें। दो सप्ताह तक प्रतिक्रिया की जाँच-पड़ताल कर निरीक्षण करें तथा पशु को ३ सप्ताह तक पूर्ण विश्राम दें। इस वैक्सीन की रोगप्रतिरोधक क्षमता अवधि एक वर्ष है।

चिकित्सा—इस रोग में कोई चिकित्सा सफल नहीं होती। रोगग्रस्त पशु को सबसे पृथक् कर दें। घोड़े को कीड़ों और मक्खियों के काटने से बचायें।

घोड़े को हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली बनाना

गाजरें बारीक कुतरी हुई, मोथी (एक प्रकार का दलहनी अन्न जिसके दाने मूँग जैसे भूरे रंग के होते हैं। खरीफ की फसल का यह द्विदल अन्न प्रायः गंगा-जमुना नदियों की तटवर्ती बलुई भूमि में अधिक बोया जाता है।) दोनों २-२ सेर पानी में खूब पकायें। जब भली प्रकार गल जायें तो खब घोटकर नमक और अजवाइन २॥-२॥ तोला का चूर्ण मिलाकर घोड़े को खिलायें। यदि इसमें १००-५० ग्राम घी भी मिला दिया जाय तो और उत्तम है। इसका प्रयोग शीतऋतु में बहुत लाभदायी है। इसके प्रयोग से दुर्बल और वृद्ध अश्व भी हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

हिमालयन बत्तीसा और हरमिन्सा का प्रयोग भी लाभदायक है।

लसिका ग्रन्थि शोथ

यह रोग घोड़ों और गधों को अधिक होता है।

लक्षण—लसिका ग्रन्थियां सूजकर फट जाती हैं। उनमें सफेद पीप निकलने लग जाती है। स्नायु सूज जाते हैं। श्लैष्मिक झिल्लियों में रक्त की कमी हो जाती है।

सुरक्षा—रुग्ण पशु को तत्काल अलग कर दें। अधिक रोगी पशुओं को मार दें। मृत पशुओं के सम्पर्क में आई हुई वस्तुओं को कीटनाशक दवाओं से कीटाणुरहित कर लें।

चिकित्सा—सायनेमिड का कैरीसिड (Caricid) २५ से ५० मि० ग्राम प्रति ५०० ग्राम शरीर-भार के अनुपात से चारा के समय खिलायें।

सल्फाडायाजीन १ गोली दिन में २-३ बार पानी से खिलायें। टेरामाइसिन का इन्जेक्शन लगायें।

मे० एण्ड बेकर के ट्राइनामाइड (Trinamide) की १-२ गोलियाँ दिन में एक-दो बार खिलायें।

ऊँटों की दुर्बलता

ऊंटों की दुर्बलता दूर करने के लिए उन्हें टानिक के रूप में निम्नलिखित औषधियाँ शीतकाल में कठिन परिश्रम करने के बाद दें। उन्हें पूर्णरूपेण स्वस्थ रखने के लिए भी ये औषधियाँ बहुत लाभप्रद हैं।

इण्डियन हर्ब्स का हिमालयन बत्तीसा ४० से ८० ग्राम चूर्ण चारा में मिलाकर प्रतिदिन खिलायें। विटाब्लेण्ड का यथोचित मात्रा में प्रयोग पर्याप्त बल-वर्द्धक है।

हैक्स्ट के टोनोफास्फान की ३० से ४० मि० लि० की त्वचा या शिरा में प्रति तीसरे दिन सुई लगायें। फाईजर के एनो रेक्सान की ४ से १० गोलियाँ गुड़ में मिलाकर नित्य खिलायें।

एफ० डी० सी० के विटकोफोल की १० से १५ मि० मि० की मांस में सप्ताह में दो बार सुई लगायें या टाटा-मिशन के इम्फेरान विथ विटामिन बी$_{12}$ की १० से २० मि० लि० का मांस में दो बार इन्जेक्शन लगायें।

ऊँट का गिर जाना

प्रायः ऊंट चलते-फिरते विशेषकर बरसात में फिसल कर गिर पड़ता है और फिर उसका उठना बहुत कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था समक्ष उपस्थित हो तो तुरत एक छटांक फिटकरी भुनी हुई को पीसकर गाय के आधा सेर दूध में

घोलकर पिला दें। वाह्य रूप में चोट की शोथ दूर करने के लिए हल्दी और शावुन पानी में पकाकर लेप करें।

ऊँट को तीव्रगामी बनाना

मेंथी के दाने, वायविडंग, काली जीरी प्रत्येक १-१ पाव, साँभर नमक आधा सेर—सबको चूर्ण करके रख लें। यह चूर्ण आध पाव की मात्रा में पाव भर जौ के आटा में मिलाकर खिलायें। इसके निरन्तर सेवन से ऊँट की जठराग्नि बहुत प्रबल हो जाती है और वह खूब चारा खाता है। इससे वह शक्तिशाली और शीघ्रगामी हो जाता है।

सोंठ, पीपल, पीपलामूल, देशी अजवायन, खाने का नमक—सब समान भाग चूर्ण कर रख लें। उपरोक्त विधि से प्रयोग करायें और ऊँट को निरन्तर दौड़ाते रहें।

ऊँट की मस्ती दूर करना

कभी-कभी ऊँट मस्त होकर भागता है और आदमियों को काटने के लिए दौड़ता है। ऐसी अवस्था में हरे पोदीना का रस ऊँट की नाक में डाल देने से उसकी मस्ती दूर हो जाती है।

हाथी के रोग और उनकी चिकित्सा

हाथी को कोई भिन्न विशेष रोग नहीं होता। जो रोग अन्य पशुओं को होते हैं, वे हाथी को भी हो जाते हैं। पीछे के प्रकरणों में पशुओं के रोगों की जो चिकित्सा लिखी गयी है, उन रोगों में से कोई रोग हाथी के हो जाने पर उसको भी उन्हीं औषधियों का सेवन करनी चाहिए। हाँ, हाथी के वृहदाकार शरीर के अनुसार उसकी औषधि की मात्रा अन्य पशुओं से तिगुनी-चौगुनी होनी चाहिए।

यहाँ पर हाथी के लिए उपयोगी कुछ देशी चिकित्सायें दी जा रही हैं।

हाथी को मस्त बनाना—धान की भूसी, आक (मदार) की जड़ की छाल, अतीस, आँवलासार गन्धक—सब चीजें समान भाग ले कूटपीसकर एक बर्तन में रखकर उसमें केले के तने का रस भर कर बर्तन का मुख बन्द कर हाथी

को लीद के ढेर में ८ दिन गाड़ रखें। फिर निकालकर नित्य ४ तोला खिलाया करें। कुछ ही दिनों के प्रयोग से वह मस्त हो जायगा।

हाथी की मस्ती दूर करना—रसवत और कत्था २-२ तोला, भाँग ४ तोला—सबको दही में पीसकर हाथी के रातिब (हाथी के दाना) में मिलाकर खिलाने से उसकी मस्ती दूर हो जाती है।

हाथी को हृष्ट-पुष्ट और शक्तिशाली बनाना—रेती से रगड़कर चूर्ण किया हुआ कुचला, अजमोद, राई, लोटी सज्जी १-१ पाव, चौकिया सुहागा भुना हुआ, देशी अजवायन, शुद्ध हींग, मीठी कूट, गुग्गुल, पीपलामूल, नर कचूर, खाने का नमक, सेंधा नमक १०-१० तोला, नागौरी असगंध, खुरासानी अजवायन, हरमल १-१ पाव, खाने की तम्बाकू, वायविडंग आधा-आधा सेर—सबका चूर्ण सवा सेर उर्द का आटा मिलाकर शुद्ध शराब में सानकर १-१ तोले की गोलियाँ बना लें। नित्य १ तोला रातिब में मिलाकर खिलाने से हाथी बहुत स्वस्थ और शक्तिशाली हो जाता है और रोगों से सुरक्षित रहता है।

हाथी को तीव्रगामी बनाना—पवाँर (चकवड़) के बीज, माल काँगनी, काली मिर्च, रेती से रेत कर महीन किया हुआ कुचला—सब समान भाग चूर्ण करके पर्याप्त शुद्ध शराब में भिगोकर धूप में सुखाकर रख लें। प्रतिदिन १ तोला खिलायें और हाथी को खूब दौड़ायें। इसके प्रयोग से हाथी तीव्रगामी-स्वाभाविकतः खूब तेज चलनेवाला हो जाता है।

हाथी का विरेचन—जब हाथी को कब्ज हो जाय तो उसका पेट साफ करने के लिए आक की कोपलें और अरण्ड की कोपलें २१-२१ नग, आक के तने की छाल १ पाव, साँभर नमक आधा सेर पीसकर डेढ़ पाव सरसों के तेल में सानकर आधी दवा खिला दें। दो-चार घन्टे के अन्दर शेष आधी दवा खिला दें। इससे हाथी का कब्ज दूर हो जाता है।

हाथी के दांत से रक्त बहने पर—यदि हाथी के दांत काटते समय रक्त बहने लगे तो उसमें तालाब की चिकनी गीली मिट्टी में पिसा हुआ सिंगरफ मिलाकर लगायें।

न्यूनताजनित रोग

मनुष्यों की भाँति ही पशुओं के आहार में भी उचित परिमाण में प्रोटीन, कार्बोज, शर्करा, विटामिन्स और आवश्यक खनिज लवणों से युक्त पदार्थ न होने पर उनमें न्यूनता-जनित रोग हो जाते हैं। अतः न्यूनताजनित रोगों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

विटामिन ए की न्यूनता

शरीर की वृद्धि और पुष्टि करना विटामिन ए का प्रमुख कार्य है। विटामिन ए से संक्रामक रोगों के प्रतिरोध की क्षमता और नेत्रों को शक्ति मिलती है। दूध देनेवाले पशुओं और उनके शावकों के विकास के लिए विटामिन ए एक बहुत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। यदि गाभिन पशु में इस विटामिन की कमी हो जाय तो बच्चा बहुत निर्बल उत्पन्न होता है। उसे प्रायः रतौंधी का रोग हो जाता है। पशु-शावक और उसकी माँ को स्नायु-दौर्बल्य हो जाता है। प्रायः बच्चा निश्चित समय से पहले ही उत्पन्न हो जाता है। समस्त शरीर की श्लेष्मिककला (म्यूकस मेम्बरेन) निर्बल हो जाती हैं। विटामिन ए की कमी से शरीर में कैल्सियम और फास्फोरस का अनुपात या सामंजस्य बिगड़कर असंतुलित हो जाता है।

चिकित्सा—गाभिन गायों-भैंसों आदि को गर्भकाल के चार-पाँच महीने बाद से प्रतिदिन करीब १०-१२ किलो हरा चारा प्रतिदिन देना चाहिए। इससे बहुत अंशों में विटामिन ए की पूर्ति होगी। यदि हरा चारा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न हो तो प्रतिदिन लगभग २-३ औंस शार्क लिवर आयल (Shark Liver Oil) या काड लीवर आयल (Cod Liver Oil) देकर उस कमी की पूर्ति की जा सकती है। नवजात पशु-शावकों को विटामिन ए की पूर्ति उन्हें अपनी माँ की खीस (तेली-व्याने के बाद आरम्भिक चार-पांच दिनों का दूध) भर पेट पीने देना चाहिए। बड़े पशु-शावकों को विटामिन ए की पूर्ति के लिए नित्य २ से ४ औंस तक काड लिवर आयल या शार्क लिवर आयल देना चाहिए तथा भर पेट हरा चारा देना चाहिए।

गाभिन पशु और उनके बच्चों को ग्लेक्सो का विटाब्लेण्ड २० ग्राम को १०० किलो चारा में मिलाकर खिलायें। यह विटामिन ए और विटामिन डी$_3$ का मिश्रण है, जो बहुत लाभप्रद है।

ग्लेक्सो के व्रिपेलिन २ मि० लि० की मांस में सुई लगायें। रोग की तीव्र अवस्था में ग्लेक्सो के विमेराल या विटाब्लेण्ड डब्लू एम फोर्ट या रोश के राविसाल १०० की २ मि० लि० की प्रतिदिन मांस में सुई लगायें। ग्लैक्सो का एडेक्सोलीन (Adexolin) कंपसूल पर्याप्त मात्रा में दें।

विटामिन डी की न्यूनता

(Deficiency of Vitamin D)

जिन पदार्थों में विटामिन ए पाया जाता है, प्रायः उन सभी में विटामिन डी भी पाया जाता है। विटामिन डी हड्डियों और दाँतों को स्वच्छ और सुदृढ़ बनाता है, क्योंकि यह केलसियम और फास्फोरस को संचित करने में सहायता पहुँचाता है। दुधारू पशुओं को प्रायः गर्भ के अन्तिम दिनों में और दूध देने के समय में भी उनके बच्चों को विटामिन डी की कमी से हड्डियों के विकास में रुकावट होकर रिकेट्स (Rickets) रोग हो जाता है। सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणों में भी विटामिन डी का प्रभाव रहता है। विटामिन डी सूखारोगनिवारक होने के कारण एण्टी-रिकेटिक बिटामिन भी कहा जाता है।

लक्षण :—चूंकि विटामिन डी केल्शियम और फास्फोरस को शरीर का अंश बनाता है, जो हड्डियों के महत्वपूर्ण तत्व हैं। अतः इसकी न्यूनता से अस्थियों का विकास रुक जाता है। वे टेढ़ी और नर्म हो जाती हैं। इस रोग को रिकेट्स कहते हैं।

चिकित्सा :—जैसा कि विटामिन ए के प्रकरण में लिखा जा चुका है, उपर्युक्त विधि से काड लिवर आयल या शार्क लिवर आयल का प्रयोग करें। इसके लिए ग्लेक्सो का एडेक्सोलीन भी एक उत्तम मिश्रण है। थोड़ी मात्रा में लाइम वाटर (चूने का पानी) देना भी उपयोगी है।

ग्लैक्सो का ओस्टोकैल्सियम सीरप ४ से ८ बड़े चम्मच दिन में दो बार चारा में मिलाकर खिलायें। ग्लैक्सो का ही विटाब्लेण्ड चारा में मिलाकर खिलाना भी लाभप्रद है।

शीघ्र लाभ के लिए विटाब्लेण्ड डब्लू एम फोर्ट २ मि० लि० की प्रतिदिन मांस में सुई पूर्ण लाभ होने तक लगाते रहना चाहिए।

दूध देने वाली गायों-भैंसों को फास्फोरस और कैल्सियम की कमी को पूरा करने के लिए विनौला और गेहूँ का चोकर तथा भूसा खिलाते रहें।

मैगनेशियम की कमी

(Deficiency of Magnesium or Hypomagnesemia)

मैगनेशियम की कमी से नाड़ियों के विकार, बेचैनी और रक्त में अम्लता की मात्रा अधिक हो जाती है। यह खनिज तत्व शरीर में ताजगी और फुर्ती लाता है।

पशुओं के शरीर में यद्यपि मैगनेशियम खनिज लवण की बहुत स्वल्प मात्रा की आवश्यकता होती है, किन्तु यह इतना महत्वपूर्ण तत्व है कि उसकी न्यूनता पशु की अकाल मृत्यु का कारण हो जाती है। इस तत्व की कमी से गायों में ग्रास टिटैनी जैसा रोग हो जाता है। यह रोग खराब हरा चारा चरने के कारण हो जाता है।

लक्षण :—मैगनेशियम की न्यूनता से पशु चिड़चिड़ा हो जाता है। उसकी पेशियों में खिचाव और ऐंठन पैदा हो जाती है। पशु में सुस्ती, शिथिलता, भूख की कमी हो जाती है। पशु लड़खड़ाता और बार-बार मूत्र करता है। किन्तु उसके शरीर का तापमान सामान्य ही रहता है और अन्ततः पेशियों की ऐंठन और फड़कन की अवस्था में या इस अवस्था के चिरकाल रहने पर धनुर्वात रोग होकर पशु की अकाल मृत्यु हो जाती है।

यह रोग दुग्धावस्था की किसी भी स्थिति में हो सकता है। पशु बहुत ही उत्तेजित रहता है। शरीर ऐंठता और मांसपेशियों में कम्पन होता रहता है।

छोटे बछड़ों में इस रोग को 'ह्वोल मिल्क टिटेनी' कहते हैं। बछड़ों को यह रोग दूध के अतिरिक्त अन्य वस्तुयें खाने पर होता है। इसमें बहुत अधिक संज्ञा-शून्यता और ऐंटन के लक्षण प्रकट होते हैं।

चिकित्सा :—२५० घ० से० मी० पानी में ३० ग्राम कैलसियम क्लोराइड और ८ ग्राम मैगनेशियम मिलाकर जीवाणुरहित घोल या अन्तःशिरा इन्जेक्शन बहुत धीरे-धीरे १५-२० मिनट में लगाना चाहिए। दूसरा इन्जेक्शन लगाने को प्रायः बहुत कम ही आवश्यकता पड़ती है।

मैगनेशियम सल्फेट स्टेराइल ५० प्रतिशत विलयन की १०० से २०० मि०लि० की मात्रा में बड़े पशु को त्वचा में सुई लगावें। छोटे बछड़ों को प्रायः न लगावें।

एथिकेर का कैलमैन २०० से ३०० मि० लि० बड़े पशु को तथा ५० से १०० मि० लि० छोटे पशु को इन्जेक्शन लगायें। इसी मात्रा में एम० एण्ड बी० के मिफेक्स या बोकार्ड के गायकाल सुई का प्रयोग भी लाभप्रद है।

गेहूँ बाजरा, गाजर, हरी मटर, चोकर, पालक, बन्द गोभी आदि में मैगनेशियम खनिज लवण रहता है।

कैल्शियम तथा फास्फोरस की न्यूनता

(Dificiency of Calcium and Phosphorus)

फास्फोरस और कैल्शियम दोनों बहुत महत्वपूर्ण खनिज तत्व हैं, किन्तु इन तत्वों के उपयोग और सात्मीकरण के लिए पशुओं को विटामिन डी पर्याप्त मात्रा में मिलना चाहिए। यों तो विटामिन चारे को धूप में सुखाने और पशुओं को धूप में रखने से उन्हें प्राप्त होता रहता है, किन्तु विशेष कारणों से इसकी कमी हो जाय तो औषधि रूप में देकर उसकी पूर्ति करनी चाहिए।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कैल्शियम, फास्फोरस—दोनों तत्वों का अनुपात १:१ और २:१ के बीच होना चाहिए यानी लगभग २ भाग कैल्सियम हो तो दो भाग फास्फोरस। इस अनुपात में न्यूनाधिकता हो जाना भी हानिप्रद

है। प्रायः इन दोनों तत्वों की न्यूनता के लक्षण एक जैसे ही प्रकट होते हैं; अतः निदान करना दुष्कर होता है।

लक्षण :—क्षुधामन्दता कैल्शियम तथा फास्फोरस की न्यूनता का प्रमुख लक्षण है। इसकी कमी से नवजात बछड़ों की हड्डियाँ सुदृढ़ नहीं हो पातीं। जिससे वे चलने-फिरने में लड़खड़ाते और गिर-गिर पड़ते हैं। हड्डियों के सिरे असामान्य से बढ़कर बाहर निकल आना, रीढ़ की हड्डी में टेढ़ापन आ जाना, घुटने झुककर टेढ़े हो जाना, कूबड़ निकल आना, पशु को दौरे पड़ने लगना इन तत्वों की न्यूनता के द्योतक हैं। फास्फोरस व विटामिन की कमी से बछड़ों को रिकेट्स हो जाता है। कैल्शियम की कमी से हड्डियाँ इतनी दुर्बल हो जाती हैं कि वे साधारण चोट से ही टूट सकती हैं। इसकी न्यूनता से नारी पशु का दूध घट जाता है। प्रौढ़ पशुओं में इन तत्वों की कमी चिरकाल रहने से उनके गर्भ से दुर्बल या मृत बच्चे पैदा होते हैं।

चिकित्सा :—कैल्शियम या फास्फोरस में से जिस तत्व की कमी हो उसी को पशु के चारे में मिलाकर खिलायें। दोनों की कमी हो तो उपयुक्त अनुपात में दोनों दें।

फास्फोरस की कमी होने पर हड्डियों का रोगाणुरहित चूर्ण, जई, बिनौले का जूस, गेहूँ या गेहूँ का चोकर आदि लाभप्रद हैं। दूध, शलजम, सूखे अंजीर, अण्डे की जर्दी, फूल गोभी, गेहूँ के चोकर, मटर, मसूर, पालक, मूली में कैल्शियम तत्व रहता है।

आई० सी० आई० का चूर्ण १०५ मिनरल सप्लीमेंट उचित मात्रा में दें। कैल्शियम की कमी को पूरा करने के लिए मे एण्ड बेकर कं० का कैलशोरल का इंजेक्शन लगायें। इसी कं० की मिफेक्स (Mifex) कैल्शियम का उत्तम मिश्रण है, जो कैल्शियम की कमी से उत्पन्न रोगों को दूर करता है। इसके प्रयोग से पशु स्वस्थ हो जाते हैं और उनका दूध बढ़ जाता है। कैल्शियम ग्लूकोनेट २०% का विलयन है, जिसमें कैल्शियम और ग्लूकोज का मिश्रण है। इसका शिरा में इन्जेक्शन लगायें।

इण्डियन हर्ब्स का हिमालयन बत्तीसा या बी० वी० बी० कं० का हरमिन्सा पाउडर यथोचित मात्रा में खिलाने से इन तत्वों की कमी की पूर्ति होती है।

कोबाल्ट की कमी
(Cobalt Deficiency)

लक्षण :—पशु के चारे-दाने में कोबाल्ट खनिज लवण की कमी से क्षुधा-मन्दता होकर दिनोंदिन दुर्बलता बढ़ती जाती है। पशु की त्वचा खुरदरी और पपड़ीदार हो जाती है। लिंग-विकास रुक जाता या मन्द पड़ जाता है। गायों की अपेक्षा प्रायः बछड़ों को कोबाल्ट की कमी शीघ्र हो जाती है और वे अल्पायु में ही मर जाते हैं। इस तत्व की न्यूनता से पशु के शरीर के रक्त की रंग-द्रव्य की सघनता कम हो जाती है। यह रोग अधिकतर गाय और बछड़ों को होता है।

चिकित्सा :—रुग्ण पशु को कोबाल्ट सल्फेट (Cobalt Sulphate) या कोबाल्ट क्लोराइड (Cobalt Chloride) का एक सप्ताह प्रयोग कराने से क्षुधा-मन्दता दूर हो जाती है। इसे पशु के चारे में भुरक देना चाहिए।

कोबाल्ट की कमी दूर करने के लिए पशु को प्रतिदिन ५ से १५ ग्राम तक नमक खिलाना बहुत उपयोगी है। इसके प्रयोग से अवस्था शीघ्र सुधर जाती है। चारे में मिलाने के अतिरिक्त सेंधानमक का एक बड़ा ढेला पास रख देना चाहिए, ताकि वह चाटता रहे। कई औषधि निर्माताओं के मिनरल मिक्सचर बाजार में उपलब्ध हैं उसकी ३० ग्राम मात्रा प्रतिदिन आहार के साथ मिलाकर खिलाने से इन पोषक तत्वों की कमी नहीं होती है।

गायों के एक टन चारे में कोबाल्ट साल्ट ३ ग्राम के हिसाब से मिलाकर खिलाना भी लाभप्रद है। यह साल्ट २५ ग्राम एक गैलन पानी में मिलाकर घोलकर रख लें। इसमें से ४ मि० लि० प्रतिदिन पिलायें।

आयोडीन की न्यूनता
(Deficiency of Iodine)

आयोडीन तत्व शरीर में पैदा होने वाले विषों से मस्तिष्क को आक्रान्त होने से बचाता है। शरीर की विविध ग्रन्थियों का पोषण करता है तथा शरीर

में चर्बी की वृद्धि को रोकता है। इसकी कमी से गिल्टियों (Glands) के रोग—घेंघा और गलगण्ड हो जाते तथा शरीर में विकार संचित हो जाते हैं। इस तत्व के अभाव में मनुष्यों के बाल पकने और झड़ने लगते हैं।

लक्षण :—दूध देने वाले पशुओं विशेषकर उनके नवजात शावकों को आयोडीन की न्यूनताजनित रोग हो जाता है। जब बच्चा उत्पन्न होता है तो उसके शरीर पर बाल या रोयें नहीं होते। थायरायड ग्लैण्ड की वृद्धि के कारण उसकी गर्दन बड़ा और शरीर बहुत निर्बल होता है। इसका कारण उसकी माँ के शरीर में आयोडीन की न्यूनता होती है। इसके कारण प्रायः उनकी मृत्यु हो जाती है। आयोडीन की कमी से प्रौढ़ पशु प्रायः जल्दी नहीं मरते, हाँ, उनकी गलग्रन्थि बढ़कर लटक जाती है।

चिकित्सा :—आयोडीन की न्यूनता की पूर्ति के लिए गर्भवती गाय को गर्भ के अन्तिम आधे समय में आयाडाल्ट साल्ट का प्रयोग करायें। इसके लिए आयोडिन युक्त आयोडाइज्ड नमक (Iodised Salt) आधा औंस खाने वाले ३०० पौण्ड नमक में मिलाकर आवश्यकतानुसार प्रयोग कराना चाहिए।

एक चाय के चम्मच भर टिंचर आयोडीन लिक्विड को ४ से ८ बड़े चम्मच समान भाग पानी मे मिलाकर प्रतिदिन दो बार पूर्ण लाभ होने तक पिलाते रहें। साथ ही मिल्क आयोडीन (Milk Iodine) का इन्जेक्शन उचित मात्रा में प्रति तीसरे दिन लगाते रहें।

यह खनिज तत्व आलू, गाजर, बन्दगोभी, नासपाती, केला तथा तरकारियों के छिलकों के नीचे के भाग में अधिकता से पाया जाता है। अतः इन वस्तुओं में जो सरलता से समय पर उपलब्ध हो खिलाते रहना भी उपयोगी है। कृत्रिम खनिज तत्वों की अपेक्षा प्राकृतिक रूप में खाद्य वस्तुओं में उपलब्ध खनिज तत्व अधिक उपयोगी होते हैं और शरीर में उनका शीघ्र ही समुचित सात्मीकरण भी हो जाता है।

फ्लूरोसिस

(Flurosis)

दूध देने वाले पशु इस रोग से पीड़ित होते हैं।

लक्षण :—चूँकि शरीर की रचना में फ्लोरीन का भी महत्त्व है तथा यह तत्व दाँतों की हड्डियों की रचना में ०·२ से ०·५ प्रतिशत तक पाया जाता है, अतः इसकी न्यूनता से पशु निर्बल और क्षीणकाय हो जाता है। उसका दूध घट जाता है। प्रायः गायें बंध्या हो जाती हैं। शावकों के पैरों में टेढ़ापन और लँगड़ापन हो जाता है। घोड़ों के बच्चों में इस प्रकार का लँगड़ापन विशेष विकार और हानि का कारण होता है। ऐसे बच्चों में असली दाँत बहुत देर में निकलते हैं।

यह रोग बम्बई, मद्रास और हैदराबाद में विशेष रूप से होता है।

चिकित्सा :—रुग्ण पशु को लाइम वाटर (चूने का पानी) पिलायें। पशुओं के आहार में प्रतिदिन फौलाद, ताँबा और मैंगनीज के मिश्रण प्रयोग करायें। एल्यूमीनियम सल्फेट (Aluminium Sulphate) एक औंस प्रतिदिन प्रयोग करायें। १०० एम० एल० आस्टोकेल्सियम विथ बी१२ प्रतिदिन पिलायें।

शर्करा की अत्यधिक कमी

(Hypoglycemia)

इस रोग को एसिटोनेमिया (Acitonemia) तथा कीटोसिस (Ketosis) भी कहते हैं। यह रोग दुधारू पशुओं को अधिकतः विशेषकर गायों को होता है।

कारण :—पशु के प्रसवोपरान्त ६ से ८ सप्ताह के अन्दर यह रोग हो जाता है। यह रोग कार्बोहाइड्रेट के चयापचय में न्यूनाधिक्य तथा रक्त में शर्करा का स्तर गिर जाने के कारण होता है। यदा-कदा यह केल्शियम की न्यूनता के साथ भी प्रस्तुत होता है।

लक्षण :—अचानक दूध आना बन्द हो जाना, स्नायविक उत्तेजना और उन्माद के साथ तापक्रम, नाड़ी गति, श्वसन क्रिया आदि में कोई गिरावट नहीं होती, त्वचा और चर्बी की क्षिप्रता से क्षीणता, श्वास और मूत्र में एसीटोन आने के

कारण क्लोरोफार्म जैसी मधुरता, चुने चारा को ही खाना पसन्द करना, भूसा खाता किन्तु दूसरा चारा नहीं छूता।

निश्चयात्मक निदान के लिए मूत्र का रोथराजटेस्ट करायें। रक्त और मूत्र में एसीटोन का मिश्रण बढ़ जाता है। लैबेन टेस्ट भी करायें।

चिकित्सा :—एथिकेर के कैलमेग (Calmag) का ४०० से ४५० मि० लि० की शिरा मार्ग में या हैक्स्ट के होस्टाकार्टिन-एच १० मिलि० की त्वचा में सुई लगायें या साराभाई के वेटेलाग (Vetalog) या ग्लैक्सो के वेटन साल की २ से ५ मि० लि० की त्वचा में सुई लगायें या केल्शियम मैगनेशियम बरो ग्लूकोनेट ५०० मि० लि० की शिरा मार्ग में सुई लगायें या एम० एण्ड बी० के मिफेक्स ४५० मि० लि० का शिरा में धीरे-धीरे अन्तःक्षेपण करें।

बी० आई० के डेक्स्ट्रोज (Dextrose) के २५ से ५०% विलयन या ग्लूसीन (Glucine) या (बी०पी०सी० स्ट्रॉग डेक्स्ट्रोज इन्जेक्शन एथिकेर निर्मित का ५० प्रतिशत विलयन का ५०० से १००० मि० लि० का शिरामार्ग से अन्तःक्षेपण करें। आपातकालीन अवस्था में डेक्स्ट्रोज मोनोहाइड्रेट का विसंक्रमित विलयन उच्चकोटि के परिस्रुत जल में निर्मित का तत्काल प्रयोग बहुत लाभप्रद है।

स्नायविक विकारों का निराकरण करके मस्तिष्क को नियन्त्रित करने तथा सेल्युलोज के पाचन को सुधारने के लिए निम्नांकित मिश्रण लाभप्रद हैं—

क्लोरल हाइड्रेट ३० ग्राम, पानी १२५ मि० लि० तथा आयल लिनसीड २५० मि० लि० एकत्र मिश्रित कर प्रतिदिन एक बार तीन दिन तक पिलायें।

रक्तमेह
(Haematuria)

यह रोग ज्यादातर पर्वतीय स्थानों पर घोड़ों और पशुओं को होता है।

कारण :—पशुओं के शरीर में खनिज तत्वों की न्यूनता (Mineral Deficiency) के कारण होता है। इसके अतिरिक्त इस रोग का कारण कई प्रकार के कीटाणु या खराश उत्पन्न करने वाले मिश्रण भी होते हैं; जो वृक्कों

और मूत्राशय में खराश उत्पन्न कर देते हैं। पाचन क्रिया का विकार और विटामिन सी की न्यूनता भी इस रोग का कारण हो सकती है। गुर्दे की तीव्र शोथ (Nephritis), आघात, सिस्टाईटिस, मूत्र-प्रणाली की शोथ, मूत्र-मार्ग की अश्मरी आदि कारणों से भी मूत्र में रक्त आने लगता है। कैन्थाराइड्स, तारपीन का तेल और कार्बोलिक एसिड जैसी तेज दवाओं के प्रयोग से भी यह रोग हो जाता है। एन्थ्रेक्स रोग में भी पशु के मूत्र में रक्त आने लगता है। कोरीने बैक्टेरियम कीटाणुओं के मूत्र-मार्ग में संक्रमण से भी रक्त आने लगता है।

लक्षण :—पशु के मूत्र में कमी या अधिकता के साथ रक्तस्राव होने लगता है। किन्तु कभी-कभी इसकी मात्रा इतनी कम होती है कि 'गो यूरिन टेस्ट' किये बिना प्रतीत नहीं हो सकती। यदि यह रोग कुछ दिनों तक बना रहे, तो रक्त की कमी, दुर्बलता और दुबलापन आ जाता है। मूत्र का रंग लाल हो जाता है। यदि मूत्र आते समय आरम्भ के मूत्र में रक्त हो तो समझें कि चोट मूत्र-प्रणाली में लगी है। मूत्र के अन्त में रक्त आने पर चोट मूत्राशय या गुर्दे में लगी है। यदि आघात गुर्दे में लगा है तो मूत्र हल्का रक्तमिश्रित होगा। अन्त में जमा हुआ रक्त निकलेगा।

चिकित्सा :—मूत्राशय को १ प्रतिशत वाले फिटकरी के घोल से या एक प्रतिशत वाले मेथीलीन ब्लू (Methiline Blue) के लोशन से धोयें और प्रतिदिन एक लाख यूनिट ग्राम (ग्लेक्सो) नामक पेनिसिलीन का तेल वाला मिश्रण (Penicillin in Oil) एक सप्ताह से १५ दिन तक प्रयोग करें। भोजन में प्रतिदिन २ औंस केल्शियम कार्बोनेट मिलायें। विटामिन के का प्रयोग करें। पशु के कूल्हों पर बर्फ रखें।

जब रक्तस्राव मूत्राशय से आये तो मूत्राशय को एड्रेनालीन हाइड्रोक्लोराइड के १ में ५००० शक्तिवाले सोल्यूशन से धोयें।

मूत्र-प्रणाली से रक्त आने पर कैथेटर डालकर १ प्रतिशत फिटकरी लोशन प्रविष्ट करके मूत्र-प्रणाली को धोने से रक्तमिश्रित मूत्र-स्राव होना ठीक हो जाता है।

कोरीने वेक्टीरियम कीटाणुओं के गुर्दे में संक्रमण से उत्पन्न रक्तस्राव में पशु को १० लाख यूनिट पेनीसिलीन का प्रतिदिन मांस में इन्जेक्शन ८ से १२ दिन तक लगायें।

मूत्र में रक्त से उत्पन्न प्रदाह एवं विषैले संक्रमण को दूर करने के लिए टेरामाइसिन का इन्जेक्शन १० से ३० मि० लि० का मांस में लगायें।

रक्तस्राव के कारण दुर्बलता को दूर करने के लिए विटामिक्स-एम विटाब्लेण्ड (Vitamix-M—फाईजर) २५ ग्राम चारा में मिलाकर खिलायें या ग्लैक्सो का(विटाब्लेन्ड Vitablend) २० ग्राम दवा १ क्विटल पशु के चारा में मिलाकर खिलायें।

वाइथ का पेनिड्योर एल-ए-१२ का पशु को प्रति सप्ताह १-२ इन्जेक्शन मांस में लगायें तथा साराभाई के पेग्ड्स ४ लाख यूनिट की १-२ गोलियाँ प्रतिदिन एक-दो बार पानी से खिलायें।

सायनेमिड का एक्रोमाइसिन वेटडोजर निम्नांकित मात्रानुसार खिलायें—

बछड़े व बच्चे को ४ मि० लि० (८० बूंद) प्रति २३ किलो शरीर भार के अनुसार प्रतिदिन लाभ होने तक, गाय, भैंस, बैल और घोड़े का ८ मि० लि० (१६० बूंद) प्रति २० किलो शरीर-भार के अनुसार प्रतिदिन तब तक दें जब-तक सब लक्षण और उपद्रव दूर न हो जायें। भेंड़, बकरी और मेमने को ½ मिलि० (१० बूंद) प्रति १-२ किलो शरीर भार के अनुसार प्रतिदिन पूर्ण लाभ होने तक, भेड़-बकरी को २०-२५ बूंद प्रतिदिन प्रति १ किलो शरीर-भार के अनुसार।

उपर्युक्त सभी योग घोड़े और दुधारू पशुओं के लिए लाभदायक हैं। दुर्बल पशु की रक्ताल्पता को दूर करने के लिए हिमालयन बत्तीसा चूर्ण ५० ग्राम आहार के पश्चात् तीन दिन में एक बार जीभ पर रगड़ें। इस प्रकार १८ दिनों में ६ बार प्रयोग करें।

घास आक्षेप (ग्रास टिटैनी)

(Grass Tetany)

मेगनेशिया की अत्यधिक न्यूनता, घास का सिर चक्कर और दूध का टिटेनो (Lactation Tetany) कहा जानेवाला यह गाय का घातक रोग है, जो

मैग्नेशिया की कमी के कारण तथा रक्त-संचालन में कैल्शियम और मैग्नेशियम के अनुपात में व्यतिक्रम हो जाने से उत्पन्न हो जाता है।

लक्षण :—रुग्ण पशुआक्षेप (टिटैनी) रोग के कारण अचेत हो जाता है; आक्षेप (अकड़न) और तीव्र व्याकुलता होती है। यह रोग शीतकाल के अन्त तथा वसन्त में होता है। रोग के आरम्भ में पशु शिथिल हो जाता है; क्षुधा-मंद हो जाती है, पशु चक्कर काटने लग जाता है। इसके पश्चात् वह दांत पीसता है, जबड़ा जकड़ जाता है। पेशियों में ऐंठन होती है। मांसपेशियों तथा पिछले अंगों में धनुष के समान ऐंठन होती है। ज्वर नहीं होता।

रोग पुराना होने पर गाय की स्थिति बिगड़ती जाती है। समय पर उपचार न करने पर गाय की मृत्यु हो जाती है।

बछड़े-बछियों को टिटैनी रोग होने पर काफी दूध पीने पर भी उनके रक्त में मैग्नेशिया बहुत कम हो जाता है। आरम्भ में शावक का पैर कठोर हो जाता है, वह एकाएक जोर से चिल्ला पड़ता है।

चिकित्सा :—कैल्शियम क्लोराइड ३० ग्राम और मैगनेशियम क्लोराइड ८ ग्राम २५ मि० लि० परिस्नुत जल में घोलकर पशु की शिरा में (I.V.) धीरे-धीरे इन्जेक्शन लगायें। यह इन्जेक्शन शिरा में १० से १५ मिनट से अधिक समय में लगाया जाये। दूसरा इन्जेक्शन लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

बछड़े को चारा में यथोचित मात्रा में मैगनेशियम, कापर (तांबा) और लोहा भी मिलाकर खिलाना लाभप्रद है। रुग्ण पशु को क्लोरल हाइड्रेट पिलायें।

सुरक्षा :—पशुओं के चारा में मैगनेशियम, कापर और आयरन आवश्यक मात्रा में मिलाकर खिलायें। स्वच्छता का पूरा ध्यान रखें। रोगाक्रांत पशु को अन्य पशुओं से अलग रखें।

पशुओं के नेत्र रोग

(Eyes Diseases of animals)

आँख दुखना

(Periodical ophthalmia)

तेज गर्मी व धूप के प्रभाव, नमी वाले स्थान में बांधे जाने के कारण, चोट

लग जाने, आँख में किरकिरी पड़ जाने या मक्खी-मच्छर काटने आदि कारणों से पशु के नेत्र लाल होकर पीड़ा करने लगतीं, सूज जातीं, उनसे जलस्राव होता और कीचड़ बहने लगता है। पशु सदैव आँखें बन्द किये रहता है।

चिकित्सा :—यदि किसी चीज के आँख में पड़ जाने से दुखने लगी हो तो उसे सावधानी से निकालकर २-४ बूंद स्वच्छ अण्डी का तेल डालें। फिर गुलाबी फिटकरी २ ग्राम, २५ ग्राम गुलाबजल में घोल-छानकर ड्रापर द्वारा आँखों में १०-१२ बूंद टपकायें।

निम्नांकित आई ड्राप्स के प्रयोग से नेत्र-पीड़ा के सभी विकार दूर हो जाते हैं—

बोरिक एसिड या पोटार्गल १ ग्राम ४५ मि० लि० गुलाबजल या परिश्रुत-जल में मिलाकर फिल्टर पेपर से छान लें। २-४ बूंद दवा पीड़ित आँख में दिन में दो बार डालें।

नेत्रशूल और लाली
(Periodical ophthalmia)

यह सामान्य आँख दुखने से अधिक कष्टप्रद रोग है। इस रोग की सम्यक् चिकित्सा न करने पर पशु को मोतियाबिन्द और कई अन्य नेत्र-रोग होकर पशु अंधा हो सकता है। इसका आक्रमण एक समय में एक ही आँख में होता है। यथोचित दवा न करने पर दूसरी आँख भी रोगाक्रांत हो जाती है।

लक्षण—पुतलियाँ फैल जाती हैं। प्रकाश में आँखों से जलस्राव होने लगता है, नेत्र-ज्योति दुर्बल हो जाती है। कनीनिका का धुंधलापन, नेत्र की सतह पर लाल रेखाएं दिखाई पड़ती हैं। रात को आँखों की पलकें परस्पर चिपक जाती हैं। कुछ ही दिनों में नेत्र का वाह्य और मध्य भाग नीले रंग का और निचला भाग हरा दीख पड़ता है। इस रोग के दो-तीन आक्रमण होने के पश्चात् आंख अपेक्षाकृत छोटी और नुकीली दिखाई देती है।

चिकित्सा—पेनिसिलीन आई आयण्टमेण्ट या टेरामाइसिन आई आयण्टमेण्ट फार वेटरनरी आक्रांत आँख में लगायें।

बायर का पोटारगोल आई ड्राप्स २-४ बूंद पशु की आंख में डालें। काम्बायोटिक का इन्जेक्शन मांस में प्रतिदिन लगायें।

कणीय नेत्राभिष्यन्द
(Granular conjunctivitis)

लक्षण—नेत्र के श्वेत भाग में लाल-लाल कण दिखाई पड़ते हैं। नेत्रों से कीचड़ आता है।

चिकित्सा—०·५ ग्राम सिलवर नाइट्रेट को १०० मि० लि० परिस्रुत जल में भली-भांति घोलकर फिल्टर पेपर से छान लें तथा पीड़ित आंखा में डालें। २-४ बूंद दवा ड्रापर द्वारा प्रतिदिन एक-दो बार डालनी चाहिए।

ढलका (जलस्राव)
(Epiphora)

यदि पशु की आंखों से पानी या आंसू बहने लगे तो एलम पाउडर (फिटकरी का चूर्ण) १३० मि० ग्राम और एसिड गैलिक १ ग्राम दोनों को खूब खरल करके वैसलीन में मिलाकर आंखों में लगायें। आंख को बोरिक रुई से सेंक करें।

आँख का फफोला, जाला
(Leucoma, Maculae, Lutea)

अधिक दिनों तक आंखें दुखते रहने तथा उचित उपचार न किये जाने के कारण कभी-कभी पशु की आंखों में घाव हो जाता है, आंख की पुतली पर सफेद जाला छा जाता है तथा पशु को कम दिखाई देता है। नेत्रों से सदैव पानी और कीचड़ बहता रहता है और अंत में आंख में फफोला-सा पड़ जाता है।

चिकित्सा—यदि पशु की आंख में फफोला पड़ जाये तो टेरामाइसिन या क्रिस्टापेन आई आयण्टमेण्ट पशु की आंख में लगायें। साथ ही काम्बायोटिक वेटरनरी (फाईजर निर्मित) ½ ग्राम प्रतिदिन मांस में इन्जेक्शन लगायें। पशुओं के चारा में टी० एम—५ आवश्यक मात्रा में मिलाकर दिन में दो बार खिलायें।

येलो (Yellow) आयण्टमेन्ट ४ ग्रेन प्रति औंस वाला रात को आँख में लगायें तथा आँख पर गर्म पट्टी बाँधें।

यदि आँखें चिपक जायें या आँख से कीचड़ आये तो एक चम्मच बोरिक एसिड को आध पाव ताजे जल या गुलाब जल में घोलकर उबालें तथा उसमें स्वच्छ रूई या स्वच्छ कपड़े को गद्दी डुबोकर पीड़ित आँख पर गर्म-गर्म सेंक करें।

आँखों से कीचड़ आना
(Lippitude)

लक्षण—आँख के पपोटों के अन्दर पुराना प्रदाह हो जाने पर उनसे कीचड़ आने लगता है। आँखें चिपक जाती हैं।

चिकित्सा—प्रोपामिडीन आप्थेल्मिक सोल्यूशन (Propamidine Ophth. Sol.—मे० एण्ड बेकर निर्मित) से पीड़ित नेत्र को धोकर साफ करें। फिर क्रिस्टापेन आई आयण्टमेण्ट (ग्लेक्सो) आँख में लगायें। सिबा का प्रिवीन (Privine) ४ बूंद पीड़ित आँख में ३-४ बार डालें।

कोर्टेड्रेन (Cortadien) की गोलियाँ खिलायें।

रतौंधी
(Nyctalopia)

अंग्रेजी निक्टालोपिया (Nyctalopia) तथा नाइट ब्लाइंडनेस (Night Blindness) और बोलचाल की भाषा में रतौंधी कहा जाने वाला यह रोग मनुष्यों की भाँति कभी-कभी पशुओं को भी हो जाता है। मस्तिष्क की दुर्बलता—विटामिन ए और डी की कमी से प्रायः यह रोग हो जाता है। यह रोग: प्रायः बछड़े को ही होता है।

लक्षण—सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय होने तक रात को बछड़े या पशु को विशेषकर गर्भवती गाय, भैंस आदि अंधी-सी हो जाती हैं। फलतः उन्हें अपना चारा खाने में बड़ी असुविधा होती है और वे दूसरे पशुओं से टकरा भी जातीं और उलझ जाती हैं।

चिकित्सा—पशु को ग्लैक्सो का विटाब्लेण्ड चारा में प्रति दिन मिलाकर खिलायें। उन्हें कुछ दिनों तक निरन्तर २० से ३० बूंद तक काड लिवर आयल दूध में मिलाकर प्रातः-सायं पिलायें।

ग्लैक्सों के प्रिपेलीन २० मि० लि० की सुई मांस में प्रतिदिन ४ दिन तक लगाते रहें।

ग्लैक्सो का एडेक्सोलीन (Adexolin) या वाइथ का आस्सीविट (Ossevite) २ से ४ कैप्सूल प्रतिदिन दो बार भोजन के बाद तथा एडेक्सोलिन ड्राप्स २५ से ३० बूंद प्रतिदिन दो बार पिलायें।

धुन्ध (तिमिर)

लक्षण—कभी-कभी पशु की आँखों में अंधेरा दिखाई देता है। अधिकतर हल में जोते जाने वाले पशु इस रोग से पीड़ित होते हैं। यह रोग धूप में अधिक परिश्रम करने से हो जाता है। पशु को आँखों में धुंध पैदा हो जाती है और उसे स्पष्ट दिखाई नहीं देता।

चिकित्सा—बायर का मिण्टेकाल सोलूबल २-४ बूंद दोनों आँखों में डालें। बूट्स का डी० एफ० पी० आई ड्राप्स २-४ बूंद दिन में तीन बार आँखों में टपकायें। डाई-हाइड्रो आर्गोटेमीन सैन्डोज (Di-Hydroergotamine-Sandoz) के २ मि० ग्रा० की मांस में प्रतिदिन सुइ लगायें या इसी को २० से ३० बूंद प्रतिदिन तीन बार पिलायें।

पपोटों का पक्षाघात
(Ptosis)

लक्षण—इस रोग में पशु के आँख के ऊपरी पर्दे में उठने या गिरने की शक्ति नहीं रह जाती। पर्दों में पक्षाघात हो जाता है। यह रोग प्रायः सर्दी लगने के कारण या स्नायविक दुर्बलता से होता है।

चिकित्सा—पशु की पीड़ित आँख को बोरिक एसिड मिले गर्म जल की भाप से दिन में २-३ बार सेंक करें। उसमें सिबा का कोर्टिसोन (Cortisone) ड्राप्स २-४ बूंद प्रति ३-४ घन्टे बाद डालें। ग्लैक्सो का कार्टिलिन आई आयण्टमेन्ट लगाना भी लाभप्रद है।

कान बहना
(Otorrhoea)

पशु के कान के भीतर पानी आदि चले जाने या कान के अन्दर फुन्सी पक कर फूट जाने से कान के अन्दर घाव होकर कान बहने लगता है तथा उससे तरल स्राव या पीप निकलती रहती है।

चिकित्सा—कान को पहले नीम की पत्तियां डालकर उबाले हुए पानी या हाइड्रोजन पेराक्साइड से साफ करके तथा विसंक्रमित वस्त्र की वत्ती से पोंछकर, सुखाकर एम० एण्ड बी० का आटोरील ईयर ड्राप्स (Otoryl Ear Drops) २-४ बूंद प्रतिदिन २ बार कान में डालें। पूर्ण लाभ होने तक नित्य यह प्रयोग करते रहें। साथ ही उक्त कं० का ही ट्रिजामाइड ५ ग्राम की ½ से १ या २ इम्ब्रेट्स प्रति ६ घन्टे बाद खिलायें।

कान को उपर्युक्त विधि से साफ करके डाइक्रिस्टिसिन फोर्ट (साराभाई निर्मित) १ से २ ग्राम २ से ५ मि० लि० स्ट्रेराइल परिश्रुत जल में घोलकर २ से ४ बूंद कान के भीतर प्रतिदिन दो बार ड्रापर से डालें। साथ ही फाईजर का टेरामाइसिन ५ से १० मि० लि० या साराभाई का डाइक्रिस्टिसिन १ से २ ग्राम की मांस में प्रतिदिन सुई लगायें।

नाक में मस्सा हो जाना
(Polypus Narium)

पुराने नजला-जुकाम से नाक की श्लेष्मिक झिल्ली में प्रदाह तथा मस्सा उत्पन्न हो जाता है। कभी-कभी इससे रक्तस्राव भी होता है।

चिकित्सा—यदि मस्सा नरम या पिलपिला हो तो 'पोलिपस स्नेयर' यन्त्र से दबाकर और काटकर निकाल दें तथा पेनिसिलीन का इन्जेक्शन प्रति १२ घन्टे बाद मांस में लगायें।

औरियोमाइसिन खिलायें तथा एक्रोमाइसिन का इन्जेक्शन गहरे मांस में लगायें।

मे० एण्ड बेकर के मीफेक्स (Mifex) का ३५० मि० लि० ग्राम का इन्जेक्शन प्रति तीसरे दिन लगायें।

त्वचा सम्बन्धी रोग

खुजली-खारिश

(Mange or pruritis, Scabies)

खाज या खुजली का यह संक्रामक रोग बहुत दुर्बल पशुओं के गन्दे तथा नमी वाले संकीर्ण स्थान में रहने से एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं के संक्रमण से हो जाता है। प्रायः पशुओं को जूं, किलनी, कुटकी आदि के काटने से भी खुजली उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति हो तो उन्हें नष्ट करने का यत्न करें। यदि किसी स्पष्ट कारण बिना तेज खुजली हो तो एलर्जी के प्रकरण में लिखित औषधियों का प्रयोग करें। यदि छूत वाली खुजली हों—जिसका कारण विशेष जाति के कीटाणु होते हैं, तो इससे पीड़ित पशु को स्वस्थ पशुओं से बिल्कुल पृथक् कर दें।

चिकित्सा—रुग्ण पशु को कार्बोलिक सोप या सल्फर सोप या पार्कडेविस के निकोसोप से नहलायें। सल्फर आयण्टमेण्ट लगायें।

खुजली पीड़ित स्थान को टेटमोसोल सोप से धोकर और साफ कपड़े से पोंछकर उसपर फाईजर का नेबा स्प्रिकलिंग पाउडर (Neba Sprinkling Powder) दिन में दो बार छिड़कें।

मे० एण्ड बेकर का एस्केबिआल (Ascabiol) एमल्शन को खुजली पर लगायें या बोरिक एसिड सेलिसिलिक १ भाग, पल्व केम्फर ½ भाग—नारियल के तेल में मिलाकर खुजली के स्थान पर दिन में दो बार लगायें।

पीड़ित स्थान को फिनायल के घोल या डेटाल विलयन से भली-भांति साफ कर इण्डियन हर्ब्स का हिमेक्स मलहम या बी० बी० बी० का हरबेक्स मलहम लगायें।

पशुओं के रक्त को शुद्ध करने तथा रक्त और त्वचा से कीटाणुओं तथा उनके विष को दूर करने के लिए इंडियन हर्ब्स के टीबर्ब के १ से २ कैप्सूल प्रतिदिन एक-दो बार गुड़ या आटे के अन्दर भर कर खिलायें।

गोल्डन लोशन लगाना भी लाभप्रद है। खुजली के स्थान पर लोरेक्सोन डस्टिंग पाउडर या क्रीम लगाना लाभकारी है।

आई० सी० आई० का टेटमासाल विलयन सर्वप्रथम खुजली के स्थान को स्वच्छ करके उस पर टेटमासाल १ भाग, गर्म किया हुआ परिश्रुत जल १० भाग मिलाकर दिन में दो बार लगायें।

दाद या दद्रु
(Ringworm)

खुजली की तरह दाद भी एक संक्रामक चर्म रोग है, जो पशुओं को भी हो जाता है और कठिनता से अच्छा होता है। इसकी छूत एक पशु से दूसरे पशु में बहुत शीघ्र पहुँच जाती है। कई प्रकार के फुंगस के संक्रमण से पशुओं को विशेषकर घोड़ों को दाद हो जाता है।

लक्षण—जिस स्थान पर दाद होता है, वहाँ गोलाकार चकत्ते पड़ जाते हैं, और उनमें भयंकर खुजली उठती है। पशु ज्यों-ज्यों उसे रगड़-रगड़कर खुजलाता है, उससे निकले हुए पानी से आस-पास और अन्य स्थानों में लगकर ये चकत्ते फैलते और बढ़ते जाते हैं। जब ये चकत्ते पक जाते हैं तो उनसे पानीदार रस तथा पतला पीब-सा निकलता है। आक्रान्त स्थान पर पपड़ी-सी जम जाती है। इस पपड़ी के नीचे दाद के कीटाणु सामूहिक रूप से रहते हैं। वह पपड़ी काली और त्वचा से कुछ ऊँची रहती है। दाद का स्थान भूरा, खुरदुरा, मोटा, पपड़ीदार व गोलाकार दीखता है। दाद शरीर पर कहीं भी हो सकता है। पीड़ित स्थान के बाल उड़े हुए और खड़े दीख पड़ते हैं, त्वचा काली हो जाती है। चकत्तियों के किनारों पर छोटे-छोटे दाने हो जाते हैं।

चिकित्सा—पीड़ित स्थान के बालों को भली-भाँति साफ करके निम्नलिखित मिश्रणों या औषधियों में से किसी एक का प्रयोग करें :—

आरम्भ में यदि रोग साधारण ही हो तो टिंचर आयोडिन के लगाने से ही अच्छा हो जाता है। सैलीसिलिक आयण्टमेंट (Salicylic Ointment) २० में एक वाला बहुत लाभप्रद है। क्रोई सोरोबिन मलहम ५० में एक वाला भी गुणकारी है।

एसिड कार्बोलिक और एसिड सेलिसिलिक २-२ ग्राम ३० ग्राम वेसलीन में मिलाकर दाद पर लगायें। मल्टिझगिन मलहम भी लाभप्रद है।

ग्लैक्सो का ग्रिसोविन (Gresovin) ३ गोलियां बछड़ों को तथा ४ से ६ गोलियाँ बड़े पशुओं को प्रतिदिन दो बार १० दिन तक खिलायें।

स्कैबिएज्मा लोशन (Ascabiasma lotion) १ से २ मि० लि० सप्ताह में दो बार मांस में इंजेक्शन लगायें।

एक्जिमा वाले चर्म रोग

(Eczematous Lesion)

उकवत, एक्जिमा या गजचर्म और दाद में मुख्य अन्तर यह है कि एक्जिमा वाले स्थान की त्वचा अधिक मोटी हो जाती है, किन्तु दाद वाले स्थान की त्वचा कम मोटी होती है। इसके बीच में और किनारे-किनारे पीली-पीली फुन्सियां-सी दीखती हैं। एक्जिमा दाद से अधिक कष्टप्रद और कष्टसाध्य होता है।

चिकित्सा—एक्जिमा पीड़ित त्वचा को पोटाशियम परमैंगनेट (लालदवा) या फिनायल या डेटाल लोशन अथवा नीम की पत्तियों के क्वाथ से भली-भांति धोकर साफ करके और साफ रूई या कपड़े से पोंछकर सुखाकर बी० बी० बी० का हरमैक्स मल्हम या इंडियन हर्ब्स का हिमैक्स आयण्टमेंण्ट या हिमालया ड्रग का वेजीकार्ट मलहम या एसिड सैलीसिलिक और एसिड टैनिक २-२ ग्राम ३० मि० लि० स्प्रिट में भली-भांति मिलाकर लोशन बनाकर आक्रांत त्वचा पर लगाकर मलें।

पीबयुक्त संक्रामक पिड़िकायें
(Contagious Erythema)

यह रोग भेड़, बकरी, बछड़े, बछियों में शीघ्रता से फैल जाता है। मुख में कण उत्पन्न करनेवाला यह रोग दो वर्ष से अधिक आयु के पशुओं को बहुत कम होता है।

लक्षण—प्रारम्भिक लक्षण में पीड़ित भाग हल्का लाल हो जाता है। विशेषकर मुँह और ओंठो के किनारे बहुत लाल हो जाते हैं। यह मस्से की भाँति दीख पड़ता है और धीरे-धीरे आकार में बढ़ता जाता है। इसमें पीब पैदा हो जाती है। जब यह पीड़का फटता है, तो इससे पीब निकलती है। फिर इसपर खुरण्ड या पपड़ा जम जाती है, जो धीरे-धीरे काली होकर २-३ सप्ताह में उतर जाती है। इस रोग के कारण बछड़े-बछिया दूध पीने या चारा खाने में असमर्थ हो जाते हैं। उनकी वृद्धि रुक जाती और शरीर का भार कम हो जाता है।

चिकित्सा—पपड़ी को हटाकर पीड़ित भाग को कोटाणुनाशक घोल, जैसे—मेथिलीन ब्लू और मरक्यूरोक्रोम या जिंक सल्फेट से पेण्ट कर दें। उसे एक प्रतिशत दवा का इन्जेक्शन लगा दें। प्रतिदिन पेनिसिलीन का इन्जेक्शन मांस में लगाते रहें।

सुरक्षा—रोगपीड़ित बछड़े-बछियों को अलग बांधें। स्वच्छता का पूरा ध्यान रखें। जिस स्तन से रुग्ण बछड़े ने दूध पिया हो उसे कीटाणुनाशक लोशन से धोकर ही दूध दूहें। पपड़ी को जला दें।

रसौलियाँ
(Tumours)

शरीर के किसी भी भाग में त्वचा के नीचे गोलाकार सूजन होकर अन्दर ही अन्दर बढ़ती जाती हैं। इनको दबाने से तनिक भी दर्द नहीं होता। ये रसोलियाँ पकती नहीं हैं। इन रसौलियों से चलने-फिरने और दैनिक क्रियाओं में

भी कोई बाधा नहीं पड़ती, जब तक कि वह बहुत बड़ी होकर किसी अंग विशेष को ढँक या दबा न दें। उस अवस्था में ये घातक हो जाती हैं। इनके कारण पशु से काम लेने में प्राय: कठिनाई होने लगती है और पशु पूर्ववत् अपना कर्तव्य पालन नहीं कर सकता।

चिकित्सा:—रसौली को दूर करने के लिए आपरेशन के अतिरिक्त और कोई पूर्ण चिकित्सा नहीं है।

टेरामाइसिन का इंजेक्शन १० मिलि० का गहरे मांस में लगायें या मे० एण्ड बेकर का वेसाडिन (Vesadin) का भी इन्जेक्शन एक दिन के अन्तर से मांस में लगायें। रसौलियों पर बेलाडोना प्लास्टर चिपकाना भी उपयोगी है।

सल्मेट की १-२ गोलियाँ प्रतिदिन खिलायें। साराभाई के पेण्टिड्स ४ लाख यूनिट की २ गोलियाँ, एम० एण्ड बी० के सल्फाडायाजीन की २ गोलियाँ, सिबा के ओरिसुल की १ गोली और हैक्स्ट के नोवालजिन की १ गोली—सबको मिलाकर एक मात्रा बनाकर पर्याप्त पानी से प्रतिदिन एक-दो बार पिलायें।

हैक्स्ट के ओम्नामाइसिन इण्ट्रामस्कुलर २ से ४ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से प्रतिदिन सुई लगायें।

घाव या जख्म

(Wounds)

चिकित्सा—घाव को साफ करके मरक्यूरोक्रोम (Merquiro Chrome) लोशन से ड्रेसिंग करें। घाव की सफाई का विशेष ध्यान रखें। घाव को किसी एण्टीसेप्टिक लोशन से धोयें और इसी से ड्रेसिंग करें। इसके लिए पेनिसिलीन आयण्टमेण्ट फार वेटरनरी एक उत्तम औषधि है। सिबाजाल पाउडर का प्रयोग भी बहुत लाभदायक है।

मे० एण्ड बेकर के स्ट्रेपेन (Strepen) का एक इंजेक्शन मांस में लगायें तथा इसकी एक से दो गोलियाँ ताजा पानी से दो बार प्रतिदिन खिलायें। I. C. I. के लोरेक्सेन एण्टीसेप्टिक क्रीम की घाव पर पट्टी बाँध दें।

पीड़ायुक्त घाव के लिए हैक्स्ट के ओम्नामाइसिन की १ ग्राम को सुई प्रतिदिन मांस में लगायें।

साधारण घाव में स्ट्रेप्टोमाइसिन ½ से १ ग्राम की मांस में सुई लगायें। घाव पर संब्लान विलयन को गाज में भिगोकर घाव पर पट्टी बांध दें या इंडियन हर्ब्स का हिमेक्स मलहम या बी० बी० बी० का हरमेक्स मलहम लगाते रहें।

घाव शीघ्र अच्छा करने के लिए साराभाई का पेण्टिडसल्फा २ से ४ गोलियाँ चारा में मिलाकर प्रतिदिन दो बार जल से खिलाना लाभप्रद है।

खुरों में घाव

कभी-कभी खुर घिस जाने, गरम रेत में चलने, कोई नुकीली चीज खुर में चुभ जाने आदि कारणों से खुर में घाव होकर पक जाता है और पशु को चलने-फिरने में कष्ट होता है। ऐसी अवस्था में शीघ्र ही जीभ और मुँह देखना चाहिए। यदि जीभ में छाले हों, तो वह खुरपका-मुँह पका रोग है, जिसका वर्णन संक्रामक रोगों के प्रकरण में हो चुका है। तब उसे अन्य पशुओं से अलग कर तदनुसार उपचार करना चाहिए। यदि जीभ में छाले न हों तो अन्य सामान्य कारणों से खुर में हुआ घाव समझें। एतदर्थ पशु के खुर को ध्यान से देखकर यदि कील, काँटा घुसा हो, तो उसे निकाल लें और डेटाल या बोरिक पाउडर मिले गरम पानी से खुर को अच्छी तरह साफकर पूर्वोक्त मलहम लगायें। तिल के तेल में तारपीन का तेल मिलाकर उसमें रुई का फाहा तर करके खुरों के बीच में भर देना भी लाभप्रद है।

पैर में कील-काँटा चुभना

यदि पशु के पैर में कांटा या कील चुभ जाये और वह आहत पैर से लंगड़ाता दीखे तो उसे चिमटी से तुरन्त निकाल लें। फिर जख्म को डेटाल के लोशन से धोकर रुई से पोंछ लें। उसमें सूजन होने पर बोरिक लोशन से टकोर करें या पेनिसिलीन मलहम लगाकर ड्रेसिंग करें। अधिक खून बह रहा हो तो १५००

अ० इ० का ए० टी० एस० की सुई लगायें या फाइजर के प्रोनापेन दस लाख यूनिट का एक इन्जेक्शन मांस में लगा दें। इससे घाव शीघ्र भर जायगा। इसके साथ ही ओरिसुल की २ टिकिया प्रति ४ घन्टे बाद काफी पानी से खिलायें।

कभी-कभी हल का फार पशु के पैर में लग जाता है, जिससे घाव हो जाता है और उससे खून बहने लगता है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त उपचार करें। साथ ही जखम पर टिंचर आयोडीन या टिंचर बेंजोएन या स्प्रिट का फाहा लगाकर पट्टी बांध दें। यदि घाव में कीड़े पड़ गये हों तो कीड़े मारने वाली दवायें, जैसे—फिनायल, आयडोफार्म, कार्बोलिक एसिड लोशन से घाव को धोते रहें।

नासूर
(Sinus)

जब लापरवाही से कोई घाव बहुत पुराना हो जाता है और किसी शिरा में हो जाता है, तो उससे हमेशा मवाद बहता रहता है।

नासूर केवल आपरेशन से ही ठीक हो पाता है। आपरेशन के बाद काम्बायोटिक का मांस में इन्जेक्शन प्रतिदिन लगायें। घाव पर पेनिसिलीन मलहम फार वेटरीनरी दिन में दो बार लगाकर ड्रेसिंग करनी चाहिए या Loicxane Ointment का प्रयोग करना चाहिये।

घाव को शीघ्र भरने के लिए मे० एण्ड बेकर के ट्राइनामाइड (Trinamide) की गोलियाँ खिलायें। पशु को पर्याप्त पानी पिलायें।

इण्डियन हर्ब्स का हिमैक्स मलहम लगाना भी बहुत लाभकारी है। मलहम लगाने से पहले घाव को फिनायल या डेटाल के घोल से भली-भांति धोकर साफ कर लेना चाहिए। जब तक घाव पूरी तरह ठीक न हो जाय तब तक नित्य एक-दो बार मलहम लगाते रहना चाहिए।

घाव को शीघ्र भरने के लिए साराभाई के पेप्टिड्स ४ लाख अ० इ० की एक गोली तथा सिबा के ओरिसुल की दो टिकिया मिलाकर ऐसी एक मात्रा पानी या चारा में मिलाकर प्रातः-सायं खिलायें तथा डाइक्रिस्टिसिन फोर्ट की सुई प्रतिदिन मांस में तब तक लगायें जब तक घाव पूरी तरह न भर जाये।

पशु का कन्धा लग जाना

(Sore Neck yoke Galls)

प्रायः अधिक बोझ खींचने, जुयें की लकड़ी की रगड़ से और अधिक काम करने से पशु के कंधे की त्वचा छिलकर घाव हो जाता है और कंधे में बहुत सूजन पैदा हो जाती है। यहाँ तक कि उसकी गर्दन रस्सी से बांधने योग्य नहीं रह जाती। बैल कंधे पर जुआ रखते ही दर्द के कारण झटककर गिरा देता है और काम के योग्य नहीं रहता। सूजन क्रमशः बढ़ती जाती है। पशु अपनी गर्दन न मोड़ सकता, न झुका सकता है। इस व्याधि के उत्पन्न होने का एक कारण कभी-कभी यह भी होता है कि हल के या गाड़ी के जुआँ के गर्दन वाले भाग का ठीक न जुड़ना या समान ऊंचाई के बैलों का न जोतना। बरसात में बैलों से कम काम लेने पर भी कंधा सूज जाता है और उसमें घाव हो जाते हैं तथा उसमें दर्द होने लगता है।

सुरक्षा—बैल की गर्दन पर गद्दी रखकर जुआँ बांधें। नये बैल के कंधे पर प्रथम बार जुआँ बाँधते समय इस बात का ध्यान रखें कि गर्दन छिलने न पाये। पशु की गर्दन की त्वचा पर नमक या नील का लेप मलें। इससे त्वचा कड़ी हो जाती है तथा कंधा नहीं उतरता। गर्दन की त्वचा पर तेल मलते रहें। सूजे हुए स्थान पर बोरिक एसिड मिले गर्म पानी से प्रतिदिन ३–४ बार एक-एक घंटे सेंक करें।

चिकित्सा—कंधा लग जाने पर सर्वप्रथम गरम पानी में नमक डालकर सेंक करें। उपलब्ध हो सके तो सुअर की चर्बी लगाने से कंधे का घाव और सूजन बहुत जल्दी ठीक हो जाती है। इसके लिए सुअर की चर्बी बहुत ही गुणकारी है।

टर्पेन्टाइन आयल (तारपीन का तेल) और कपूर समान भाग, नारियल का तेल ८ भाग मिलाकर लगायें। यदि शोथ अधिक हो तो बोरिक एसिड गर्म पानी में घोलकर कपड़े की पट्टी डुबो-डुबो कर सेंक करें।

आधुनिक औषधियों में पेनिसिलीन मलहम लाभकारी है।

फाईजर का प्रोनापेन (Pronapen) ४ से २० लाख यूनिट का मांस में इन्जेक्शन लगायें।

आक्रांत स्थान को पहले नीम के क्वाथ से धोकर और बोरिक रूई से भली-भाँति पोंछकर सुखा लें। फिर आई० सी० आई० सैव्लान (Savlon) के १:३० अनुपात में मिले विलयन से विसंक्रमित करें। उसके बाद उस पर हिमैक्स मलहम को दिन में दो बार लगाकर बैण्डेज कर दें या सिबाजाल मलहम लगायें।

घाव पर टेरामाइसिन स्किन आयण्टमेट लगाना भी लाभदायक है।

यदि बोझ खींचने के कारण छाती पर घाव हो जाये और दर्द होने लगे तो सोंठ, सज्जी, राई, नमक, सोये के बीज, गाजर के बीज—सब समान भाग कूट-पीस कर रख लें। २ तोले की मात्रा में पुराने गुड़ में मिलाकर खिलायें।

सींग में कीड़ा लग जाना तथा टूट जाना

सींग के आस-पास फोड़ा-फुन्सी, घाव आदि की ओर ध्यान न देने से अथवा दो पशुओं के परस्पर लड़ने या किसी प्रकार चोट लग जाने से, सींग के टूट जाने से घाव होकर उसमें कीड़ा लग जाता है। कीड़ा लग जाने से पशु अपनी सींग पेड़, खम्भा या दीवाल से रगड़ता रहता है। कीड़ों का प्रभाव अधिक होने पर सींग एक ओर को झुक जाता है।

चिकित्सा—यदि सींग में कीड़े लगने की शंका हो, तो सींग के आसपास के स्थान को नीम की पत्तियों से उबले पानी से साफ करके ध्यान से देखना चाहिए कि कहीं कोई छेद या घाव तो नहीं है। यदि छेद या घाव हो तो तारपीन के तेल या फिनायल में रूई का फाहा तर कर उसके भीतर भर दें, जिससे कीड़े मर जायें। दिन में दो-तीन बार यही कार्य करें। यदि कीड़ों के प्रभाव से सींग झुक गया हो या बीच से टूट गया हो तो उसे आरी से काटकर अलग कर दें।

इससे खून बहने पर उसे रोकने के लिए ठंडे पानी में फिटकरी का महीन चूर्ण घोलकर उसमें पट्टी भिगोकर लगा दें।

खून बिल्कुल रुक जाने पर २ भाग फिटकरी और १ भाग नीलाथोथा महीन पीसकर उसपर भुरक दें। ऊपर से स्वच्छ रूई रख कर कपड़े की गद्दी लगाकर कसकर पट्टी बांध दें। फिर घाव की चिकित्सा की भांति इसकी भी चिकित्सा करें।

अग्नि-दग्ध
(Burns)

कभी-कभी भूल से पशु के आग में जल जाने या पशु के बांधने के स्थान के ऊपर छाये-छप्पर-मकान आदि में अचानक आग लग जाने पर पशु आग में जल जाते हैं। साधारण रूप से जलने पर तो वह स्थान लाल हो जाता है, किन्तु अधिक जल जाने पर वहां फफोले पड़ जाते या खाल उधड़ जाती है।

चिकित्सा—जले स्थान पर बर्नाल मलहम पक्षी के पंख से दो बार लगायें।

ट्रेगाकेन्थ (गोंद कतीरा) १ ड्राम, जनशन वायलेट ४० ग्रेन, डिस्टिल्ड वाटर ४ औंस—सबको मिश्रित कर लेप बनायें।

गाज की चार तह करके इस लेप में डुबोकर जले हुए स्थान पर लगायें। सिवाजाल पाउडर का प्रयोग भी बहुत लाभकारी है। यदि पशु बहुत जल गया हो तो पेनिसिलीन का इन्जेक्शन लगायें।

यदि पशु बहुत अधिक जल गया हो तो पेनिसिलिन का इन्जेक्शन लगायें।

फाईजर का काम्बायोटिक तथा मे० एण्ड बेकर का वेसाडिन (Vesadin) का एक इन्जेक्शन प्रतिदिन लगायें। यदि पशु जलने की जलन से व्याकुल हो तो १ गोली लार्जेक्टिल खिलायें।

यदि पशु बहुत अधिक जल गया हो तो ए० टी० एस० वेटरीनरी ३००० यूनिट बड़े पशु को तथा १५०० यूनिट बछड़े या छोटे पशु को मांस में शीघ्र ही सुई लगायें। जली त्वचा तथा फफोलों की त्वचा को काटकर हटा दें और घाव पर बायर का वेडियोनल जेली दिन में दो बार लगायें। एस० के० एण्ड एफ० का फुरासीन मलहम लगाना भी गुणकारी है।

लू लगना या धम्मड़ रोग
(Sun Stroke)

ग्रीष्म-ऋतु—मई-जून में तेज धूप में काम करने या घूमते रहने से पशु को भी लू लग जाती है।

लक्षण—पशु को धूप में खड़ा होना अच्छा नहीं लगता, वह छाया की ओर भागता है। पशु को ज्वर चढ़ जाता है। वह लड़खड़ा कर चलता, उसे तेज झटका लगता है और सांस तेज हो जाती है। आंतों में अकड़न आ जाती है।

सुरक्षा—पशु को तेज धूप में खुले चारागाह में न चरायें। पशुशाला में पशुओं की भीड़ न करें। पशु को पर्याप्त मात्रा में ताजा ठंडा पानी पिलायें।

चिकित्सा—पशु को ठंडा पानी खूब पिलायें। ग्लेक्सो का विटाब्लेण्ड (Vitablend) २० ग्राम १०० किलो चारा में मिलाकर खिलायें। टेरामाइसिन का एक इन्जेक्शन मांस में लगायें।

पशु में स्वास्थ्य और शक्ति लाने के लिए इण्डियन हर्ब्स का हिमालयन बतीसा पूर्वकथित मात्रा के अनुसार खिलायें या बी० बो० बी० का हरमिक्सा उपर्युक्त मात्रा में खिलायें या हैक्स्ट का टोनोफोस्फान का आवश्यकतानुसार प्रयोग करें।

गले की रुकावट
(Choaking)

गले की भोजन निगलनेवाली नली में किसी कड़ी और बड़ी चीज जैसे—गाजर मूली, शलजम, गन्ने का टुकड़ा या आम की गुठली आदि निगल जाने से गले में

अटककर रुकावट पैदा हो जाती है और नाक या मुँह के मार्ग से बाहर निकलने लगती है।

लक्षण—ऐसी कोई कड़ी चीज गले में अटक जाने पर पशु बार-बार खांसता है और उसे निगलने का प्रयत्न करता है। मुँह से लार टपकती, घबराहट और व्याकुलता होती है। यदि सीने के पास अटकी हो तो पशु थोड़ा पानी पीकर नाक या मुखमार्ग से निकाल देता है। अटकी हुई चीज अधिक देर न निकलने पर पशु को अफारा होकर बायीं कोख फूल जाती है। अटकाव का स्थान फूला हुआ गाँठ-दार दिखाई देती हो, टटोलने या देखने से पता न चले तो समझना चाहिये कि अटकाव सीने के नीचे है।

चिकित्सा—हर सम्भव प्रयास से अटकी हुई वस्तु निकालना ही इसका उपचार है। गले में अटकी दीखे तो हाथ डालकर निकाल दें। अटकाव नीचे हो, हाथ न पहुँचे तो अलसी का तेल या मीठा तेल समान भाग पानी में मिलकर पिलायें। इससे काम न बने तो पतली लोचदार लकड़ी के सिरे पर रुई लपेटकर घी या तेल में भिगोकर अटकी चीज को अन्दर ठेल दें। गले पर ऊपर से नीचे की ओर तेल की मालिश करें। कोई उपाय सफल न होने पर पशु को तत्काल पशु-चिकित्सालय ले जाकर आपरेशन करवा कर वह वस्तु निकलवा दें।

विषोपचार

(Treatment of Poisoning)

पशु को अधिक मात्रा में विष खिला दिया गया हो तो वह एकदम बीमार हो जायगा। उसके पेट में तीव्र पीड़ा होगी। व्याकुल होकर सींग तथा पैर पेट में मारेगा और बार-बार गरदन कोख की ओर घुमाकर देखेगा, मुँह से झाग गिरने लगेगा, पेट फूलता जायगा, पशु की प्यास बढ़ती जायगी। वह बार-बार पतला गोबर करेगा, फिर पतले दस्त होने लगेंगे। तदुपरान्त मल के साथ रक्त भी आने लगेगा तथा इसी विफलता की अवस्था में पशु की मृत्यु हो जायगी।

यों तो भिन्न-भिन्न प्रकार के विषों के लिए भिन्न-भिन्न लक्षण और पृथक्-पृथक् औषधियाँ आगे लिखी जा रही हैं। किन्तु यह समझ में न आये कि कौन-सा विष पशु को प्रभावित कर रहा है, तो भी प्राथमिक उपचार के रूप में सभी प्रकार के विषों के लिए कुछ औषधियाँ सबसे पहले लिखी जा रही हैं, जिसके द्वारा पशु की प्राण-रक्षा की जा सकती है।

———

सर्वविष-नाशक उपचार

१—दूध जितना अधिक पशु को पिला सकें, पिलायें। यदि विष तीव्र हो तो पर्याप्त मात्रा में घी भी पिलायें।

२—अण्डे की सफेदी को पानी में फेंटकर पिलाना भी बहुत लाभप्रद सिद्ध होता है।

३—पानी में साबुन घोलकर पशु को पिला दें। इससे पेट का विष मल-मार्ग से निकल जायगा।

४—एनिमा की सुविधा हो तो विधिपूर्वक एनिमा देकर पशु का पेट साफ करें।

५—४०० ग्राम अलसी को ४ किलो पानी में मंदाग्नि पर चलाते हुए पकायें। जब दालिया बन जाय तो छानकर नमक मिलाकर पशु को पिला दें।

६—चीनी का शर्बत पिलाने से भी विषैली घासों आदि का प्रभाव कम हो जाता है।

७—गन्धक का महीन चूर्ण १०० ग्राम, सोंठ का चूर्ण २० ग्राम, अलसी का तेल २०० ग्राम, चावलों का माँड़ आधा किलो—सबको एकत्र मिलाकर पशु को ढरके के द्वारा पिलायें।

ध्यान रहे कि जब तक पेट में कीड़ा रहे, पशु को पानी बिल्कुल न देना चाहिए।

———

घास या चारा का विष

(Grass Poisoning)

कुछ घासें या चारे भी कुछ कारणों से विषैले हो जाते हैं। बरसात में जब पानी बरसना अचानक बन्द हो जाता है और हरी ज्वार या बाजरा या एम० पी० चरी छोटी होती है तो उसमें एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है। उसे खा लेने से पशु के सारे शरीर में विष व्याप्त हो जाता है।

लक्षण—पशु चारा खाते-खाते अचानक गिर जाता है। पैर कड़े होकर फैल जाते हैं। मुँह से झाग आने लगता है। पशु बेहोश हो जाता है। चिकित्सा न करने पर उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—पशु को वमन कराने का प्रयास करें। एतदर्थ एपोमार्फिन (Apomorphine) का इन्जेक्शन लगाकर शीघ्र ही स्टॉमक ट्यूब से आमाशय को भली प्रकार धो डालें। एलम (फिटकरी) का गाढ़ा घोल पिलाकर या ३०-५० ग्राम नमक गर्म पानी में घोलकर बार-बार पिलाकर बार-बार कै करायें, जिससे सारा विष निकल जाय। तब डेक्स्ट्रोज का ४०% विलयन का धीरे-धीरे ५०० से १००० मिलि० की मात्रा में शिरा में इन्जेक्शन लगायें।

यदि यह निश्चय हो कि कौन-सा विष है तो सर्वप्रथम अण्डे की सफेदी पशु को बार-बार पिलायें। यदि विष का पता लग जाय कि अमुक विष दिया गया है या घास में पशु ने खाया है, तो उसकी उचित चिकित्सा करें।

विष खा जाना

(Poisoning)

कभी-कभी शत्रु या विद्वेषी खलजन पशु के चारा में विष दे देते हैं।

लक्षण—पशु का सारा शरीर गर्म हो जाता है। सारा शरीर थर-थर काँपने लगता है, आँखें लाल हो जाती हैं पशु का पेट फूल जाता है। कभी-कभी पतले, दुर्गन्धित और रक्तमिश्रित दस्त आते हैं। पशु तड़पने लगता है। गर्दन ऐंठ

जाती है। मुँह में घाव हो जाते हैं और अन्त में पशु तड़प-तड़प कर मर जाता है। उसके मुंह से दुर्गन्ध निकलती है।

चिकित्सा—सर्वप्रथम नमक मिला गर्म पानी मिलाकर पशु के मुंह में हाथ डालकर बार-बार के करायें। इसके बाद आमाशय को धोकर साफ करें।

पशु ने जो विष खाया हो उसके प्रतिविष विषवाली औषधि की सुई लगायें या दवा पिलायें।

यदि के न हो तो एपोमार्फीन का इन्जेक्शन लगायें। लाभ न हो तो १५-१५ मिनट बाद या आपातकालीन स्थिति में ५-५ मिनट बाद एपोमार्फीन का इन्जेक्शन लगायें। के होकर सारा विष निकल जाने पर पशु की शिरा में डेक्स्ट्रोज का इन्जेक्शन १००० मि० लि० तक धीरे-धीरे लगायें। विटाब्लेन्ड खिलाना भी लाभप्रद है।

संखिया का विष

(Arsenic Poisoning)

संखिया एक तीव्र विष है। यह कुछ कीटाणुनाशक औषधियों में भी प्रयुक्त होता है। संखिया के मिश्रणवाले कीटाणुनाशक घोल में पशु को धोने या स्प्रे करने, आर्सेनिक युक्त पौधारक्षक औषधि के छिड़काव से विषाक्त चारा खाने, कीटाणुनाशक दवा के अन्तर्ग्रहण या जीभ से चाटने, आर्सेनिक युक्त औषधियों के अधिक प्रयोग या विद्वेषी शत्रु द्वारा चारा में या रोटी आदि में संखिया मिलाकर खिला देने से संखिया के विष का घातक प्रभाव पशु पर पड़ता है।

लक्षण—विष पशु के पेट में चले जाने के कुछ ही समय पश्चात् पशु व्याकुल हो उठता है, उदर में शूल और दाह, वमन, दांत पसीना, क्षोभ के साथ दस्त, दस्त में रक्त का मिश्रण, अत्यधिक तृषा, नेत्र लाल होकर बाहर निकल आना, शरीर का नीला हो जाना, नाड़ी मन्द पड़ जाना, स्तब्धता एवं शीतांग आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। संखिया दिये गये कुत्ते के वमन में लहसुन के समान गंध होती है।

चिकित्सा—पशु को बार-बार घी, दूध तथा चावलों का माँड़ अधिक से अधिक मात्रा में पिलायें। दूध में मुर्गी के अण्डे घोल-घोलकर पिलायें।

सोडियम बायोसल्फेट १५ से ३० ग्राम २०० मि० लि० पायरोजेन फ्री परिश्रुत जल में घोलकर धीरे-धीरे शिरा में इन्जेक्शन लगायें। इसके साथ ही इसे ३० से ६० ग्राम की मात्रा में खिलायें।

बाल (Bal) २ से ३ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुपात से तीन बार तक मांस में सुई पूर्ण लाभ होने तक लगायें।

कुचले का विष

(Nux Vomica Poisoning)

कुत्ते को शत्रुता से मारने के लिए प्रायः खलजन कुचला खिला देते हैं या शत्रुतावश अन्य पशुओं के चारे में पीसकर मिला कर कुचला खिलाने की घटनायें कभी-कभी होती हैं।

लक्षण—कुचला खिलाये जाने के कुछ देर बाद पशु को जम्भाइयाँ आती हैं। फिर श्वासकष्ट, सायनोसिस, समस्त अंगों में ऐंठन और कष्टप्रद आक्षेप (Severe Tonic And clonic Spasms) आते हैं। गर्दन में ऐंठन, श्वास-गति में तीव्रता तत्पश्चात् श्वसन-संस्थान के अंगों में लकवा मार जाने पर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—लगभग ७००-८०० ग्राम केस्टर आयल पशु को पिलायें, जिससे दस्तों द्वारा शरीर का विष निकल जाये। एपोमार्फीन २० माइक्रोग्राम की शिरा में सुई लगाकर के करायें, जिससे आमाशय स्थित समस्त पदार्थ वमन होकर निकल जाये और आमाशय का प्रक्षालन करें।

पेण्टोबार्बीटल या इन्ट्रावल सोडियम (मे० एण्ड बेकर निर्मित) ०·५ ग्राम दवा २० मि० लि० विलयन में मिलाकर ३० मि० ग्रा० प्रति किलो शरीर-भार के अनुपात से शिरा या मांस में सुई लगायें।

सावधान ! कुचले के विष को चिकित्सा में केफीन और सिन्थेटिक नारकोटिक्स का कदापि प्रयोग न करें।

आर्गेनो-फास्फोरस योग

मेलेथियान, नेगुआन, सुमिथिआन आदि ऐसे आर्गेनो फास्फोरस के कम्पाउण्ड हैं, जो बहुधा पशुओं के कीड़े मारने, पिस्सुओं को नष्ट करने तथा पशुओं के शरीर पर तथा पशुशाला में छिड़कने और कीटाणु-विनाश के लिए फसल पर छिड़कने से, उसे खा लेने पर पशु इस विष से आक्रांत हो जाते हैं।

लक्षण—पशु के मुंह से लार टपकना, श्वासकष्ट, अतिसार, पेशियों की कठोरता तथा कंपन, पुतलियों का संकुचन, मस्तक में कंपन, अफारा होकर सारा शरीर फूल जाना, फिर शीतांग होकर पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—एट्रोपीन सल्फेट ०·२५ मि० ग्राम प्रतिकिलो शरीर भार के अनुसार पशुओं को तथा १ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुसार भेड़ को (उपलब्ध ०·६ मि० ग्रा० के एम्पूल्स) दें। औसतन कुछ मात्रा पशु के लिए ५० मि० ग्रा० है, जिसका आधा धीरे-धीरे शिरा में तथा शेष आधा मांस में सुई लगायें। ४-५ घंटे के अन्तर फिर सुई लगायें। साथ ही मे० एण्ड बेकर के केलबोरल २०० मि० लि० की शिरा में सुई लगायें। कुत्ते को ०·०२ मि० ग्रा० (औसतन मात्रा १ मि० लि०) एट्रोपीन सल्फेट शिरा में सुई लगायें तथापि आवश्यकता पड़े तो इसी मात्रा को दुबारा त्वचा में (S. C.) सुई लगायें। साथ ही कैलशियम सैन्डोज ५ से १० मि० लि० की मात्रा में शिरा में इन्जेक्शन लगायें। यदि अत्यधिक उत्तेजना और आक्षेप हो तो बार्बीट्यूरेट्स का प्रयोग कर उन्हें शान्त करें। डेक्स्ट्रोज सेलाइन की यथोचित मात्रा में शिरा मार्ग में अन्तर्क्षेपण करें।

क्लोरिनैटेड हाइड्रोकार्बन्स विष

साधारणतः खेतों में कीटाणुनाशक, फसल सुरक्षा तथा हानिकर सूक्ष्म जीवाणुनाश के लिए गमेक्सीन, डी० डी० टी०, एल्ड्रीन, इण्ड्रीन आदि विषैली दवायें, घोल और पाउडर के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। जिनके सीधे सम्पर्क में

आने से, त्वचा में लगने से या उनसे प्रभावित घास को या उनसे स्प्रे किये हुए घास-चारा, पौधे आदि को खाने से पशु उपर्युक्त विष से आक्रांत हो जाता है।

लक्षण—पेशियों में कम्पन, उत्तेजना, दांत पीसना, टिटेनी, श्वास कष्ट, चलने-फिरने में असमर्थता, ज्वर आदि के उपसर्गों के बाद प्रायः पशु की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—पशु की त्वचा को अच्छी तरह साबुन और पानी से धोकर साफ करें। यदि पशु ने विष खाया हो तो वमन लानेवाली दवा एपोमार्फिन की सुई लगायें या गर्म पानी में नमक घोल कर पशु को पिलाकर कै करायें तथा कैस्टर आयल पिलाकर दस्त करायें। इसकी विषनाशक कोई विशिष्ट औषधि नहीं है।

पेण्टोबार्बीटल का शिरा में इन्जेक्शन कुत्ते को तथा कैल्बोरल २०० मिलि० पशुओं के लिए प्रयोग करें। केल्शियम सैण्डोज ५ से १० मि० लि० कुत्ते की शिरा में इन्जेक्शन लगायें।

रक्त-संचालन की क्रिया में सहायता पहुँचाने के लिए सीबा के कोरामीन का मांस या शिरा में इन्जेक्शन लगायें।

नाइट्रेट या नाइट्राइट विष

विशेष नाइट्रेट तत्व वाली भूमि में उपजने वाले पौधों और चारों के पशु द्वारा खाने पर, संयोग या दुर्भाग्य से कभी अमोनियम नाइट्रेट रासायनिक खाद के खा लेने पर नाइट्रेट तत्वयुक्त गहरे कुयें का पानी पीने आदि कारणों से पशु इस विष से पीड़ित हो जाता है।

लक्षण :—पशु की लार टपकना, पेट में दर्द, क्षुधानाश, पेशियों में कम्पन, लड़खड़ाना, तापक्रम सामान्य से कम हो जाना, तीव्र आमाशय प्रदाह और तीव्र आंत्र शोथ आदि इस विष के खाने के सामान्य लक्षण हैं।

चिकित्सा :—गर्म पानी में नमक मिलाकर या एपोमार्फिन का इन्जेक्शन लगाकर पशु को वमन करायें और आमाशय प्रक्षालन करें।

मेथीलिन ब्लू का १% विलयन का २० से ४० मि० लि० की मात्रा में शिरा में इन्जेक्शन लगायें। यदि आवश्यकता हो तो दुबारा लगायें।

सीसा का विष

(Lead Poisoning)

इस विष से सामान्यतः पागुर करने वाले पशु प्रभावित होते हैं। मोटरगाड़ी की बैटरी, सीसा की गोली जैसी सीसा धातु, ल्युब्रिकैण्ट्स आदि निगल जाने के कारण पशु को इसका विष प्रभावित कर देता है।

लक्षण :—शीशा विष के प्रभाव से आक्रांत होने पर पशु लड़खड़ाता, डगमगाता है। जोर से डकारता, चिल्लाता, आँखों की पुतलियाँ फैल जातीं, अन्धापन आ जाता, उन्माद (पागल जैसी चेष्टायें), ऐंठन-आक्षेप, शून्यताधिक्य, आरम्भ में तीव्र जठराग्नि, फिर कब्ज, फिर अतिसार और उदरशूल आदि लक्षण दीखते हैं।

चिकित्सा :—पशु को मैग्नेशियम सल्फेट पानी में घोलकर पिलायें। कैल्शियम वर्सेनेट (Calcium Versenate) ७० मि० ग्राम प्रति किलो शरीर-भार के हिसाब से १२·५ प्रतिशत विलयन के रूप में दो मात्राओं में विभक्त कर तथा डेक्सट्रोज विलयन २५ प्रतिशत के साथ मिलाकर धीरे-धीरे शिरा में अन्तर्क्षेपित करें।

उपर्युक्त औषधि-व्यवस्था पशुओं के लिए है, किन्तु कुत्ते को शीशा-विष निवारणार्थ २५ मि० ग्राम प्रति किलो शरीर भार के अनुसार त्वचा में कैल्शियम वर्सेनेट की सुई लगायें और चार-पांच दिन बाद दुबारा यही मात्रा दें। विष-प्रभाव की उष्णता की शान्ति के लिए लार्जेक्टिल या सिक्विल का प्रयोग करें, क्योंकि वह अत्यधिक उत्तेजित और बौखलाया हुआ रहता है।

हाइड्रोसियैनिक अम्ल विष

(Hydrocyanic Acid Poison)

इस विष से सामान्यतः जुगाली करने वाले पशु प्रभावित होते हैं। हाइड्रोसियैनिक युक्त चारा, पौधे, हिवर पाड्स (Hiwar Pods), जुवार आदि के खाने से इस विष का घातक प्रभाव पशु पर पड़ता है।

लक्षण :—इस तीव्र विष के प्रभाव से १ से २ घण्टे में मरने की सम्भावना रहती है। विकट व्याकुलता, दारुण श्वास-कष्ट, पेट अफरा हुआ, आक्षेप और ऐंठन, आँखों की पुतलियाँ फैल जाना, श्लेष्मिक कला चमकीली लाल तथा रक्त भी चमकीला लाल, मुँह से कड़वे बादाम के समान गन्ध आदि लक्षण प्रगट होते हैं।

चिकित्सा :—चारा के साथ सोडियम थायोसल्फेट ३० से ६० ग्राम प्रति घंटा के अन्तर से ४-५ बार खिलायें। कैलबोरल, डेक्सट्रोज सेलाइन और एण्टी-हिस्टामिन योग का इन्जेक्शन लगाना लाभदायक है।

मिक्सचर :—सोडियम थायोसल्फेट १५ ग्राम, सोडियम नाइट्राइट ३ ग्राम, परिस्रुत जल २०० मि० लि०—सबको भली-भाँति मिश्रित कर शिरा मार्ग में इंजेक्शन लगायें। यदि आवश्यकता हो तो एक घटे बाद दुबारा इन्जेक्शन लगायें।

कीड़ों का विष

कभी-कभी वर्षा ऋतु में घास के साथ कीड़े खा जाने के कारण पशु का पेट फूल जाता है। वह पागुर करना बंद कर देता है और अचेत हो जाता है। आँखें उलट जाती हैं, मुँह से झाग निकलता है, खाना-पीना बन्द कर देता है तथा अचेत-सा पड़ा रहता है। कभी-कभी पेट फूल जाने से पशु व्याकुल हो जाता है।

चिकित्सा :—स्प्रिट कैम्फर ½ ड्राम बताशे में डालकर तीन-तीन घण्टे के बाद खिलायें। इसके पूर्व स्टामक ट्यूब से शीघ्र ही आमाशय का प्रक्षालन करें। टेरामाइसिन की गोलियाँ यथोचित मात्रा में खिलायें।

पागल कुत्ते-सियार आदि का काटना
(Rabies)

पागल कुत्ते के काट लेने पर और उसकी चिकित्सा शीघ्र ही न करने पर कैसा घातक परिणाम होता है, इसे थोड़ा-बहुत सभी जानते हैं। कुत्ते की भाँति कभी-कभी सियार भी पागल हो जाता है। पागल सियार जंगल में खौंखियाता

हुआ भागता रहता है और मनुष्यों या पशुओं से तनिक भी नहीं डरता। वह भी दौड़कर काट लेता है।

पशु को पागल कुत्ता या जंगल में पागल सियार के काटने से उनका विष व्याप्त हो जाता है और पशु के शरीर में विषैले और घातक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं।

लक्षण :—पागल कुत्ते या सियार के काट लेने पर पशु बहुत चौकन्ना, सचेत सूक्ष्मग्राही, अत्यधिक उदास, दूसरे पर आक्रमण करने की प्रवृत्ति वाला, दूसरे किसी पशु या मनुष्य को काट खाने को उद्यत हो जाता है। उसके मुँह से लार टपकती रहती है, कर्कश शब्द जो विशेष प्रकार का होता है, निकालता है।

सुरक्षा :—कुत्ते के काटे हुए घाव को तुरन्त ही कार्बोलिक साबुन और पानी से भली-भाँति धोकर और घाव पर पानी की धारा डालते हुए स्वच्छ कर देना चाहिए। यदि यह क्रिया काटने के १०-१५ मिनट के अन्दर ही कर दी जाये, तो विष-संक्रमण की सम्भावना कम हो जाती है। घाव को साफ करने के बाद घाव को नाइट्रिक एसिड से जला डालें या लापरवाही और काफी विलम्ब से इस प्रकार की क्रिया करने से कोई लाभ नहीं होगा।

कुत्ता काटने के पश्चात् पशु, भैंस और घोड़े को ५ प्रतिशत 'शीप ब्रेन कार्बोलाइज्ड वैक्सीन' की २० मि० लि० मात्रा त्वचा में (S. C.) १४ दिन तक इन्जेक्शन लगाना चाहिए। कुत्ते और बिल्लियों को ३ मि० लि० प्रतिदिन ७ दिन तक तथा भेड़ और बकरियों को ५ मि० लि० की मात्रा में १४ दिन इन्जेक्शन लगवायें।

अभी कुछ समय पूर्व पूना के 'इन्स्टीट्यूट आफ वेटरीनरी बायोलोजिकल प्रोडक्स' ने 'बी० पी० एल० एनएक्टिवेटेड एण्टी रेबीज वैक्सीन' का आविष्कार किया है। गोवंश और भैंसों के लिए इसकी मात्रा १० मि० लि० त्वचा में कुल १४ दिन तक इन्जेक्शन लगायें। कुत्ते और बिल्लियों को २ मि० लि० त्वचा में कुल ७ दिन तक; बछड़े, भेड़, बकरी और सुअर को ४ मि० लि० कुल ७ दिन तक तथा ऊँट और हाथी को ३० मि० लि० कुल १४ दिन तक इन्जेक्शन लगायें।

बायो० मेडि० वेक्सीन (एच० ई० पी०) २ मि० लि० का मांस में कुल ७ दिन तक सभी पशुओं को लगाना चाहिए।

रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करने के लिए पशुओं में एक मात्रा प्रोफाइ-लैक्टिक वैक्सीन सहित २०% भेड़ के मस्तिष्क का कार्बोलाइज्ड वैक्सीन ५ मिलि० मिलाकर त्वचा में इन्जेक्शन लगायें। प्रति ६ माह बाद यही मात्रा दुबारा प्रयोग करें।

आई० बी० आर० आई० इज्जतनगर (उ० प्र०) से प्राप्त एविए-जाइज्ड लिव रेबीज वाइरस वैक्सीन का ५० प्रतिशत वाला भी बहुत लाभदायक है। इसकी प्रतिरोधक क्षमता अवधि ३ वर्ष है। इसका ३ मि० लि० कुत्तों को ३ मास को आयु में मांस में पहला इंजेक्शन लगाया जाता है।

सर्प-विष चिकित्सा
(Snakebite Treatment)

वर्षाऋतु में लम्बी घास में प्राय: विषैले सर्प बैठे रहते हैं, जो कि पशु को काट लेते हैं। कच्चे पुराने मकानों के बिलों में रहने वाले साँपों के द्वारा भी कभी-कभी पशु के काटे जाने की घटनायें देखने-सुनने में आती हैं। साँप काट लेने पर उसके तीव्र विष-प्रभाव से पशु की मृत्यु हो जाती है। किन्तु यदि साँप काट लेने पर तत्काल समुचित उपचार किया जाय तो पशु के प्राणों की रक्षा की जा सकती है।

लक्षण—साँप काटने के लक्षण साँप की जाति और आकृति पर निर्भर करता है। सामान्यत: सर्प-दंशित पशु के शरीर में कम्प तथा शिथिलता आती है। आरम्भ में नाड़ी की गति तेज हो जाती है, किन्तु कुछ ही देर बाद शरीर में विष व्याप्त हो जाने पर रक्त गाढ़ा हो जाने के कारण नाड़ी की गति मंद हो जाती है। स्थानीय शोथ एवं पीड़ा होती है। पशु दंशित स्थान को पीड़ा के कारण छूने नहीं देता। इसके अतिरिक्त लार टपकना, अत्यधिक शून्यता, आक्षेप (अकड़न), झुकाव (पशु झुकता हुआ चलता) और पक्षापात। गो–भैंस वंश के पशुओं की ४८ घण्टे के अन्दर तथा कुत्ते की १ से १० घंटे के अन्दर श्वसावरोध के कारण

मृत्यु हो जाती है। विष के प्रभाव से आक्रान्त पशु के मुँह से विष मिश्रित झाग निकलता, आँखें पथरा जातीं और सारा शरीर काला पड़ जाता है। सर्प काटे का चिह्न पैरों के निचले भाग, माथा और थुथन पर खोजें।

चिकित्सा – जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो, उसके थोड़ा ऊपर रस्सी, सुतली, डोरी आदि से कस कर बाँध दें, जिससे रक्त की गति रुक जाय और विष ऊपर न चढ़ सके। फिर वहाँ पर तेज चाकू या छुरी से + आकार में चीर कर खून निकाल दें। काला-काला विषयुक्त रक्त निकल जाने पर उसमें पोटाशियम परमैंगनेट (लाल दवा) पीसकर भर दें। यदि लाल दवा उपलब्ध न हो तो नौसादर और आक का दूध मिलाकर भर दें।

सर्पदंशित पशु को एण्टीवेनम का इन्जेक्शन तुरन्त शिरा में लगायें। आवश्यकता होने पर एण्टीवेनम का दुबारा, तिबारा इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

पशु को स्प्रिट आफ अमोनिया (Spirit of Ammonia) पिलायें तथा दंशित स्थान पर लगायें भी। इससे भी विष का प्रभाव कम होता है।

पोलीवेलेण्ट एण्टी सीरम जो फ्रीज ड्राइड रूप में मिलता है, का दो एम्पूल्स का शिरा में प्रारम्भिक मात्रा के रूप में इंजेक्शन लगायें और जबतक पूर्ण लाभ न हो जाये तक तक उपर्युक्त मात्रा को दोहराते रहें।

रुग्ण पशु को सोने या झपकी बिल्कुल न लेने दें। निरन्तर जगाते रहें। यदि सम्भव हो तो दो तगड़े आदमी रुग्ण को दायें-बायें दोनों ओर से सहारा देकर दोनों हाथों को चलाते हुए टहलाते रहें।

पशु को वेक्सीन सुंघायें तथा शिरा द्वारा इंजेक्ट करें। बेहोशी की अवस्था में कृत्रिम श्वांस की व्यवस्था करें। आक्सीजन सुंघायें।

बर्र–बिच्छू आदि विषैले कीटों का काटना
(Insect Bite)

जब कभी पशु को बिच्छू, बर्र, मधुमक्खी, भौंरा, ततैया आदि काट लेती हैं, यानी डंक मार देती हैं तो उस स्थान पर तेज जलन और पीड़ा होती है, दंशित स्थान में शोथ हो जाती है और पशु बेचैन हो जाता है।

चिकित्सा—उपर्युक्त कीटों के दंश-स्थान पर पिसी हुई लाल दवा और टाटरी मिलाकर रख दें तथा ऊपर से एक-दो बूंद पानी टपका दें। इससे शीघ्र लाभ होगा।

मधुमक्खी, भ्रमर, वृश्चिक, बर्र, ततैया के विषों का अम्ल स्वभाव माना जाता है, इसलिए चिकित्सा में क्षारीय दवाओं का प्रयोग विष को निष्क्रिय कर देता है। लाईकर अमोनिया फोर्ट दंश-स्थान पर लगायें।

लाल दवा दंश स्थान पर पीसकर रखें, ऊपर से नीबू का रस डालें। बिच्छू का विष उतर जायगा।

लहसुन दूध मदार का दोनों संग मिलाय।
बिच्छू मारे पर धरे विष तुरन्त मिट जाय॥

———

मुर्गी-पालन-व्यवसाय

यद्यपि मुर्गी पशु नहीं, वरन् एक पक्षी है, किन्तु मुर्गी के अण्डे संसार के अधिकांश देशों में—जिनमें अपना भारत भी है, महत्वपूर्ण पोषकआहार के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। अन्य मांसाहारी देशों में अण्डे और मांस के लिए मुर्गियों का विस्तृत व्यावसायिक रूप में पालन किया जाता है। भारत में भी मुर्गी-पालन का व्यापसाय दिनों-दिन बढ़ता जाता है। मुर्गी-पालन थोड़ी पूंजी से प्रारम्भ किया जाने वाला एक अच्छा व्यवसाय है। मुर्गीफार्म खोलकर काफी धन कमाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त घरेलू रूप में भी मुर्गी पालन से काफी आय हो जाती है। ऐसे लोगों के लिए जिन्हें मुर्गी, मांसाहर और अण्डा भक्षण से घृणा नहीं है और अधिक पूंजी लगाने की सामर्थ्य नहीं है, मुर्गी-फार्म से अधिक अच्छा और लाभदायक दूसरा व्यापार नहीं हो सकता। अगर आपके खेतों के पास या घर के समीप कुछ खाली भूमि है तो वहाँ मुर्गी-फार्म सरलता से खोला जा सकता है।

मुर्गियों की नस्लें—मुर्गियों की बहुत-सी जातियां है। इन तमाम जातियों में देशी मुर्गियां सबसे छोटी हैं और सबसे कम अण्डे देती हैं। एक देशी मुर्गी सालभर में औसतन १०० से १२० अण्डे देती है। इसके विपरीत अमेरिकन जाति की मुर्गियां ह्वाइट लेग हार्न (White Leg horn) और आयरलैण्ड की मुर्गियां रैड रोड (Red Rhode) वर्ष भर में औसतन १५० से २०० तक अण्डे देती हैं। इनके अण्डे देशी मुर्गियों के अण्डों से आकार में बड़े होते हैं। बार्ड प्लाई माउथ राक (Barred Ply Mouth Rock) भी उत्तम जाति की मुर्गी है, जो ह्वाइट लेग हार्न आदि की भांति अण्डे देती है। वेअनडोट नाम की अमेरिकन जाति की मुर्गी बिल्कुल बार्ड प्लाई माउथराक की तरह होती है और उसी प्रकार अण्डे देती है।

अंग्रेजी जाति को मुर्गियां भी अच्छी होती हैं किन्तु वे उपर्युक्त समस्त अमेरिकन जाति की मुर्गियों की तुलना नहीं कर सकतीं। अंग्रेजो जाति की मुर्गियों में सबसे अच्छी कार्निश, सुसेक्स, अरपिंगटन, डार्किंग, अस्ट्रालोर्प और रेड कैप होती हैं। इसके बाद इटालियन जाति की मुर्गियां मिनारका, लेगहार्न, एण्डालुसियन, अनकोना और स्पेनिश होती हैं।

भारत के अतिरिक्त अन्य एशियाई देशों की मुर्गियों में लंगशन, वर्मा और कोचीन अधिक प्रख्यात हैं। भारत में भी विभिन्न जाति की मुर्गियां पाई जाती हैं। इनमें डंको, बुसरा, टेनी, तिलरी, तितरी, घागस, असील, करकनाथ, कश्मीरी और पंजाबी आदि अधिक उत्तम और प्रख्यात हैं।

असली मुर्गी-मुर्गा भारी और बड़े होते हैं। ये वस्तुतः मनोरंजनार्थ लड़ाने के लिए पाले जाते हैं और बहुत लड़ाकू होते हैं। इनकी कुश्ती दर्शनीय होती है। ये घण्टों लड़ते हैं और लड़ते-लड़ते मर जाते हैं, किन्तु मुकाबले से नहीं हटते।

इज्जत नगर (उ० प्र०) की सरकारी अनुसंधानशाला ने प्रवर प्रजनन (Selective Breeding) द्वारा देशी मुर्गियों की एक ऐसी नस्ल विकसित की है, जो साल भर में औसतन १५० से २३७ तक अंडे देती है।

मुर्गी-पालन से लाभ

यदि आप आमिष भोजी हैं, तो अपने घर में मुर्गियाँ पालने के कई लाभ हैं। अवकाश के समय के उपयोग के साथ ही खाने या बेचने के लिए उत्तम और ताजे अण्डे मिलते हैं और यदि पारिवार की आवश्यकता से अधिक मुर्गियाँ हों, तो इनसे आय भी होती रहती है। अच्छी जाति की एक दर्जन मुर्गियाँ पालने से प्रतिदिन ७-८ अण्डे मिल सकते हैं। घर के अण्डे बाजार के मोल लिये गये अण्डों से अच्छे होते हैं। मुर्गियाँ अण्डों के लिए, चूजे बेचने के लिए या मुर्गियाँ ही बेचने के लिए पाली जाता हैं। इन सब में अण्डों के लिए मुर्गी पालना सबसे अधिक लाभजनक है। अण्डे या चूजे बेचने के लिए आरम्भ में बाड़े में १० मुर्गियों के साथ एक मुर्गा रखें। सदैव अच्छी नस्ल की ही मुर्गियाँ पालें। रोड आइलैण्ड रैड और सफेद लेग हार्न भारत में मुर्गियों की सर्वोत्तम नस्ले हैं। ये अधिक अण्डे देने वाली अच्छी नस्लें सभी प्रदेशों में सरकारी पोलट्री फार्मों से मिल सकती हैं।

मुर्गी-पालन-विधि

यदि आप केवल अण्डों के लिए मुर्गियाँ पालना चाहते हैं तो शुद्ध नस्ल के स्थान पर संकर नस्ल की मुर्गियाँ पालें। संकर नस्ल की मुर्गियाँ शुद्ध नस्ल की मुर्गियाँ की अपेक्षा १८ प्रतिशत अधिक अण्डे देती हैं। एतदर्थ ऐसी व्यवस्था करें—

मुर्गियों की जाति	मुर्गे की जाति
सफेद लेग हार्न	आस्ट्रालार्प
रोड आइलेण्ड रैड	सफेद लेग हार्न
बार्ड प्लाई माउथ राक	रोड आइलेण्ड रेड

संकर जाति की मुर्गी बनाने के लिए प्रथम लिखी जाति की मुर्गी का मेल उसके सम्मुख अंकित मुर्गे से करायें।

मुर्गियों का दरबा बनाना

थोड़ी-सी मुर्गियाँ पालने के लिए अधिक स्थान या बड़े बाड़े की आवश्यकता नहीं है। उन्हें वर्षा और धूप से बचाने के लिए और रात में विश्राम करने के लिए छोटे दरबे में रख सकते हैं। इस दरबे को आप अपनी सुविधानुसार घर या पशुशाला की किसी खाली दीवाल या आँगन में दीवाल के सहारे बना सकते हैं। दीवाल पर बल्लियाँ या लोहे की चादरें या छप्पर डाल दें। मजबूत दरबा बनाने के लिए लोहे के एनालों से चौखटा बनाकर चारों ओर तार की जाली लगा दें। इसके भीतर बसेरे बनाकर उसके ऊपर लोहे की पत्तियों का जाल लगायें, जिससे मुर्गियों की बीट आदि नीचे भूमि पर गिरती रहे। इस दरबे को आप जहाँ चाहें रख सकते हैं।

एक मुर्गी के रहने के लिए दो वर्गफुट स्थान चाहिए। ८ फुट लम्बे, ६½ फुट चौड़े तथा ४ फुट ऊँचे दरबे में ५० मुर्गियाँ रखी जा सकती हैं। दरबा बनाते समय इस बात का ध्यान रखें कि उसमें किलनियाँ, कुटकियाँ और अन्य कीट न पहुँच सकें। उसमें समय-समय पर कीटाणुनाशक दवायें छिड़कते रहें। दरबा चारों ओर से हवादार हो तथा आँधी-पानी से सुरक्षित हो। साथ ही इस बात का ध्यान रखें कि मुर्गीशाला में हवा के सीधे झोंके या सीधी धूप भी न पहुँचे और न नमी हो। दरबों के द्वार पूर्व या दक्षिण-पूर्व की ओर हों, जिससे पछुवा हवा उनमें सीधी न प्रविष्ट हो सके। दरबे के आस-पास नींबू या शहतूत के पेड़ लगाने चाहिए।

चूजों को पालने के लिए क्रूडर के फर्श पर धान का पुआल, जौ, गेहूँ का भूसा, लकड़ी का बुरादा, रेत, पेड़ों की पत्तियाँ आदि की बिछाली होना अति आवश्यक है। मुर्गियों को अण्डों पर न बैठने देने के लिए उन्हें बड़े-बड़े टोकरों या खाँचियों से ढक कर रोका जा सकता है। इस प्रकार मुर्गियाँ चुग्गा चुनने व पानी पीने आदि का काम भी ठीक तरह करती रहती हैं।

मुर्गी-पालन से लाभ

यदि आप आमिष भोजी हैं, तो अपने घर में मुर्गियाँ पालने के कई लाभ हैं। अवकाश के समय के उपयोग के साथ ही खाने या बेचने के लिए उत्तम और ताजे अण्डे मिलते हैं और यदि परिवार की आवश्यकता से अधिक मुर्गियाँ हों, तो इनसे आय भी होती रहती है। अच्छी जाति की एक दर्जन मुर्गियाँ पालने से प्रतिदिन ७-८ अण्डे मिल सकते हैं। घर के अण्डे बाजार के मोल लिये गये अण्डों से अच्छे होते हैं। मुर्गियाँ अण्डों के लिए, चूजे बेचने के लिए या मुर्गियाँ ही बेचने के लिए पाली जाता हैं। इन सब में अण्डों के लिए मुर्गी पालना सबसे अधिक लाभजनक है। अण्डे या चूजे बेचने के लिए आरम्भ में बाड़े में १० मुर्गियों के साथ एक मुर्गा रखें। सदैव अच्छी नस्ल की ही मुर्गियाँ पालें। रोड आइलैण्ड रैड और सफेद लेग हार्न भारत में मुर्गियों की सर्वोत्तम नस्ले हैं। ये अधिक अण्डे देने वाली अच्छी नस्लें सभी प्रदेशों में सरकारी पोलट्री फार्मों से मिल सकती हैं।

मुर्गी-पालन-विधि

यदि आप केवल अण्डों के लिए मुर्गियाँ पालना चाहते हैं तो शुद्ध नस्ल के स्थान पर संकर नस्ल की मुर्गियाँ पालें। संकर नस्ल की मुर्गियाँ शुद्ध नस्ल की मुर्गियाँ की अपेक्षा १८ प्रतिशत अधिक अण्डे देती हैं। एतदर्थ ऐसी व्यवस्था करें—

मुर्गियों की जाति	मुर्गे की जाति
सफेद लेग हार्न	आस्ट्रालार्प
रोड आइलैण्ड रैड	सफेद लेग हार्न
बार्ड प्लाई माउथ राक	रोड आइलैण्ड रेड

संकर जाति की मुर्गी बनाने के लिए प्रथम लिखी जाति की मुर्गी का मेल उसके सम्मुख अंकित मुर्गे से करायें।

मुर्गियों का दरबा बनाना

थोड़ी-सी मुर्गियाँ पालने के लिए अधिक स्थान या बड़े बाड़े की आवश्यकता नहीं है। उन्हें वर्षा और धूप से बचाने के लिए और रात में विश्राम करने के लिए छोटे दरबे में रख सकते हैं। इस दरबे को आप अपनी सुविधानुसार घर या पशुशाला की किसी खाली दीवाल या आँगन में दीवाल के सहारे बना सकते हैं। दीवाल पर बल्लियाँ या लोहे की चादरें या छप्पर डाल दें। मजबूत दरबा बनाने के लिए लोहे के एनालों से चौखटा बनाकर चारों ओर तार की जाली लगा दें। इसके भीतर बसेरे बनाकर उसके ऊपर लोहे की पत्तियों का जाल लगायें, जिससे मुर्गियों की बीट आदि नीचे भूमि पर गिरती रहे। इस दरबे को आप जहाँ चाहें रख सकते हैं।

एक मुर्गी के रहने के लिए दो वर्गफुट स्थान चाहिए। ८ फुट लम्बे, ६½ फुट चौड़े तथा ४ फुट ऊँचे दरबे में ५० मुर्गियाँ रखी जा सकती हैं। दरबा बनाते समय इस बात का ध्यान रखें कि उसमें किल्लियाँ, कुटकियाँ और अन्य कीट न पहुँच सकें। उसमें समय-समय पर कीटाणुनाशक दवायें छिड़कते रहें। दरबा चारों ओर से हवादार हो तथा आँधी-पानी से सुरक्षित हो। साथ ही इस बात का ध्यान रखें कि मुर्गीशाला में हवा के सीधे झोंके या सीधी धूप भी न पहुँचे और न नमी हो। दरबों के द्वार पूर्व या दक्षिण-पूर्व की ओर हों, जिससे पछुवा हवा उनमें सीधी न प्रविष्ट हो सके। दरबे के आस-पास नींबू या शहतूत के पेड़ लगाने चाहिए।

चूजों को पालने के लिए कूडर के फर्श पर धान का पुआल, जो, गेहूँ का भूसा, लकड़ी का बुरादा, रेत, पेड़ों की पत्तियाँ आदि की बिछाली होना अति आवश्यक है। मुर्गियों को अण्डों पर न बैठने देने के लिए उन्हें बड़े-बड़े टोकरों या खाँचियों से ढक कर रोका जा सकता है। इस प्रकार मुर्गियाँ चुग्गा चुनने व पानी पीने आदि का काम भी ठीक तरह करती रहती हैं।

मुर्गियों का उपयुक्त आहार

मुर्गियों को ऐसा उत्तम और उच्चकोटि का आहार दें, जिसमें प्रोटीन, चिकनाई, खनिज पदार्थ, आवश्यक विटामिन्स तथा पानी उचित मात्रा में हों। केवल एक ही प्रकार का अनाज खिलाने के बदले कई अनाज या उनसे तैयार वस्तुओं को खिलाना अधिक लाभप्रद है। जैविक और प्राणिज दोनों प्रकार के प्रोटीन मिलाकर मुर्गियों को खिलायें। नीचे मुर्गियों को खिलाई जाने वाली विविध वस्तुओं के सापेक्ष गुणों पर प्रकाश डाला जाता है, जिसके आधार पर आपको उनका उपयुक्त आहार निर्धारित करने में सहायता मिलेगी।

गेहूँ—मुर्गियों का सर्वोत्तम अनाज है। इसमें करीब ११ प्रतिशत प्रोटीन, ७० प्रतिशत कार्बोज, १·५ प्रतिशत चिकनाई तथा विटामिन ए० व बी० होते हैं। गेहूँ के चोकर में भी विटामिन और खनिज तत्व हैं। अतः इसमें और कुछ मिलाना विशेष आवश्यक नहीं होता।

चना—चना दलकर मुर्गियों को खिलाया जाता है। इसमें करीब १७ प्र. श. प्रोटीन, ६१ प्रतिशत कार्बोज, ५ प्रतिशत चिकनाई तथा विटामिन ए. बी. तथा कई खनिज तत्व होते हैं।

मक्का—मक्का मुर्गियों का प्रिय खाद्य है। यह बिना रेशे का सुपाच्य अन्न है। इसमें प्रोटीन, कार्बोज तथा स्टार्च होता है। इसे प्रोटीन वाले खाद्य-पदार्थों के साथ मिलाकर खिलाना चाहिए। पीली मक्का में कैरोटीन होता है, जो अंडों के उत्पादन के लिए बहुत उत्तम तत्व है। सफेद मक्का मांसवर्द्धक है।

जौ—मुर्गियों के लिए हितकर खाद्य है। किन्तु अधिक मात्रा में खिलाने से मुर्गी का जिगर मोटा हो जाता है। मुर्गियों को मोटी करने के लिए अन्य खाद्य पदार्थों के साथ मिलाकर खिलाना चाहिए।

जई—भी मुर्गियों के लिए उपयोगी अनाज है। इसमें कई खनिज तत्व, लोह और चिकनाई होती है। इसके अतिरिक्त सस्ती भी मिलती है।

बाजरा—इसका प्रभाव गर्म होता है। अतः जाड़े के दिनों में खिलाने के लिए उपयोगी होता है। खाद्य गुण और तत्वों की दृष्टि से यह गेहूँ के समान ही

लाभप्रद है। चूजों तथा बड़ी मुर्गियों दोनों को समूचे अनाज के रूप में खिलाया जा सकता है।

धान—शीतवीर्य प्रभाव का अन्न है। अतः गर्मी की ऋतु के लिए उपयोगी है। यह स्टार्च बहुल सुपाच्य अन्न है। दक्षिण भारत में प्रायः चूजों को धान ही खिलाया जाता है

ज्वार—कुछ विषैले और हानिकर तत्वों के कारण चूजों के लिए विशेष उपयुक्त नहीं समझा जाता। हाँ, बड़ी मुर्गियों को धान, मक्का, जौ, गेहूँ आदि अन्य अन्नों के साथ थोड़ा-थोड़ा मिलाकर खिलाया जा सकता है। यह सस्ता और सुपाच्य अन्न है।

चैना (सावाँ)—कार्बोज बहुल, सस्ता, सुपाच्य अन्न चूजों के लिए सर्वोत्तम आहार है।

सोयाबीन—सत निकाले हुए सोयाबीन का आटा मुर्गियों के लिए बहुत उपयोगी प्रोटीनबहुल खनिज तत्वयुक्त उत्तम आहार है। यह पर्याप्त अंशों में प्राणिज प्रोटीन को पूर्ति करता है। सहज पाचन के लिए इसके साथ मट्ठा बहुत उपयुक्त है।

आलू—कार्बोहाइड्रेट बहुल, प्रोटीन युक्त, सुपाच्य आलू दलिया के साथ पकाकर मुर्गियों को खिलाना उपयोगी है।

दूध और दुग्ध पदार्थ—दूध, सपरेटा, दही, मट्ठा आदि चूजों के शारीरिक विकास के लिए आवश्यक पदार्थ हैं। क्योंकि इनमें उनको आवश्यकता भर के लिए प्रोटीन, विटामिन और खनिज तत्व प्राप्त हो जाते हैं, जो महासर्वाधिक लाभप्रद हैं। क्योंकि इनसे पाचन क्रिया सुधरती है।

मांस—मांस को पकाकर दलिया के साथ तथा सुखाकर मुर्गियों को खिलाया जाता है, जिससे प्रोटीन की पूर्ति हो सके। एक प्रौढ़ मुर्गी को करीब १ औंस मांस अन्य अनाजों और खली के साथ मिलाकर नित्य देना चाहिए।

मछली का चूरा—डेढ़ महीने से अधिक आयु के चूजों के लिए बहुत उपयोगी आहार है। यह प्रोटीन की वृद्धि करता है। इसमें चिकनाई १ प्रतिशत होनी

चाहिए। यदि मुर्गियों के आहार में ७ प्रतिशत मछली का चूरा हो तो उनके मांस और अण्डे बहुत उत्तम कोटि के हो जाते हैं। इनमें पर्याप्त खनिज तत्व और प्रोटीन होता है।

खली—वानस्पतिक प्रोटीन की पूर्ति के लिए मूँगफली की खली मुर्गियों के लिए एक उत्तम आहार है। इसमें कुछ खनिज तत्व भी मिश्रित कर दिये जायें तो यह और भी गुणकारी हो जाती है। अनाजों के साथ मिलाकर भी खिलाई जाती है। तिल की खली, सरसों की खली, अलसी की खली और नारियल की खली भी प्रोटीन की पूर्ति के लिए उपयोगी होती है।

रक्तचूर्ण—(Blood Powder)—अण्डे देने वाली मुर्गियों के लिए रक्तचूर्ण भी बहुत ही उपयोगी खाद्य पदार्थ है, क्योंकि अण्डा देने से उत्पन्न हुई शारीरिक क्षति की पूर्ति करता है। हड्डी का चूरा भी लाभदायक है।

शंख, सीपी, चूना, पत्थर आदि—ये वस्तुयें कैल्सियम की पूर्ति के लिए मुर्गियों के आहार में मिलाई जाती हैं।

नमक—अन्य खाद्य वस्तुओं के साथ मुर्गियों को नमक होना भी बहुत आवश्यक है। किन्तु उनके भोजन में नमक की मात्रा १ प्रतिशत से अधिक न होनी चाहिए। प्रोटीन को सात्मीकरण के लिए नमक आवश्यक है।

हरा चारा—हरे चारों में विटामिन ए और सी पर्याप्त मात्रा में तथा लोह, कैल्शियम आदि कई खनिज तत्व प्राकृतिक रूप में रहते हैं। हरा चारा न मिलने से मुर्गियों में संक्रामक रोगों के प्रतिरोध की क्षमता कम हो जाती है और उन्हें सर्दी बहुत शीघ्र लग जाने की सम्भावना रहती है। हरे चारे के अभाव से उनके अण्डों में विटामिन ए और सी की कमी हो जाती है। ताजी, मुलायम घास, गाजर, चुकन्दर, बद गोभी, बरसीम घास आदि मुर्गियों के लिए अत्युत्तम हरे चारे हैं। हरे चारे सदैव कच्चे ही खिलाना चाहिए।

मछली का तेल—मुर्गियों को खिलाने के लिए दो या अधिक मिश्रित तेलों का एक विशिष्ट मिश्रण बाजार में मिलता है। जब चूजों को घर में बन्द करके रखा जाता है, तभी इसकी आवश्यकता पड़ती है। इसमें विटामिन ए और डी की

प्रचुरता होती हैं। यों तो विटामिन डी की पूर्ति सूर्य की किरणों से हो जाती है, किन्तु धूप न मिलने पर इस तेल के द्वारा उसकी पूर्ति की जाती है। भारत में शार्क लिवर आयल अधिक उपयोगी माना जाता है।

इसके अतिरिक्त बूचड़खानों का बचा-खुचा पदार्थ बहुत सस्ता मिल जाता है। इसे उबालकर मुर्गियों को प्रतिदिन १ औंस के हिसाब से खिलाना चाहिए। इसके स्थान पर मछली का चुग्गा भी खिलाया जा सकता है। छोटी मछलियों को पकाकर मुर्गियों को खिलाना बहुत हितकर है। इसके अतिरिक्त मुर्गियों के भोजन में आम और जामुन की गुठलियों का चूरा, शीरा, रेशम के कीड़ों की बुहारन तथा पेनिसिलीन उद्योग की तलछट आदि बेकार भगाई जाने वाली वस्तुयें भी खिलाई जाती हैं।

पेय—डेढ़ महीने तक की आयु के चूजों को पानी के स्थान पर सपरेटा दूध पिलाना चाहिए। उसके बाद सपरेटा और पानी भिन्न-भिन्न पात्रों में रखना चाहिए। अपनी इच्छानुसार चूजे जो पीना चाहें पी सकते हैं। बड़ी मुर्गियों के लिए उनके दरबों में बर्तन में भरा हुआ पानी छाया में रखा रहना चाहिए। सपरेटा के स्थान पर चूजों को मट्ठा भी दिया जा सकता है।

उपर्युक्त आहार के मिश्रण

नवजात चूजों से लेकर ८ सप्ताह तक के चूजों के लिए—

पीली मक्का महीन दली हुई, सावाँ या बाजरा समान मात्रा में।

दलिये का मिश्रण—पीली मक्का का दलिया ४५ भाग, गेहूँ का चोकर-३५ भाग, मूँगफली की खली का चूरा १८ भाग, जई का दलिया-१० भाग और नमक १ भाग।

बड़ी मुर्गियों के लिए

दलिये का मिश्रण—पीली मक्का का दलिया—३५ भाग, जई का दलिया—३५ भाग, गेहूँ का चोकर--३६ भाग, मूंगफली की खली--१९ भाग, साधारण नमक--१ भाग।

इन मिश्रणों के गुणधर्म के विचार से विभिन्न अन्नों के दाने मिलाकर आहार निर्धारित कर लेने चाहिए।

मुर्गियों को निम्नांकित मिश्रित आहार बहुत लाभप्रद हैं—

मूँगफली या कोई खाद्य खली—	३५ भाग
(रागी मडुवा), साँवा, पिसी हुई पीली देशी मक्का, जौ, जई, ज्वार, बाजरा या आलू में से कोई एक	३० भाग
गेहूँ का चोकर या चावल का कना	२० भाग
मछली या मांस का चूरा—	५ भाग
पिसा हुआ चूना	३ भाग
हड्डी का चूरा (भाफ दिया हुआ)	१ भाग
नमक	१ या ½ भाग
सुखाई हुई या ताजी हरी पत्तियाँ	पर्याप्त
आहार	जितना मुर्गियाँ खा सकें

इन सब वस्तुओं को भली भाँति मिलाकर मुर्गियों को खिलायें। यह आहार दो मास की आयु से कम चूजों को प्रतिदिन २ औंस तथा २ मास से बड़े चूजों को ४ से ५ औंस की मात्रा में खिलायें।

विभिन्न आयु के चूजों और मुर्गियों को निम्नलिखित आहार दें—

आहार वस्तु	१ से ६ सप्ताह की आयु की पक्षियों को	४ से २४ सप्ताह की आयु के पक्षियों को
चावल की पालिश	२६ किलो	२६ किलो
पीली मक्का या कोई अन्य अन्न या मिले-जुले अन्न	२५ किलो	२८ किलो
जौ या जई	७ किलो	७ किलो
मूँगफली की खली	१८ किलो	१६ किलो

आहार वस्तु	१ से ६ सप्ताह की आयु के पक्षियों को	६ से २४ सप्ताह की आयु के पक्षियों को
गेहूँ का चोकर	७ किलो	७ किलो
कार्न ग्लूटीन मील	५ किलो	५ किलो
मछली का चूरा	६ किलो	५ किलो
हड्डी का चूरा	१ किलो	१ किलो
चूने का पत्थर (पिसा हुआ)	१ किलो	१ किलो
नमक	½ किलो	½ किलो

इस प्रकार की १०० किलो मिश्रित खाद्य सामग्री में निम्नलिखित वस्तुएं भी मिला लें :—

विटामिन ए	२·२ ग्राम
विटामिन बी$_{२}$	०·५ ग्राम
विटामिन डी$_{३}$	०·३ ग्राम
मैंगनीज सल्फेट	२२ ग्राम

एक सप्ताह की आयु हो जाने के बाद चूजों को लूसर्न, बरसीम, शलजम, गाजर, पालक, कुल्फा आदि की ताजी हरी पत्तियाँ काटकर खिलायें। चूजों और मुर्गियों को सदैव ताजा और स्वच्छ पानी पीने को दें। शुष्क और गर्म ऋतु में शुष्क आहार को गीला करके खिलायें। वैसे बाजार में अब मुर्गियों के लिए बना-बनाया संतुलित आहार मिलता है, जिसको हिन्दुस्तान लीवर लि० गाजियाबाद, भन्डारी क्रास फील्ड, इन्दौर इत्यादि बनाती हैं।

दरबों के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश

जब भी नये चूजे लायें प्रत्येक बार दरबे में नया और साफ घास-फूस बिछायें। घास-फूस बिछाने से पूर्व दरबे तथा अन्य चीजों को क्रूड कार्बोलिक एसिड के सॉल्यूशन या क्रेसोल के ५% विलयन से साफ करके कीटाणु-रहित कर लें। तत्पश्चात् डी० डी० टी० या कोई अन्य कीटाणुनाशक दवा छिड़कें और उसे सूखने दें।

दरबे में बिछाने के लिए मूंगफली के छिलके, गन्ने की खोई, लकड़ी की छीलन या बुरादा, महीन कटी सूखी घास, मक्के के भुट्टे के फोक का चूरा,

धान की भूसी आदि का प्रयोग किया जा सकता है। इस बात का ध्यान रखें कि जो भी चीज बिछायें वह शुष्क, स्वच्छ और महीन हो।

फर्श पर ५ से ८ से० मी० सूखी मिट्टी की मोटी तह बिछाकर उसे मोंगरी, धुरमुट आदि से कूट कर दबाकर समतल कर लें। इसके ऊपर घास-फूस को ८ से ९ सेमी० मोटी तह बिछायें।

शीतकाल में दरबों को गर्म रखने के लिए दरबे के चारों ओर टाट या पयाल की चटाई के पर्दे लटका दें। पर्दों को सदैव लटकते रहने दें। दिन में केवल एक-दो बार खोल दें, जिससे दरबे में ताजी, स्वच्छ वायु और धूप आ-जा सके।

६० से० मी० लम्बा और ६० से० मी० चौड़ा चूजों को गर्मी पहुँचाने के लिए गर्मी पैदा करने की मशीन ब्रूडर लगायें जिससे शीतकाल में गर्मी पहुँचाई जा सके। बिछाली की घास-फूस को नित्य पलटते रहें। जहाँ घास-फूस गीला हो जाय उसे बदल दें। दरबे को मुर्गियों की आयु, ऋतु और स्वास्थ्य के अनुसार खुला रखें, किन्तु उन्हें तेज हवा और गर्मी-सर्दी से बचायें। दरबे को ग्रीष्मकाल में शीतल रखें। जिस ओर से लू आती हो उस ओर मोटा टाट या घास-फूस के पर्दे लगाकर उन्हें पानी छिड़क कर गीला कर दें। रात को पर्दे खोल दें।

प्रतिदिन कम से कम दो बार प्रातः-सायं मुर्गियों का निरीक्षण करते रहें। देखें कि मुर्गियों को जूँ, किलनी या पिस्सू तो नहीं लग गये। लग गये हों तो डी० डी० टी० या अन्य कीटनाशक दवा छिड़ककर उन्हें नष्ट कर दें। दरबे में से अण्डे न देने वाली मुर्गियों को निकाल कर अलग रखें। यदि कुछ मुर्गियाँ किसी रोग से पीड़ित हों, तो उन्हें दूसरी मुर्गियों से अलग रखें। अण्डे देने के बाद तुरन्त ही उन्हें एकत्रित कर ठंडे स्थान पर रखें। दरबे में प्रत्येक व्यक्ति को न जाने दें। दरबे के दरवाजे पर फिनायल घोल से बना बर्तन रखें। दरबे में प्रवेश करने से पूर्व जूतों का तला या पैर उक्त घोल में डुबो कर भीतर घुसें। मुर्गियों को पौष्टिक आहार देना, मिश्रित दलिया खिलाना और स्वच्छ ताजा पानी पिलाना चाहिए। ४ से ८ सप्ताह की आयु के चूजों को रानीखेत तथा चेचक के टीके अवश्य लगवा

दें। उपयोग में लाई गई पुरानी घास-फूस, बुरादा और चिड़ियों की बीट को खाद के गड्ढे में डालकर दबा दें।

मुर्गियों को अच्छे दरवे में रखें तथा उन्हें बिल्ली, कुत्तों, साँप आदि से बचायें। दरवे का फर्श पक्का हो। दरवे में कहीं कोई दरार न हो। छत लोहे की चादरों या एसवेस्टस चादरों से बनी हो। दरवे में मुर्गियों की भीड़ न करें। प्रत्येक दरवे में उचित संख्या में ही मुर्गियाँ रखें। प्रत्येक दरवे में अण्डे या बसेरे, खाने-पीने के लिए मिट्टी के बर्तन, पानी तथा सीप, कंकड़ इत्यादि के लिए छोटा बर्तन अवश्य रखें।

मुर्गों को वेचना चाहें तो २-३ मास का होने से पहले ही बेंच सकते हैं। क्योंकि उसके बाद उनका मांस अस्वादिष्ट और कड़ा हो जाता है।

मांस के लिए मुर्गीपालन

जिन चूजों या मुर्गों में अधिक मांस होता है, उन्हें क्रेता खरीदना पसंद करते हैं। अतः मांस के लिए शीघ्रता से मोटी होने वाली, अधिक मांसवाली, बड़े आकार वाली और अधिक वजनवाली जाति की प्लाईमाउथराक, ब्रम्हा, कोर्निश, एसेक्स, लेगहॉल, एसील और चटगांव नस्ल की अच्छी मुर्गियाँ पालनी चाहिए। इन सब में कोर्निश और न्यू हैम्पशायर नस्ल की मुर्गियाँ मांस के लिए सबसे अच्छी होती हैं। इनके चूजे किसी भी प्रदेश के मुर्गी फार्म से मिल सकते हैं।

सामान्यतः मुर्गी का भार ४ पौंड बढ़ाने के लिए उसे लगभग २०-२५ पौंड आहार देना आवश्यक होता है। मुर्गियों को स्वस्थ और सबल रखने के लिए उनके आहार में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चिकनाई, विटामिन्स, खनिज पदार्थ और स्वच्छ जल आवश्यक है। साथ ही यह भी ध्यान रखें कि उनका आहार हल्का, स्वच्छ, ताजा और सुपाच्य हो। प्रोटीन दलहनी अनाज में अधिक होता है। कार्बोहाइड्रेट चावल, गेहूँ, मक्का आदि अनाजों और आलू में अधिक होता है। इससे मुर्गियों को आवश्यक ऊर्जा और शक्ति मिलती है।

मुर्गियों के पालने में इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखें कि जितनी जाति की मुर्गियाँ हों, उतनी ही जाति के एक-एक तरुण मुर्ग प्रतिवर्ष खरीदे जायें। इस

प्रकार नस्ल विगड़ने नहीं पाती। इसी प्रकार अच्छी नस्लों के अण्डे प्राप्त करके उनसे बच्चे निकलवाना चाहिए।

उन्नत वंश-वृद्धि

मुर्गियों की वंश-वृद्धि के सम्बन्ध में सरकारी मुर्गीपालन केन्द्रों में प्रायः जो प्रयोग किये गये हैं, वह क्रास ब्रीडिंग (Cross Breeding) से सम्बन्धित हैं। देखा गया है कि यदि बड़ी नस्ल की मुर्गी को छोटी नस्ल के मुर्गे के साथ मिलाकर अन्डे प्राप्त किये जायें तो बड़ी नस्ल की मुर्गी के अण्डों से जो बच्चे निकलेंगे, वह इस मुर्गी की नस्ल से छोटे और छोटी नस्ल वाली मुर्गी के अण्डों से जो बच्चे निकलेंगे, वे उस मुर्गी की जाति से बड़े होंगे। आधुनिक युग में क्रास ब्रीडिंग और उत्तम प्रकार के रख-रखाव से अच्छी सफलता प्राप्त हो चुकी है। यहाँ तक कि उपर्युक्त दोनों विधियों से मुर्गियों के अंडों के वजन को २ औंस से अधिक संख्या को बढ़ाकर १८० से २०० तक पहुँचाया जा सकता है।

अंडे देने से मुर्गी पर प्रभाव

अंडे देना प्रारम्भ करने पर मुर्गी की शारीरिक रचना में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होने लगते हैं। अंडे देने के समय में उसके शरीर में विटामिन ए की विशेष रूप से कमी हो जाती है, जिससे उनकी त्वचा का पीलापन कम होते हुए उत्तरोत्तर श्वेत हो जाता है। त्वचा का रंग और चिकनाई नष्ट हो जाना इस बात का लक्षण है कि मुर्गी ३-४ मास से निरन्तर अंडे दे रही है। अंडे दे चुकने के बाद यह पीलापन फिर क्रमशः पूर्ववत शरीर में फैल जाता है।

इसके विपरीत अंडे न देने वाली मुर्गियों के शरीर में विटामिन ए पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। यहाँ तक कि उनके मांस तक में पीलापन आ जाता है। ऐसी मुर्गियों का मांस बहुत सुस्वादु और बलबर्द्धक होता है।

मुर्गियों के सम्बन्ध में विभिन्न अनुभव

मुर्गियाँ प्रकाश में अधिक अण्डे दिया करती हैं, क्योंकि पीयूषग्रन्थि (पिट्यूटरी ग्लैण्ड) का पिछला भाग प्रकाश में अधिक हारमोन की उत्पत्ति करता है। वसंत ऋतु में मुर्गियाँ अधिक अण्डे देती हैं, इसके विपरीत पतझड़ में अण्डे

कम देती हैं। उत्तम नस्ल की मुर्गियाँ सर्वप्रथम पहला अण्डा बहुत सवेरे और फिर दूसरा अण्डा उससे कुछ मिनट बाद, इसी प्रकार समय वृद्धि के अनुसार सायंकाल अण्डा देकर एक दिन के लिए अण्डा देना बन्द करके फिर उसी प्रकार अण्डा देना प्रारम्भ कर देती हैं। जनवरी और मार्च में अण्डे देना बन्द कर देने वाली मुर्गियाँ सितम्बर के अन्त में फिर अण्डे देना प्रारम्भ कर देती हैं। ऐसी मुर्गियाँ अण्डे देने वाली होती हैं।

अण्डे प्राप्त करना और बच्चे निकालना

अण्डे प्राप्त करने के लिए मुर्गीशाला में तीन विभाग—ए० बी० और सी० स्थापित कर प्रत्येक विभाग में १० मुर्गियों के साथ एक मुर्गा रखें। पहले दिन एक मुर्गा को विभाग ए में, दूसरे दिन उस मुर्गे को विभाग बी में, तीसरे दिन उसी मुर्गे को विभाग सी में रखा जाय। फिर उसे दो दिन विश्राम देकर पाँचवें दिन फिर विभाग ए में, और इसके बाद क्रमशः बी और सी में रखा जाय। बड़ी मुर्गीशालाओं में प्रायः २० मुर्गियों पर एक मुर्गा रखा जाता है। इस फार्म के लिए तरुण और स्वस्थ, सबल मुर्गा होना आवश्यक है।

अण्डे सेने के लिए देशी मुर्गियाँ सबसे अच्छी और उपयुक्त होती हैं। क्योंकि वे हल्की और अण्डों पर चिपककर बैठती हैं। देशी मुर्गियों में जो सबसे पुष्ट मुर्गी हो उसे अण्डा सेने के लिए चुनें। एक देशी मुर्गी दो औंस वाले ८-९ अंडों पर सरलता से बैठ सकती है। मुर्गी को बैठाने के लिए छायादार, ठंडा, सूखा और साफ स्थान चुनें और बैठाने के लिए घोंसले को मुलायम और नरम भूमि के निकट होना चाहिए। जिससे मुर्गी उसमें सरलता से घुस सके। अण्डे लेने के लिए मिट्टी का बर्तन सर्वाधिक उपयुक्त होता है। इस बर्तन को ८ इन्च गहरा और १५ इन्च चौड़ा होना चाहिए। बर्तन का चौथाई भाग साफ राख से भरकर उसपर गंधक का चूर्ण छिड़क कर अण्डे रखकर मुर्गी बैठा दी जाय। बैठाते समय उसके पंखों पर अच्छी तरह गैमेक्सीन छिड़क दी जाय, जिससे किलनी, कुटकी आदि न लग सकें। १० दिन बाद फिर गैमेक्सीन छिड़कें। अण्डों पर बैठाई हुई मुर्गी को

प्रतिदिन दो बार ठंडा पानी और चूने की कंकड़ियों से मिला हुआ दाना दें, जिससे कैल्सियम के अभाव की पूर्ति हो सके। ऐसी मुर्गी को विभिन्न प्रकार की गन्दी वस्तुओं के खाने से बचाना चाहिए। क्योंकि गन्दी वस्तुएँ खाने से गंदी बीट होती है, जिससे अण्डे खराब हो जाते हैं।

अंडों का संरक्षण

यदि अण्डे गन्दे हों तो उनको पानी से न धोकर सोडियम हाइड्रोक्साइड के १ प्रतिशत विलयन में कपड़ा भिगोकर उस गीले कपड़े से अण्डे को साफ कर लें।

शीतकाल या ग्रीष्मकाल में अण्डों को सुरक्षित रखने के लिए एक बर्तन में थोड़ा बिना बुझा चूना डालकर उसमें पानी डालें। ठंडा हो जाने पर उसमें थोड़ा नमक और ठंडा पानी पर्याप्त मात्रा में मिला लें। इस घोल में अण्डों को डुबो-डुबोकर निकाल लें तथा अण्डों पर लगे चूने को सूखने दें। कुछ अण्डों को डुबोने के बाद यदि घोल गाढ़ा हो जाय तो उसमें थोड़ा पानी और मिला लें। इस प्रकार चूने के घोल में डुबोये हुए अण्डे शीतकाल में करीब ४ मास और गर्मियों में दो सप्ताह तक खराब नहीं होते। अण्डों को चूने के घोल में डुबोने के स्थान पर उनको नारियल के तेल में आधा मिनट तक डुबा कर निकाल लेने से भी अण्डे खराब नहीं होते। अण्डों को ताजा रखने की सुगम और उत्तम विधि उन्हें गर्म जल में डुबोना है। अण्डों को तार की टोकरी में रखकर उस टोकरी को १० से १५ मिनट गुनगुने (१०२° फा०) पानी में डुबोये रखकर निकाल लें। ऐसे अण्डे १५ दिन तक खराब नहीं होते।

गर्मी में अण्डे सुरक्षित रखना—गर्मी में अण्डों को मिट्टी के मटके में ठंडा रखें। इसकी विधि यह है कि मटके के ऊपरी आधे भाग में काफी छेद कर लें। इससे वायु का आवागमन हो सकेगा और अण्डों पर फफूंदी नहीं लगने पायेगी। मटका रखने के लिए खुली ऊँची भूमि उपयुक्त है। भूमि में मटका रखने योग्य बड़ा गड्ढा खोदिये। फिर बालू (रेत) और खुदी मिट्टी समान भाग मिलाकर गड्ढे को इसी बालू, मिट्टी मिश्रित मिश्रण से ३ इन्च तक ऊँचा कर दें। मटका

गढ़े में इस प्रकार रखें कि उसका छिद्रयुक्त ऊपरी भाग भूमि से बाहर रहे। मटके के अन्दर पेन्दी में साफ और सूखी मुलायम घास की तह बिछा कर उसके ऊपर अण्डे रख कर मटके के मुख को कपड़े के टुकड़े से कसकर बंद कर दें। गर्मियों में मटके के चारों ओर भूमि पर पानी डालते रहें। इससे अण्डे ठंडे रहेंगे और गर्मी में खराब नहीं होंगे।

यदि अधिक संख्या में अण्डे सुरक्षित रखना हो तो रेफ्रिजरेटर या अण्डे ठंडे रखने की पेटी का प्रयोग करें। अण्डों का चौड़ा सिरा सदैव ऊपर रखें। यदि हो सके तो अण्डों को एकत्रित करने के बाद तुरन्त ही ठंडा कर लें। अण्डे ठंडे रखने का प्रामाणिक तापमान ५० से ५५ डिग्री फारेनहाइट है। अण्डे जितने ही अधिक साफ और ताजे होंगे उतना ही अच्छा है।

अण्डे सेने के यन्त्रों, दरबाघरों, घोंसलों और कुक्कुटशाला के आसपास की भूमि को सदैव स्वच्छ रखें।

प्रायः मुर्गियों के बच्चे २० या २१ दिन के बाद निकल आते हैं। बच्चों को निकलने के बाद भी २४ घंटे तक उन्हें मुर्गी के नीचे ही रखा जाना चाहिए और उन्हें ३० से ३६ घंटे तक खाने को कुछ न देना चाहिए।

अण्डों से बच्चे निकालने की मशीन

इन्क्यूबेटर (Incubator)

अण्डे सेने और बच्चे निकलवाने के लिए मशीन का भी प्रयोग होता है, जिसे इन्क्यूबेटर कहते हैं। इन्क्यूबेटर के प्रयोग में मुर्गी की आवश्यकता नहीं रहती। मशीन की ऊष्मा से बच्चे निकल आते हैं। छोटे इन्क्यूबेटर में कई हजार अण्डे आ सकते हैं।

पालतू पक्षियों के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें

जिस समय पालतू पक्षियों से अधिक परिश्रम कराया जाये, जैसे बुलबुलों को लड़ाया जाये, कबूतरों को उड़ाया जाये तथा पक्षियों और मुर्गों को मैथुन कराया

जाये तो उन्हें एक सप्ताह तक प्रतिदिन बादाम की १ तोला गिरी पीसकर ६ माशे मलाई में मिलाकर आवश्यकतानुसार खिलाना चाहिए।

उड़ाने वाले कबूतरों को छोटा दाना जैसे बाजरा, साँवा इत्यादि खिलाना चाहिए। इनके खिलाने से वे अधिक उड़ते हैं।

मैना को सबसे अधिक प्रोटीन वाले खाद्य जैसे—सोयाबीन, काजू, मूंगफली आदि खिलाने चाहिए। इनको भूने चने का आटा शुद्ध घी में गुँथकर या मलाई मिलाकर, बकरे का वृक्क घी में भूनकर और पीस कर खिलाना चाहिए।

तोते के भोजन में किसी विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं होती। वह रोटी, चावल सब कुछ खा-पी लेता है और फलों को बड़ी रुचि से खाता है।

मुर्गियों को रोगों से बचाने के उपाय

अन्य पशुओं की भाँति मुर्गियाँ और पालतू पक्षी भी विभिन्न प्रकार के रोगों से पीड़ित हो जाती हैं और उनकी चिकित्सा के सम्बन्ध में भी वे ही सब विधियों और उसी प्रकार की अवस्थाओं के अनुसार विभिन्न प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त रोगों की रोकथाम के लिए बचाव के अनेक उपाय किये जाते हैं। यहाँ मुर्गियों के संक्रामक रोगों की रोकथाम के उपाय और तत्सम्बन्धी आवश्यक बातें लिखी जा रही हैं—

(१) मुर्गीफार्म ऐसे स्थान पर कदापि न बनाया जाय, जहाँ पहले-पहले मुर्गियाँ किसी संक्रामक रोग से मर चुकी हों।

(२) मुर्गीफार्म यथासम्भव ऐसे स्वच्छ, हवादार, ऊँचे स्थान पर बनाया जाय, जहाँ संक्रामक रोगों के फैलने की सम्भावना कम से कम हो। कोई दूसरा मुर्गीफार्म या मुर्गियों का बाजार उसके आस-पास काफी दूर तक न होना चाहिए; क्योंकि प्रायः दूसरे मुर्गीपालन केन्द्र में फैले छूत के रोगों के कीटाणु उड़कर फैल जाते हैं। सफाई का विशेष ध्यान रखा जाये।

(३) मुर्गीपालन के लिए खरीदी जाने वाली मुर्गियों की विशेष सावधानी से जाँच कर लेनी चाहिए कि उनमें कोई रोग न हो। नई मुर्गियाँ या मुर्गे खरीदे जायें तो उन्हें दो सप्ताह तक पहली मुर्गियों से पृथक् रखें।

(४) मुर्गियाँ यथासम्भव किसी विश्वस्त सरकारी या प्राइवेट फार्म से ही खरीदनी चाहिए। व्यक्तिगतरूप से बेचने वालों लोगों से मुर्गियाँ न लेनी चाहिए। यदि लें तो पशु-चिकित्सालय से उनकी जाँच करा लें।

(५) मुर्गीफार्म में किसी बाहरी या अपरिचित व्यक्ति को न घुसने दिया जाय।

(६) यथासम्भव नौकरों को फार्म में ही रहना चाहिए। यदि वे बाहर रहते हों तो उन्हें अपने घर पर मुर्गियाँ न पालने देना चाहिए, क्योंकि अपने साथ रोग के कीटाणु ला सकते हैं।

(७) यदि मुर्गियों को पकड़ने या छूने की आवश्यकता हो तो पहले अपने हाथों को किसी एण्टीसेप्टिक लोशन या साबुन से धो लेना चाहिए।

(८) मुर्गियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने के लिए ऐसे खांचे का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिसके विषय में जानकारी न हो। उनमें रोग के कीटाणु हो सकते हैं। यदि विवशता से प्रयोग करना ही पड़े, तो किसी कीटाणु-नाशक घोल से धोकर उसे विसंक्रमित कर लिया जाये।

(९) फार्म में आवश्यकता से अधिक पक्षी न रखने चाहिए। स्थान के अनुसार ही पक्षियों की संख्या हो, ताकि वे उन्मुक्त रूप से विचरण कर सकें।

(१०) मुर्गीफार्म के पास ऊँचे पेड़ न होने चाहिए, क्योंकि इन वृक्षों पर कौवे आदि बैठकर बीट करते हैं, जिससे विभिन्न प्रकार के कीटाणु फार्म में प्रविष्ट हो सकते हैं। प्रायः कौवे-गीलहरी इत्यादि मुर्गियों के पीने का पानी पी लेते हैं। इससे भी विभिन्न प्रकार के कीटाणु फैल सकते हैं।

(११) मुर्गीफार्म के फार्म पर सफाई करने के बाद प्रतिदिन चूना छिड़क देना चाहिए, जिससे फर्श पर फैले हुए कीटाणु और कीड़े-मकोड़े मर जायें। इसके

अतिरिक्त मुर्गीशाला की दीवालों पर नीलाथोथा मिलाकर सफेदी कराते रहें, और एण्टीसेप्टिक दवायें जैसे फिनाइल आदि छिड़कते रहें। फार्मेल्डीहाइड गैस से हर प्रकार के कीटाणु और कीड़े-मकोड़े बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रयोग की विधि यह है कि १०० वर्गफुट खाली स्थान के लिए ३ औंस फार्मलीन और २ औंस पोटाशियम परमेंगनेट लेकर मकान की सब खिड़कियाँ बन्द करके पहले एक वर्त्तन में पोटाश रख दें। फिर उसके ऊपर फार्मलीन डालकर तुरन्त वहाँ से बाहर आ जायें और दरवाजा बन्द कर दें। इन दोनों द्रव्यों के मिलने से बहुत तीव्र गैस पैदा होकर समस्त कीड़े-मकोड़ों और कीटाणुओं को मार देती है। डेढ़ घंटे बाद खिड़कियों और दरवाजों को खोल देना चाहिए। गैस के प्रयोग से पहले मुर्गियों को वहाँ से बाहर निकाल लेना चाहिए और मकान की पूरी सफाई कर देनी चाहिए।

(१२) मुर्गियों और पक्षियों को खराब खाद्य और गन्दी जलवायु से प्रत्येक सम्भव उपाय से बचाना चाहिए।

(१३) पानी पीने और दाना खिलाने के बर्तनों में मुर्गियों की बीट बिल्कुल न जाने पाये।

(१४) मुर्गियों की चारागाह को हर दूसरे-तीसरे महीने जोतकर छोड़ देना चाहिए, जिससे सूर्य के ताप से कीटाणु नष्ट हो जायें।

(१५) फार्म में मुर्गियों के रहने के स्थान पर नमी या पानी नहीं भरे रहने देना चाहिए, क्योंकि इससे काक्सीडिया तथा अन्य रोगों के जीवाणुओं के फैलने में सहायता मिलती है।

(१६) मुर्गियों के लोट-पोट करने के लिए एक बड़े चौड़े बरतन में राख रख दी जाय और उसमें ५ प्रतिशत डी० डी० टी० मिला दी जाये।

(१७) मुर्गियों के बाड़े के मैदान की घास छोटी और मुलायम होनी चाहिए। मुर्गियों के लिए मोटी और बड़ी घास बेकार होती है। इसके अतिरिक्त

घास छोटी होने पर मिट्टी तक धूप और वायु का समुचित प्रवेश होने से मिट्टी में रोगाणु नहीं पनपते।

(१८) मुर्गीफार्म के दो भाग होने चाहिए। जिसमें दो-दो मास के बाद इनको एक भाग से दूसरे भाग में बदला जा सके; क्योंकि एक ही स्थान पर मुर्गियों के बहुत दिनों तक रहने पर वहाँ कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं।

(१९) तीन मास तक चूजों को बड़ी मुर्गियों से अलग रखना चाहिए।

(२०) कुछ दिनों के बाद मुर्गियों और कबूतरों आदि के पीने वाले पानी में हल्का-सा पोटाशियम परमैंगनेट मिला देना चाहिए, किन्तु यदि कोई छूत वाला रोग फैल जाय तो प्रतिदिन इसी प्रकार लाल दवा मिलाकर पानी का प्रयोग करना चाहिए।

(२१) यदि कोई मुर्गी बीमार हो जाय, तो उसे तुरन्त ही स्वस्थ मुर्गियों से अलग कर दिया जाये। यदि वह किसी संक्रामक रोग से आक्रांत होकर मरणासन्न हो तो उसको मार देना ही अच्छा है। मार देने के बाद उसे कहीं दूर फेंका जाये या भूमि में गाड़ दिया जाय।

मुर्गियों और चिड़ियों के रोग तथा उनकी चिकित्सा

संक्रामक रोग (Infectious Diseases)

रानीखेत
(Ranikhet)

यह पक्षियों का अत्यन्त घातक, संक्रामक और सांसर्गिक रोग है। चूंकि सर्वप्रथम यह रोग सन् १९२७ में कुमाऊँ हिल्स के रानीखेत नामक स्थान और उसके निकटवर्ती क्षेत्र में प्रगट हुआ था, इस कारण इस रोग का नाम रानीखेत पड़ गया। यह घातक संक्रामक रोग सभी छोटी चिड़ियों, कबूतरों, तीतर, बटेर, पेंडुकी, कौवे और विशेषकर मुर्गियों को काल के गाल में पहुँचा देता है। इस रोग में ग्रसा होने पर ८० से १०० प्रतिशत पक्षी मर जाते हैं।

कारण—इस रोग के कारण एक विशेष प्रकार के बहुत ही छोटे विषाणु (Virus) होते हैं, जो बिना अणुवीक्षण यन्त्र के नहीं देखे जा सकते हैं। इस विषाणु की छूत बड़ी तेजी से फैलती है। इस रोग के विषाणु जंगली चिड़ियों, कौओं, कबूतरों, मुर्गियों, पक्षीपालकों द्वारा मुर्गियों में भी फैल जाते हैं। ये विषाणु मुर्गी के चारा-पानी में चले जाते हैं। जब स्वस्थ चिड़ियाँ इस संक्रमणयुक्त चारा-पानी को खाती-पीती हैं तो यह रोग उत्पन्न हो जाता है। रुग्ण चिड़ियों के थूक और बीट से यह रोग स्वस्थ चिड़ियों और उनके चूजों को भी हो जाता है। धीरे-धीरे बाड़े की सभी चिड़ियों को यह रोग हो जाता है। इसका संक्रमण बड़ी तीव्र गति से प्रसारित होता है।

लक्षण—पक्षी की आयु के अनुसार भिन्न-भिन्न पक्षियों में इस रोग के भिन्न-भिन्न लक्षण देखने में आते हैं। ३-४ सप्ताह के चूजों में इस रोग के लक्षण सबसे पहले प्रगट होते हैं। उन्हें श्वास लेने में कठिनाई होती है। यह लक्षण सभी आयु के पक्षियों में प्रगट होता है। चूजे सुस्त, दुर्बल होकर अचानक मर जाते हैं। रोग के लक्षण प्रगट होने के दो दिन बाद ही रोगग्रस्त मुर्गी की गर्दन और सिर टेढ़े हो जाते हैं। स्नायु विकार भी हो जाता है और एक के बाद दूसरे पक्षी अचानक मरने लगते हैं। यहाँ तक कि थोड़े ही समय में सभी मुर्गियाँ मर कर मुर्गीफार्म समाप्त हो जाता है।

संक्रमित मुर्गियों को तीव्र ज्वर, श्वासकष्ट, पंख मुड़े हुए, अतिशय सुस्ती, दुर्बलता, पपोटों में शोथ और पानी भर जाना, मुँह से लार बहने लग जाना, मुर्गियों और चिड़ियों के पैर फूल जाना, पीले रंग के पतले दुर्गन्धित दस्त आना, प्रायः गर्दन और पैर ऐंठ जाना, भूख-प्यास बन्द या कम हो जाना, रुग्ण मुर्गियों का अण्डे देना बन्द कर देना। कलगी और गलफेड़ों का रंग गहरा नीला या हल्का नीला हो जाना, उनकी आवाज बिगड़ जाना आदि लक्षण होते हैं। अल्पायु मुर्गियाँ और चूजे अधिक आयु की मुर्गियों की अपेक्षा अधिक मरते हैं। इस रोग से ग्रस्त पक्षियों की प्रायः मृत्यु हो जाती है। यह तीव्र घातक रोग जहाँ फैलता है, वहाँ हजारों चिड़ियों और मुर्गियों का शीघ्र सफाया कर देता है। निर्बल चिड़ियाँ

और मुर्गियाँ इस रोग से अधिकतर आक्रान्त हो जाती हैं और बच नहीं पातीं। रोगाक्रान्त चूजे मुँह से साँस लेते हैं। कभी-कभी साँस से सीटी जैसी आवाज होती है। चूजे चोंच से कफ निकालने के लिए प्रायः सिर हिलाते हुए दीख पड़ते हैं। इस रोग के सामान्य आक्रमण से जो चूजे बच जाते हैं, उनकी गर्दन या टाँगों में लकवा हो जाता है। कभी-कभी पक्षी की गर्दन पीछे की ओर मुड़ जाती है। रोग की भयंकर अवस्था में चूजे देखते-देखते मर जाते हैं। बड़ी मुर्गियाँ इस रोग में देर से मरती हैं।

निरीक्षण—इस रोग के लक्षण कई रोगों से मिलते-जुलते हैं, जिनसे अन्य रोगों में भी रानीखेत रोग का भ्रम हो जाता है। अतः इस रोग का निदान खूब सोच-समझकर करना चाहिए। मुर्गियों का हैजा, प्लेग, कण्ठ रोग और ब्रांकाइटिस तथा चूजों के खूनी दस्त ऐसे ही रोगों में हैं, जिनके कई लक्षण रानीखेत रोग से सादृश्य रखते हैं। किन्तु ध्यान देने योग्य बातें ये हैं कि हैजे में श्वास अवरुद्ध होने का लक्षण नहीं होता, जबकि रानीखेत में श्वासकष्ट होता है। दूसरे उसकी कलगी और गले की लटकन का रंग पीला पड़ जाता और प्रायः ऊपर शोथ आ जाती है। अतः ठीक निदान के लिए 'लेबोरेट्री टेस्ट' से ही मार्ग-दर्शन हो सकता है।

चिकित्सा—इस रोग की कोई पूर्ण चिकित्सा अभी तक खोजी नहीं जा सकी तथापि 'रानीखेत वैक्सीन' (Rani Khet Vaccine) के प्रयोग से इसे बहुत अंशों तक सफलतापूर्वक रोका जा सकता है। रोग फैलने के समय ४ सप्ताह से अधिक आयु के समस्त चूजों और मुर्गियों को इसका इंजेक्शन लगवा देना चाहिए। इन्जेक्शन लगाने के ४ घण्टे बाद से तीन वर्ष की अवधि तक फिर यह रोग मुर्गियों को नहीं होता। कदाचित् कोई मुर्गी रुग्ण भी हो जाये तो प्रायः बहुत कम मृत्यु होती है।

मर्क का फ्लाक्सेड (Flaxaid) मिश्रित पानी सभी मुर्गियों और चूजों को पिलायें। इस दवा में दो एण्टीबायोटिक और विटामिन्स हैं, जो मुर्गियों को रानीखेत रोग से संरक्षण की क्षमता उत्पन्न करते हैं।

इसके अतिरिक्त टेरामाइसिन (फाईजर) का मांस में इन्जेक्शन लगाना भी बहुत लाभदायक है।

फ्लाक्सेड १६ चम्मच (८० ग्राम)१०० लिटर पानी में मिलाकर मुर्गियों को पिलायें।

इस रोग से बचाने के लिए मुर्गियों को रानीखेत का टीका लगवायें। लासोटा या एफ स्ट्रेन का नाक में टीका लगायें। फिर ६ सप्ताह आयु होने पर मुक्तेश्वर स्ट्रेन का मांस में टीका लगायें। बायो० मेडि० का आर० बी० स्ट्रेन भी ६ सप्ताह आयु वाली मुर्गी को इन्जेक्शन लगाया जा सकता है। ग्लैक्सो का विमेराल प्रयोग करना लाभप्रद है।

रोकथाम—रोग से मृत मुर्गियों को जलाकर राख कर दें। छूत के समय लाल दवा मिला पानी पिलायें। नित्य प्रातः दरबों से निकलने पर प्रौढ़ मुर्गियों और चूजों को ध्यान से देखें कि वे सुस्त तो नहीं हैं। वर्षाऋतु में अधिक ध्यान देना आवश्यक है। जिस चूजे या पक्षी में असामान्य लक्षण दिखाई दें उसे तुरन्त अलग कर दें तथा उसे किसी शुष्क स्थान में सुरक्षित रखकर उसकी चिकित्सा करें। स्वस्थ मुर्गियों को उसके सम्पर्क में न आने दें। संक्रामक रोगों से मरे पक्षियों पर ब्लीचिंग पाउडर डालकर भूमि में गाड़ दें।

मुर्गियों की चेचक

(Fowl Pox)

सभी पक्षी और मुर्गियां इस रोग से आक्रान्त हो सकती हैं। इस रोग के कारण एक प्रकार के विषाणु होते हैं। यह रोग विशेष रूप से मुर्गी के चूजों में फैलता है और चूजे इस रोग से अधिक मरते हैं। प्रौढ़ मुर्गियों, कबूतरों, तीतरों आदि पक्षियों को भी यह रोग हो जाता है। इस रोग से ग्रस्त प्रौढ़ पक्षी दुर्बल हो जाते हैं और अण्डों का उत्पादन कम हो जाता है। रोग प्रायः शीतकाल में, जब एक ही बाड़े में बहुत-सी मुर्गियाँ बन्द कर रखी जाती हैं, अधिक फैलता

है। चिमड़िया, मच्छर, परजीवी कीड़े इस रोग के कीटाणुओं को अन्यत्र फैलाते हैं।

चेचक के दाने पक्षी के शरीर के जिस अंग में निकलते हैं, उसी के अनुसार उसे नाम दिया जाता है, जैसे—त्वचा की चेचक, गले की चेचक, आँखों की चेचक आदि।

लक्षण—यह भयंकर रोग अचानक फैल जाता है। इसकी छूत एक पक्षी से दूसरे पक्षी को सरलता से लग जाती है। प्रायः छूत लगने के डेढ़ सप्ताह बाद लक्षण प्रगट होते हैं। क्षुधानाश, सुस्ती के साथ मुर्गी अण्डे देना बन्द कर देती है। बड़ी मुर्गी को त्वचा, कलगी, गलफेरे और आँखों के आस-पास दाने अधिक निकलते हैं। चूजों के मुंह, नाक, जीभ और आँखों के भीतर दाने निकलते हैं। नाक के दानों की खराश के कारण उनको छींकें भी आने लगती हैं। इस रोग में मुर्गियों की अपेक्षा चूजे अधिक मरते हैं। मुंह, नाक, जीभ, गले और आँख के अन्दर दाने निकलने पर जीभ से गले तक पीले रंग की पपड़ी बन जाती है। आँखों से पानी, पलकों में शोथ आ जाती है। पंखहीन भागों पर शुष्क भूरी फुन्सियाँ निकल आती हैं। फिर वे सूख जाती हैं। तब ३ सप्ताह में पपड़ी गिर जाती है। रोगग्रस्त होने पर पक्षी की वृद्धि रुक जाती और अण्डे भी कम पैदा होते हैं। रोग भयंकर होने पर गले और श्वास नली में छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाने से पक्षी का साँस घुटता है। आँख पर आक्रमण होने पर पुतली सूज जाती या फट जाती है तथा चूजे मर जाते हैं। कभी-कभी इस रोग से चूजे का सिर भी सूज जाता है। ऐसे पक्षी प्रायः मर जाते हैं। यह रोग अधिकतर गर्मी में अप्रैल से जुलाई तक फैलता है।

चिकित्सा—इस रोग की पूर्ण चिकित्सा नहीं है। वाह्य रूप में टिंचर आयोडीन लगाया जाता है। रोग फैलने के दिनों में चेचकरोधी इन्जेक्शन लगवाना चाहिए। इस रोग के इन्जेक्शन दो प्रकार के होते हैं—एक को पिजिन पाक्स वैक्सीन और दूसरे को फाउल पाक्स वैक्सीन कहते हैं। पिजिन पाक्स फाउल पाक्स की अपेक्षा हल्की और कम प्रभावशाली होती है। इसका प्रत्येक ऋतु और प्रत्येक अवस्था में प्रयोग हो सकता है। इसके इन्जेक्शन का प्रभाव केवल ३ मास

तक रहता है। पिजिन पावस से चूजों की रक्षा होती है। इन्जेक्शन लगे चूजों से उसी दरबे के अन्य चूजों और मुर्गियों को यह रोग हो सकता है। अतः सभी को एक साथ इन्जेक्शन लगवायें। ६ से ८ सप्ताह के चूजों को इन्जेक्शन लगवाना अच्छा होता है। जब चेचक का भय हो तो एक मास से कम आयु के सब चूजों और अण्डे देने वाली मुर्गियों को, यदि पहले इन्जेक्शन न लगा हो, तो पिजिन पाक्स वक्सीन का इन्जेक्शन लगवा दें। शेष पक्षियों को फाउल पाक्स वैक्सीन का इन्जेक्शन लगायें।

फाउल पाक्स वैक्सीन बहुत प्रभावशाली है और इसका प्रभाव एक वर्ष तक रहता है। परन्तु इन्जेक्शन प्रयोग के लिए मुर्गियों की आयु ८ सप्ताह से कम न होनी चाहिए। फाउल पाक्स से इस रोग से आजीवन रक्षा होती है। इन्जेक्शन दरबे से दूर वृक्ष की छाया में लगायें। इन्जेक्शन लगाते समय पक्षियों को स्वयं न पकड़ें। बची हुई वैक्सीन को जला दें और दवा की खाली शीशी सुरक्षित स्थान पर फेंक दें।

गर्मी में जून में चूजे दुर्बल होते हैं। उन्हें पहले पिजिन पाक्स का और कुछ समय बाद फाउल पाक्स का इन्जेक्शन लगायें। इन्जेक्शन सभी मुर्गियों को एक साथ लगाना चाहिए। रोगी मुर्गियों को एप्सम साल्ट पानी में घोलकर पिलायें। अधिक रुग्ण मुर्गियों को मारकर जला देना चाहिए और रोकथाम का पूर्ण प्रयास करना चाहिए।

चिड़ियों का हैजा

(Fowl Cholera)

सामान्यतः पाश्चुरैला सेप्टिका की छूत से पक्षियों में होने वाले रोग को मुर्गियों का हैजा कहा जाता है। इस रोग से सभी चिड़ियाँ और मुर्गियाँ पीड़ित हो सकती हैं। इस रोग से बहुत-से पक्षी तेजी के साथ मरते हैं।

लक्षण :— इस रोग में पीले रंग के पतले दस्त, शीघ्र सुस्ती और निर्बलता, कलगियों का रंग नीला हो जाना, भूख बन्द हो जाना, गलफड़ों में शोथ इस रोग

के प्रमुख लक्षण हैं। रोग की छूत लगने के कुछ घण्टों से लेकर ३ दिन में पक्षी की मृत्यु हो जाती है।

सुरक्षा :—आई० पी० बी० पी० या आई० बी० आर० आई० पूना से निर्मित 'फालकाल वेक्सीन' १ मि० लि० की मात्रा में इन्जेक्शन लगायें। इसमें रोग की प्रतिरोधक क्षमता ६ मास है।

चिकित्सा :—सल्फामेजाथीन (Sulphamezathine) का १६ प्रतिशत सोल्यूशन १ : ८० के अनुपात से स्वच्छ जल में मिलाकर पक्षियों को १ से ५ सप्ताह तक पिलायें। इसके प्रयोग से रुग्ण पक्षी स्वस्थ हो जाते हैं और अन्य पक्षी रोग के आक्रमण से सुरक्षित रहते हैं।

इस रोग की रोकथाम के लिए एण्टी फाउल कालरा सीरम के इन्जेक्शन भी पशु चिकित्सालय से प्राप्त कर सकते हैं।

मुर्गियों को हैजा हो जाने पर ऑरियोमाइसिन सोलुबल पाउडर ताजा पानी (२ चम्मच दवा प्रत्येक १० लि० जल) में मिलाकर प्रथम दो सप्ताह तक पिलायें। इसके बाद एक चम्मच दवा प्रत्येक १० लिटर ताजे पानी में मिलाकर पिलाते रहें।

सायनेमिड का सल्मेट का जल विलयन (१२·५%) ३० मि० लि० दवा ४ लिटर पेयजल में घोलकर आवश्यक मात्रा में पिलाते रहें। सल्मेट पेयजल १२·५% पक्षियों को हैजा होने पर ६ दिन तक और जुकाम होने पर २ दिन तक पिलाते रहें।

फाईजर का डाएजीन (Diagin) का १६ प्रतिशत शक्ति का विलयन ३० मि० लि० ४ लिटर पानी में मिलाकर २-३ दिन तक दें। फिर इसकी आधी मात्रा ४ दिन तक प्रयोग करें।

पक्षियों का पक्षाघात
(Avian Lincosis)

इस रोग के कारण एक अति सूक्ष्म प्रकार के विषाणु हैं। इस रोग से

अधिकतर मुर्गियाँ और तीतर रोगग्रस्त होते हैं। लक्षणों की दृष्टि से इस रोग के पाँच भेद हैं—

(१) पक्षी के किसी अंग—जैसे पैर, बाजू, गर्दन इत्यादि में पक्षाघात का प्रभाव हो जाता है। प्रायः वह एक पैर से लँगड़ाता है या एक बाजू लटक जाता है या गर्दन मुड़ जाती है। क्रमशः अस्वस्थ होकर वह चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है।

(२) पक्षी की एक या दोनों आँखों की पुतलियों का रंग बदलकर भूरा हो जाता है, जिससे वह अन्धा हो जाता है।

(३) पक्षी का रक्त विकृत होकर वह पीला, पतला, फीका और बदरंग हो जाता है और उसमें जमने का गुण कम हो जाता है।

(४) पक्षी की लम्बी हड्डियाँ मोटी और ठोस हो जाती हैं और वह धीरे-धीरे चलने-फिरने योग्य नहीं रह जाता।

(५) पक्षी के आन्तरिक अंग जैसे—यकृत, वृक्क और अण्डेदानी आदि बढ़ जाते जाते हैं। किन्तु प्रत्यक्षतः कोई लक्षण प्रकट नहीं होता और अन्त में पक्षी मर जाता है।

चिकित्सा :—कोई चिकित्सा पूर्णतः लाभकारी नहीं है तथापि रोग को फैलने से रोकने के उपाय करने चाहिए। चूजों को बड़ी मुर्गियों से अलग रखा जाय। उत्तम शक्तिप्रद आहार दें। मुर्गीफार्म में धूप और स्वच्छ वायु की व्यवस्था हो।

रुग्ण पक्षी को फ्रीज ड्राइड मेक्राबेरिन (ग्लैक्सो निर्मित) का गहरे मांस में प्रति तीसरे दिन इंजेक्शन लगायें तथा ग्लैक्सो का विटाब्लेण्ड तथा मर्क का फ्लायसेड खिलायें। फाईजर निर्मित टी—एम—५ फीड सप्लिमेंट के साथ विटामिक्स एम को खिलाना भी लाभप्रद है।

पक्षियों का क्षय रोग
(Fowl Tuberculosis)

पक्षियों में क्षयरोग उत्पन्न करने वाले दण्डाणुओं की छूत लगने से मुर्गियों

को क्षयरोग लग जाता है। यह रोग विभिन्न पक्षियों जैसे—मुर्गी, तीतर, बटेर, तोता, बत्तख, कबूतर आदि को हो सकता है।

लक्षण :—रोगी पक्षी का भार घटता जाता है। उसकी छाती की हड्डी उतर आती है। प्रायः पक्षी लँगड़ाने लगता है। रोग तीव्र हो जाने पर दस्त भी आने लगते हैं। रोग का सही निरीक्षण परीक्षण ट्यूबरकुलीन टेस्ट से ही हो सकता है।

चिकित्सा—स्ट्रेप्टोमाइसिन सल्फेट से निर्मित दवायें जैसे—स्क्विब का एम्ब्रीस्ट्रीन, ग्लैक्सो का कोमाइसिन या मर्क का मस्ट्रेप आधा से १ ग्राम का गहरे मांस में इन्जेक्शन लगायें। ३-नाइट्रो हैक्स्ट ५ प्रतिशत पक्षियों के चारा या पानी में मिलाकर दें।

रोकथाम—रोगी पक्षी को मारकर जला दें। क्योंकि उसका जूठा दाना-पानी खाने-पीने से दूसरे पक्षी रोगग्रस्त हो जाते हैं। सफाई और स्वास्थ्य-रक्षा का विशेष ध्यान रखें।

आवश्यक चेतावनी :—यक्ष्मापीड़ित पक्षियों का मांस और उनका अण्डा कदापि न खायें।

सफेद दस्त

(White Diarrhoea)

इस रोग के कारण एक विशेष प्रकार के सूक्ष्म अण्डे जैसे कीटाणु होते हैं। इस रोग के जीवाणु रुग्ण पक्षी की बीट में पर्याप्त संख्या में होते हैं और जो चूजें बीट के पास जाते हैं, इस रोग से ग्रस्त हो जाते हैं। यह मुर्गियों का एक घातक रोग है। मुर्गी के चूजे इस रोग से विशेष रूप से पीड़ित होते हैं।

लक्षण :—सफेद रंग के पानी जैसे पतले दस्त आना, बाजू लटक जाना, पैर फूल जाना, प्यास बढ़ जाना, भूख बन्द हो जाना, पेट फूल जाना प्रमुख लक्षण हैं। इस रोग से ग्रस्त चूजे हांफने लगते और गिरकर मर जाते हैं। प्रायः न्यूमोनिया भी हो जाता है। यदि रोग तीव्र वेग से हुआ तो बिना और लक्षण प्रकट

हुए चूजे गिर-पड़ जाते हैं। रोगग्रस्त मुर्गियाँ अण्डे कम देती हैं, कुछ मर भी जाती हैं, बार-बार सफेद रंग की बीट करती हैं। इस रोग का संक्रमण होने पर चूजों को बहुत श्वासकष्ट होता है और वे अधिक मरते हैं।

रोकथाम :—चिकित्सा से अधिक आवश्यक इस रोग में बचाव है। जो मुर्गियाँ अन्डों पर बैठाई जायें उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में 'पुलोरम टेस्ट' के द्वारा निश्चय कर लिया जाये। ऐसी अवस्था में देखभाल और स्वच्छता की विशेष व्यवस्था की जाये। रुग्ण पक्षियों को मार देना ही अच्छा है।

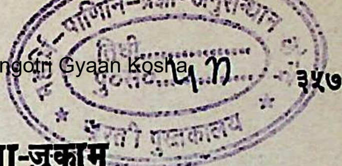
चिकित्सा :—सायनेमिड के सल्मेट (Sulmet) का इन्जेक्शन, तरल दवा या टेबलेट्स यथोचित मात्रा में प्रयोग करें। कीटाणु नष्ट करने के लिए टेरामाइसिन लाभप्रद है। पार्क डेविस का क्लोरोस्ट्रेप (Chlorostrep) भी विश्वस्त औषधि है।

मुर्गियों का आंत्र ज्वर

(Fowl Typhoid)

इस रोग के कारण सेलमोनेला गेलीनेरम नामक जीवाणु होते हैं। यह रोग ह्वाइट डायरिया (सफेद दस्त) से मिलता-जुलता है, किन्तु इस रोग में बड़ी मुर्गियाँ पीड़ित होती हैं। इस रोग को तीव्र दशा प्रगट होने पर ह्वाइट डायरिया के विवरण में लिखित लक्षण स्पष्ट प्रगट होते हैं। रोग पुराना होने पर यकृत और प्लीहा में वृद्धि हो जाती है तथा आँतों में शोथ उत्पन्न हो जाती है और प्रायः अतिसार-वमन के साथ रक्त आने लगता है।

चिकित्सा :—मर्क के फ्लाक्सेड को पानी में मिलाकर प्रातः-सायं पिलाते रहें। पार्क डेविस का क्लोरोस्ट्रेप सस्पेन्शन आधा से एक छोटा चम्मच प्रौढ़ मुर्गी को तथा चौथाई से आधा चम्मच चूजे को ६-६ घंटे के अन्तर से पिलाते रहें। दुर्बलता दूर करने के लिए मल्टी विटामिन खिलायें।



पक्षियों का नजला-जुकाम
(Fowl Coryza)

चिड़ियों का जुकाम व नजला या इन्फ्लुएन्जा एक विशेष जाति के कीटाणुओं के संक्रमण से उत्पन्न होता है। प्रायः मुर्गियाँ और छोटे पक्षी इस रोग से ग्रस्त होते हैं।

लक्षण—रोगग्रस्त पक्षियों की नाक से पानी बहना, हाँफना, श्वास-कष्ट, क्षुधानाश, चेहरे पर शोथ, खाँसी आना, आँखों का रंग बदल जाना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। मुर्गियाँ अण्डे देना बंद कर देती हैं। इस रोग में मुर्गियों की अपेक्षा चूजे अधिक मरते हैं। प्रायः इस रोग से ग्रस्त होने पर ५० प्रतिशत पक्षी मर जाते हैं।

चिकित्सा—इस रोग में सल्फाथियाजोल (Sulphathiazole) ०·५% का तीन दिन तक प्रयोग करना वहुत लाभप्रद है। इसके सिवा सल्फामेथाजोन का १६% वाला सॉल्यूशन भी लाभप्रद है। एण्टीबायोटिक दवाओं में डाई-हाइड्रोस्ट्रेप्टोमाइसिन का प्रयोग भी लाभकारी है।

चिड़ियों की खाँसी
(Fowl Bronchitis)

एक विशेष वाइरस इस रोग को महामारी के रूप में फैलाते हैं। मुर्गियों के चार सप्ताह के चूजे इस रोग से प्रायः अधिकतर पीड़ित होते हैं।

लक्षण—चूजों को तेज खाँसी आती है। उनकी नाक और आँखों से पानी बहता है और अन्त में वे मर जाते हैं। बड़ी मुर्गियाँ इस रोग से आक्रांत होती हैं, तो प्रायः स्वस्थ हो जाती हैं, किन्तु रोग के दिनों में अण्डे देना बंद कर देती हैं या कम कर देती हैं।

चिकित्सा—कोई चिकित्सा या इन्जेक्शन शत-प्रतिशत सफल नहीं है तथापि सल्फा ग्रूफ की औषधियों के प्रयोग से लाभ हो सकता है। नजला और जुकाम के प्रकरण में लिखी दवाओं का प्रयोग करायें।

फ्लाक्सेड मिला जल लाभदायक है। सायनेमिड का औरियोमाइसिन सोलुबल पाउडर २ से ४ चम्मच भर प्रति १० लिटर पानी में घोलकर पिलायें। इसके साथ एक्रोमाइसिन की गहरे मांस में सुई लगायें। ग्लैक्सो के सेलिन (Celin) की गोलियां भी पानी में घोलकर पिलाना लाभप्रद है।

पेट के कीड़े
(Worms or Helminth Parasites)

मुर्गियों और विभिन्न पक्षियों में गोल कीड़े (Round Worms), फीता जैसे कीड़े (Tape Worms), बाल जैसे कीड़े (Crop worms), गेपवर्म्स (Gape Worms), पथरी के कीड़े (Gizzard worms) जैसे कई प्रकार के कीड़े उत्पन्न होकर मुर्गियों और पक्षियों की पाचन-प्रणाली को विकृत कर उन्हें दुर्बल कर देते हैं। इन विभिन्न कीड़ों का वर्णन पशु-चिकित्सा में कीटों के प्रकरण में हो चुका है, अतः उसकी पुनरुक्ति व्यर्थ है। यहाँ पर सभी प्रकार के कीड़ों को नष्ट करने की विशिष्ट दवायें लिखी जा रही हैं।

चिकित्सा—गोल कीड़ों नष्ट करने के लिए फेनोथियाजीन यानी फेनोविस आधा ग्राम की मात्रा में एक ही बार खिलाने से कीड़े मर जाते हैं। ५-६ मास बाद फिर एक मात्रा दें।

सायनेमिड के कैरीसाइड २५% का एक बड़ा चम्मच ४ लिटर पानी में मिलाकर पिलाने से गोल कीड़े मल के साथ निकल जाते हैं।

टेप वर्म्स—के लिए कार्बन टेट्राक्लोराइड एक मि० लि० लिक्विड पैराफीन ३ मि० लि० में मिलाकर स्टामक ट्यूब के द्वारा प्रयोग करायें। एक ही बार का प्रयोग काफी है। इसी विधि से टेट्राक्लोरोइथेलिन का प्रयोग करने से टेपवर्म नष्ट हो जाते हैं।

बाल जैसे कीड़ों के लिए गोल कीड़ों वाली औषधियों का प्रयोग लाभप्रद है।

गेप वर्म्स—इस रोग के लिए बेरियम एण्टिमोनिल सल्फेट का सुंघाना बहुत लाभप्रद है। इसकी गंध से कीड़े मर जाते हैं।

पत्थरी के कीड़ों को मारने के लिए कार्बन टेट्राक्लोराइड या आई० सी० आइ० के फेनोविस का प्रयोग करना बहुत ही लाभप्रद है।

बाह्य कीड़े
(Ecto Parasites)

जूँ (Lice)—जूँ हानिप्रद और कष्टप्रद लघु कीट है। ये रक्त चूसती हैं। काटने से खुजली होती है। चिड़िया विफल और निर्बल हो जाती है।

जुआँ मारने की गमैक्सीन सर्वोत्तम दवा है। इसे शरीर पर मलना चाहिए या डी० डी० टी० पाउडर १ भाग २० भाग राख में मिलाकर प्रयोग करें या गमैक्सीन १ भाग १००० भाग राख में मिलाकर प्रयोग करें।

कुटकी (Roost Mite)—प्रायः रात को मुर्गियों को काटतीं, रक्त चूसती हैं।

जहा कुटकियों की अधिकता हो वहाँ चिड़ियों के शरीर पर लोरेक्सेन, गमैक्सीन, डी० डी० टी० पाउडर उपरोक्त विधि से प्रयोग करें।

किलनी (Tick)—किलनियाँ पक्षियों के शरीर पर रक्त चूसती हैं। यही नहीं, टिक फीवर का कारण होती हैं। इनके लिए भी कुटकियों वाला ही प्रयोग करें।

पिस्सू और खटमल—' Fleas & Bugs)—मुर्गियों को बहुत कष्ट पहुँचाते हैं। इन्हें दूर करने के लिए डी० डी० टी० पाउडर छिड़कते रहें।

कब्ज (Con tipation)

विकृत, रद्दी, भारी कच्चे खाद्यों के प्रयोग से प्रायः पक्षियों को कब्ज हो जाता है। पक्षी का पेट साफ नहीं होता। पेट में कष्ट रहना और भूख कम हो जाती है।

चिकित्सा—पेट को साफ करने के लिए गुनगुने पानी में एक चम्मच एप्सम साल्ट घोलकर पिलायें या रिफायण्ड कैस्टर आयल या पैराफीन लिक्विड पिलायें। पक्षियों को हरा चारा, सब्जियाँ और दलिया खिलायें।

अतिसार (Diarrhoea)

खराब खाद्यों के प्रयोग से पक्षियों को हरे, पीले या सफेद रंग के बार-बार पतले दस्त आते हैं। पक्षी शिथिल और निर्बल हो जाता है।

चिकित्सा—टिंचर कैम्फर प्रयोग करायें। सल्फामाइसेटिन या डेज के इन्ट्रोजाइम या सल्फाग्वानेडिन की आधी गोली खिलायें।

गुदा के घाव
(Vent Gleet)

प्रायः मुर्गी की गुदा के भीतरी भाग में घाव हो जाते हैं, जो कष्टसाध्य होते हैं। गुदा के पास शोथ हो जाता है। इनसे पीले रंग का लेसदार स्राव बहता रहता है।

चिकित्सा—घाव को साफ करके पेनिसिलीन आयण्टमेंट लगायें। नेब सल्फ मलहम या सिप्रक्लिङ्ग पाउडर का प्रयोग भी उत्तम गुणकारी है।

———